Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल

Class No. 891.3
Book No. U14S
Received 4807

शेष-अशेष

भारतीय साधु-जीवन पर आधारित यह महान् उपन्यास भारतीय भाषाओं में कदाचित् सर्वप्रथम है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में अध्यात्म और जीवन-सौन्दर्य का इतना अद्भुत सम्मिश्रण किया है कि पढ़ते-पढ़ते पाठक आत्मविभोर हो उठता है।

संक्षिप्त रूप से प्रकाशित साप्ताहिक हिन्दुस्तान के पाठकों ने इसे अपने समय का श्रेष्ठ उपन्यास माना है।

इस उपन्यास के सभी पात्र अवायवीय होते हुए भी महान् हैं। कमल (आत्मानन्द), यशोदा (विभा) इन दो पात्रों के आस-पास जैसे स्वर्ग, नरक, मनुष्य, पशु, व्यष्टि-समष्टि चित्रपट की तरह अपनी धूमिल एवं स्पष्ट चित्रों से मूर्तिमान् होते हैं। वास्तविक जीवन की खोज में भटकते ये दो प्राणी दूध में मक्खन की तरह आत्मलीन हैं फिर भी वे सचेत दिन की तरह उज्ज्वल भी हैं। कर्त्तव्य के लिये, आत्म-प्रेरणा के लिये बलिदान जैसे स्वयं इन दो पात्रों में शक्ति एवं जीवन का प्रतीक बन गया है।

शेष-अशेष

[पचास वर्ष पूर्व की कहानी के आधार पर प्रवृत्ति-
निवृत्तिमूलक जीवन्त उपन्यास]

लेखक
उदयशंकर भट्ट

१९६०
भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा — दिल्ली

भारती साहित्य मन्दिर
(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से संबद्ध)
आसफ अली रोड नई दिल्ली
फव्वारा दिल्ली
माईहीरां गेट जालन्धर
लाल बाग लखनऊ

मूल्य ६'००

श्यामलाल गुप्त, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं सत्यपाल धवन, दी सैण्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ८०-डी, कमला नगर, दिल्ली द्वारा मुद्रित

वह साँझ का समय था, धूसरित साँझ का। आकाश में बादलों की फौज जहाँ-तहाँ मार्च करती हुई सूरज को ढक रही थी। लगता था दिन-भर बादलों से लड़ते-लड़ते सूर्य देवता एक किनारे जा खड़े हुए हैं। उनकी लाली से सामने आपड़ने वाले हवा की पोटली में बँधे मेघों के किनारे चमक उठे थे। और प्रकाश की किरणों के नुकीले तीर जब बादलों में लगते थे तब मालूम होता था जैसे चारों तरफ से घिरे अँधेरे में कोई टॉर्च दिखा रहा हो। नीचे गंगा की चपल धारा में अस्तंगत सूर्य की क्षीण आभा दिखाई दे जाती थी। बाकी वर्षा के मटमैले गंगाजल पर न बादलों का कोई प्रभाव था न सूरज की किरणों का। विवेक की स्फटिक निर्मलता से रहित उसकी धारा उस नारी के समान दौड़ रही थी जिसने लाज और शील के दोनों किनारों को तोड़कर अबाध गति से यौवन की उग्रता में अपने को पूर्ण रूप से समर्पित कर दिया हो। कटे हुए सफेद किनारे जैसे घाटों पर इक्का-दुक्का आदमी दिखाई पड़ रहे थे। दूर पर स्वामी हरिहरानन्द घाट के गोल बुर्ज पर बैठे गंगा की छटा देख रहे थे—मौन, सौन्दर्य-मग्न ! इसी समय हल्की वर्षा होने लगी। स्वामीजी ने कम्बल ओढ़ लिया और बैठे रहे। जल पर उमंगभरी वर्षा की बूँदें नाचने लगीं। हवा से हिलते हुए पेड़-पौधे हर्ष के आँसू बहाने लगे। गंगा के दोनों किनारे हरे-भरे पहाड़ों से ढके ऐसे दिखाई दे रहे थे मानो मोतिया पोशाक में किसी रानी के साथ हरे लिबास में पहरेदारों की कतार चल रही हो।

इसी समय उन्होंने देखा दूर पर कुछ सफेद-सफेद बहा जा रहा है। कभी जल के ऊपर आता है फिर थपेड़े खाकर डूब जाता है। वह चौंके। उठकर खड़े हो गए। पास आने पर उन्हें लगा एक प्राणी हाथ-पैर मार रहा है। ठंडा

जल ! पत्थर-फोड़ अथाह तेज धार। एक बार हरिहरानन्द के मन में आया, जाने दो बहुत से ऐसे बहते हैं, होगा कोई, लेकिन मन न माना कम्बल फेंककर पानी में कूद पड़े। पास आकर देखा तो एक युवक आधा बेहोश-सा बहा जा रहा था। स्वामीजी ने घाट की तरफ ले जाने के लिए उसे लातों से धकेला। इसी समय उनका एक चेला भी, जो ऊपर कुटिया से छतरी लेकर आ रहा था, जल में कूद पड़ा। दोनों मिलकर डूबते व्यक्ति को किनारे तक ले आए। जहाँ वह किनारे पर आकर लगा, वह जगह करीब एक मील नीचे थी। न कोई घाट, न मकान। पहाड़ के नीचे शिला-खंड और पत्थरों से ढके किनारे पर स्वामीजी ने चेले की सहायता से उसे लिटा दिया। वर्षा अब भी हो रही थी।

यह ऋषिकेश और लक्ष्मणझूले के पार का स्थान था। चेला शिवानन्द दौड़कर पहाड़ की तराई में बसे पास के गाँव से दो आदमी बुला लाया। उस रात शिवानन्द तथा गाँव के लोगों ने मिलकर उस युवक की देख-भाल की। 'अब बच जायगा,' कहकर स्वामीजी पहले ही अपने आश्रम में चले गए।

तीसरे दिन स्वामीजी ने देखा वही युवक सामने आकर बैठ गया है। स्वामीजी उस समय तख्त पर बैठे शिष्यों को पढ़ा रहे थे। वे लोग नीचे आसन जमाए प्रश्न करते और स्वामीजी उत्तर देते थे।

लगभग आध घंटे बाद स्वामीजी ने उसे भीतर बुलाया।

"अब ठीक हो ?"

"जी।"

"खाना मिला ?"

कोई उत्तर न मिला।

"अब क्या चाहते हो ?"

नवयुवक चुप रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, क्या कहे। तीन दिन दो रात पूरी तरह सोते रहने पर भी उसमें स्फूर्ति का अभाव था। शायद सोचने की शक्ति भी पूरी तरह जाग्रत नहीं हो पाई थी। जैसे पेड़ की तरह जड़ हो गया हो। "घर जाना चाहो तो शिवानन्द तुम्हें गाड़ी में बिठा देगा।"

नवयुवक फिर चुप रहा। स्वामीजी ने देखा, सजग होने पर भी वह मान-

सिक रूप में स्वस्थ नहीं है। स्वामीजी ने पास जाकर उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछा—"घबराओ मत। जो कहना हो कहो।" वे तीक्ष्ण दृष्टि से उसे देखने लगे, जैसे उसके अंतर को पढ़ रहे हों। उन्होंने पाया युवक किंकर्तव्यविमूढ़ है। उसके चिंतन के द्वार बन्द हो गए हैं। एक धुँधला-सा आवरण बुद्धि पर छा गया है। वे उसे बाहर एक पक्के चबूतरे पर ले गए और अपने सामने बिठाकर तीखी दृष्टि से उसे देखने लगे। कहा नहीं जा सकता उन्होंने उसकी चेतना को सम्मोहित किया या क्या, वह धीरे-धीरे जैसे अपने में खोने लगा। सारा शरीर एक दम सनसना उठा। अब वह सिर से पैर तक काँप रहा था। एक प्रकार की अर्द्ध-मूर्छित अवस्था में वह पहुँच गया। स्वामीजी अब भी उसे उसी प्रकार देख रहे थे। उनकी आँखों से ज्योति निकल रही थी। युवक फिर धीरे-धीरे जागा। उसने आँखें खोलीं। भीतर की अंतश्चेतना से उसका शरीर भर गया। अब वह पूर्ण स्वस्थ था।

"अब कैसा लगता है ?"

"ठीक हूँ स्वामीजी।"

"तुम चाहो तो अपने घर जा सकते हो।"

"मेरा घर नहीं है।"

"क्या अपने-आप नहाते हुए धारा में बह आये ?"

"नहीं। मेरे एक सम्बन्धी ने मुझे लक्ष्मण झूले के घाट से गंगा में ढकेल दिया।"

"उनको ऐसा करते क्या किसी ने नहीं देखा ?"

"उस समय एकान्त था।"

"वहाँ से बहकर बच सकना तो सम्भव नहीं है।"

"मुझे याद है कि मैं गिर रहा हूँ। गिरने के बाद मैंने कई गोते खाकर दूर पड़ी एक शिला का सहारा लिया, किन्तु देर तक नहीं टिक सका, तेजी से बहने लगा।"

"तो शायद तुम तैरना जानते हो ?"

"हाँ, मैंने अपने शहर के तालाब में तैरना सीखा है, पर गंगा में···।"

"क्या तुम जानते हो जिन्होंने तुम्हें गिराया वे कौन हैं ?"

"मुझे उनके नाम याद हैं। वे मेरे ही नगर के दो आदमी हैं।"

"तुम पुलिस में रिपोर्ट करना चाहोगे ?"

"नहीं।"

"क्यों ?" उन्होंने भेदिनी दृष्टि से देखते हुए पूछा।

"मैं अब लौटकर नहीं जाऊँगा।"

स्वामीजी ने आगे कुछ न पूछा। वे उठकर चले गए। नवयुवक वहीं चबूतरे पर पेड़ की छाया में बैठा रहा। उसे लगा जैसे वह इन थोड़े दिनों में ही बदल गया है। उसके मन की चंचलता, आक्रोश, बात-बात पर खीझने की आदत, अभिमान, ईर्ष्या, अब उसमें कुछ भी नहीं है। अब से पहले उसके भीतर अच्छी चीज देखकर पाने की इच्छा जाग उठती थी वह अब जैसे सो गई है। गाँववालों का दिया जो मोटा-झोटा खाना उसने खाया है पहले की हालत में शायद वह कभी न खाता, बल्कि फेंक देता। अब दो दिन से जो खाना उसे मिला है उससे उसे असन्तोष नहीं है। 'तो यह पानी में डूबने से ऐसा हुआ है या क्या ?' वह कुछ भी समझ नहीं पाया। यह सब एकदम कैसे हुआ ?

उसके परिवार के लोगों में एक युवती थी जिसके साथ वह शादी करना चाहता था। उसके लिए उसके मन में कोई भी त्याग, कोई भी बलिदान बड़ा नहीं था। उसे सोते, उठते, बैठते, सदा उसका ध्यान रहा है। जीवन के अंतरंग में एक ही उत्तरंग भाव जो उसे कचोटता रहा है, उसके इन्द्रिय ज्ञान को झकझोरता रहा है, वह कान्ता की याद ही तो ! उसकी प्राणवाहिनी आँखें, चेतना भरनेवाला मुख, अनन्त कल्पनाओं-सी मादक देह यष्टि, चाँदनी में लहराती हवा-सी सुख देने वाली मुस्कान, सब अब कहाँ गए, याद क्यों नहीं आते, यही सब वह बैठा-बैठा सोच रहा था। उसे लगा जैसे उसका पिछला जीवन एक सपना था, एक छल था जो सोकर उठने पर ओझल हो गया है। जीवन्त और प्राणवान पिछली परिस्थिति इतनी जल्दी उसके मन से उतर जायगी इसका उसे कभी ध्यान भी न था।

चबूतरे के किनारे मौलसिरी का घना पेड़ छत्ते की तरह उस गोल चबूतरे

पर छा रहा था। उसके छोटे-छोटे फूल वरदान की तरह जमीन पर झड़ रहे थे। मादक सुगन्ध से सारा वातावरण झूम रहा था। तीनों तरफ हरियाली और चौथी तरफ गंगा का तीव्र प्रवाह घर्घर नाद जैसे मनुष्य के सौंदर्य-प्रिय हृदय में जीवन-शक्ति फूंक रहे थे। स्वामीजी का एक शिष्य पास ही मन्दिर के मुख्य द्वार के पास बरामदे में बैठा पढ़ रहा था। दूसरा स्वामीजी के कपड़े धोने के लिए गंगा पर गया था। कभी-कभी दर्शनार्थी यात्रियों का झुण्ड घूमता-घामता उधर आ निकलता तो वातावरण में एक प्रकार की सिहरन फैल जाती। पक्षियों के कलरव और गंगा के प्रवाही नाद से निरन्तर गतिमान कोलाहल, पर्वतों की हरीतिमा भरा जीवन अपने रूप में आश्रम के वातावरण को पुलकित बनाये हुए थे। इतने पर भी लगता था वहाँ के मनुष्य के भीतर की शान्ति अक्षुण्ण है।

नवयुवक बैठा-बैठा ऊँघने लगा।

जब वह जागा तो अँधेरा हो गया था। मन्दिर में आरती की तैयारी हो रही थी। पास ही रसोई में भोजन बन रहा था। स्वामीजी कमरे में कुछ भक्तों को उपदेश दे रहे थे। नवयुवक पहले मन्दिर और फिर स्वामीजी के उपदेश में जा बैठा। उपदेश के प्रसंग में स्वामीजी ने बातों-ही-बातों में उस नवयुवक के डूबने और बचाने की बात छेड़ दी। लोग उत्सुक होकर देखने लगे। कुछ उसकी कथा जानना भी चाहते थे कि इसी बीच आरती के घंटे सुनकर सब लोग उठकर चल दिए। लगभग एक घंटे तक आरती और स्तुति-पाठ होता रहा। उस रात वह नवयुवक वहाँ कमरे में सोया।

मुक्तिबोध मठ के नाम से प्रसिद्ध इस आश्रम के संचालक स्वामी हरिहरानन्द हैं। यह स्थान काफी एकान्त है और ऋषिकेश के ऊपर गंगा के पार है। मठ में पाँच कमरे, एक रसोईघर, एक मन्दिर, उससे सटे कुछ कच्चे झोंपड़े हैं। स्वामीजी तथा शिष्य कमरों में और भक्त या दर्शनार्थी झोंपड़ों में ठहरते हैं। प्रायः दो कमरों में ताले लगे रहते हैं। जब कभी कोई सम्पन्न व्यक्ति आ जाता है तो ये कमरे खोल दिए जाते हैं। बीच में स्वामीजी का कमरा है। उसके आगे छोटा-सा बगीचा। दूर हटकर चबूतरा है जिसके बीच में मौलसिरी

का घना पेड़ है। उसी के बाँएँ शिवजी का मन्दिर है। उसके पुजारी भी एक वृद्ध संन्यासी हैं। मन्दिर में शिव, गंगा, पार्वती, नन्दी की मूर्तियाँ हैं।

मनुष्य के मन का पार पाना बड़ा कठिन है। उसमें कैसी-कैसी मिश्रित भावनाएँ काम करती हैं यह जान पाना बड़ा दुरूह है। एक विरक्त व्यक्ति में, जो संसार छोड़ चुका है, अपनत्व, अधिकार किस रूप में प्रकट होता है इसका रूप स्वामी हरिहरानन्द हैं।

हरिहरानन्द जवानी में पैर रखने से पहले ही साधु हो गए। गुरु ने योग्य शिष्य पाकर कुछ दिन के लिए उन्हें काशी संस्कृत पढ़ने भेज दिया, वहाँ हरिहरानन्द ने मनोयोग से वेद-वेदांग पढ़े। इसके बाद गुरु ने स्वयं हरिहरानन्द को योग की प्रक्रियाएँ सिखाईं। इससे ज्ञान के साथ मनोनिग्रह, संयम की शिक्षा मिली। चरित्र के ऊँचे, विचारों के उदार स्वामी हरिहरानन्द संयम की दृष्टि से विरक्त होते हुए भी सांसारिक प्रदर्शन से अपने को दूर न रख सके। एक बार उत्तराखण्ड की यात्रा से लौटते हुए उन्होंने यह स्थान अपने रहने के लिए चुना। पहले-पहल स्वयं परिश्रम करके उन्होंने फूँस की एक झोंपड़ी बनाई। कई मास तक कन्द-मूल खाकर निर्वाह करते रहे। एक वस्त्र पहनते। न जाड़ों में कम्बल लेते, न गर्मियों में छाया की परवाह करते। एक दम विरक्त निःस्पृह साधु की तरह उनका जीवन था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्हें योग से सिद्धियाँ प्राप्त हुई थीं लेकिन इतना जरूर था कि उन्हें किसी चीज की कमी नहीं मालूम होती थी।

इन्हीं दिनों एक समय ऐसा आ गया कि गंगा की लहरों के साथ उड़ी हवा ने यश के रूप में दूर-दूर तक उनकी प्रसिद्धि फैला दी। गुड़ पर मक्खियों की तरह भक्त उनके दर्शन को आने लगे। साथ ही कुछ धनिक दर्शनार्थियों ने रहने का आश्रम और मन्दिर बनाने का आग्रह किया। उसी के फलस्वरूप आज स्वामी हरिहरानन्द मठ के स्वामी के रूप में कुछ शिष्यों के साथ रहते हैं। वैराग्य और वैभव की लड़ाई में स्वामीजी ने वैभव का साथ दिया, किन्तु यह वैभव वैराग्य के द्वारा ही फल-फूल सकता है यह बात स्वामी हरिहरानन्द अब तक जानते हैं।

जब कई दिन बीत जाने पर भी उस युवक ने आश्रम नहीं छोड़ा तब एक

दोपहर को स्वामीजी ने उसे बुलाकर कहा—"अब तो ठीक हो ?"

"जी।"

"जाना चाहने पर शिवानन्द तुमको रेल का टिकट लेकर बिठा देगा।"

"मैं अब कहाँ जाऊँ।"

"क्यों ?"

वह युवक चुप हो गया। स्वामीजी के बार-बार पूछने पर उसने कहा, "मेरे लिए घर के सब दरवाजे बन्द हो गए हैं।"

"क्या घर पर कोई नहीं है ?"

"कुछ सम्बन्धियों को छोड़कर और कोई नहीं है।" इसके बाद उसने कहना शुरू किया, "सुनता हूँ मेरी माँ जब मैं तीन वर्ष का था, मर गई। बाप लम्बी बीमारी में उसके दो साल बाद मरे। मरते समय पिता ने मुझे अपने मित्र के हाथ सौंपते हुए वह विल भी दे दिया जिसमें चार मकान, छः दुकानें और बीस हजार रुपये का हिसाब था। मैं उन्हीं के घर चौदह वर्ष की अवस्था तक रहा। जब वे भी एक दिन चल दिये तो उनकी पत्नी ने मुझे निकाल दिया। अब मैं अपने घर में रहने लगा। पढ़ाई छोड़ दी। एक रिश्तेदार औरत मेरे घर रहकर मुझे खिलाने-पिलाने लगी। उसके लड़के ने मुझे इधर-उधर आवारागर्दी करना, दिन-रात जुआ खेलना सिखा दिया। दुकानों, मकानों के किराये से मैं जुआ खेलता। अठारह तक पहुँचते-पहुँचते मैं एक तरह पूरा आवारा और उद्धत हो गया। अब मैं बैंक से रुपया निकाल सकता था। मकान बेच सकता था। सम्बन्धी का यही प्रयत्न था कि मैं अलूल-जलूल खर्च करूँ ताकि उसमें से उसे उड़ाने का अवसर मिले। मेरे चारों ओर अपव्यय का नद लहरा रहा था। मेरी मर्यादा, लज्जा, शील के तट टूट चुके थे। मैं असंयम की बाढ़ में बह रहा था। मुझे लगता जैसे मैं स्वयं अपना स्वामी हूँ। यह समय जो मुझे मिला है वह मेरा है, सदा ऐसे ही मेरे पैरों के नीचे चलता रहेगा।

एक रोज पिताजी के एक और मित्र ने समझाया तो मेरी आँखें खुलीं। वे चाहते थे मेरी शादी हो जाय। उन्होंने कोशिश भी की। एक आदमी तैयार हुआ। लेकिन उस सम्बन्धी औरत ने भाँजी मार दी। मेरे काले कारनामे उसके

सामने रख दिये । वह लौट गया । अब जब भी कोई ब्याह का प्रस्ताव लेकर आता तो पहले ही उन लोगों को मेरी तरफ से बुरा-भला कहकर टाल दिया जाता । एक बार एक लड़कीवाले के आने से पहले रिश्तेदार औरत के लड़के ने मुझे भाँग पिला दी । मैं नशे में आँय-बाँय बकने लगा । वह भी लौट गया । नशा उतरने के बाद जब मुझे यह सब मेरे एक हितैषी ने बताया तो मुझे बड़ा गुस्सा आया । मैंने उन दोनों को घर से निकाल दिया । इससे उन्होंने जात-बिरादरी में इतनी बदनामी फैला दी कि कोई भी मेरी शादी करने को तैयार न होता । जुए की आदत तो मुझ में थी ही । सम्बन्धी इस चिन्ता में थे कि बिना शादी के मैं मर जाऊँ तो वे सारी सम्पत्ति पर अधिकार कर लें । इधर मैं बड़ा हो रहा था उधर वे लोग गिद्ध की तरह तीखी नज़र से मेरे मरने की प्रतीक्षा कर रहे थे । एकाध बार मुझे ज़हर देने की भी कोशिश की गई, लेकिन मैं बच गया । रुपया, मकान मेरे पास था ही । हर आदमी इस ताक में रहता कि किसी तरह बहती गंगा में वह भी हाथ धो ले ।

"जब बीस वर्ष पार कर चुकने पर भी मेरी शादी नहीं हुई तो अचानक मैंने एक दिन फैसला कर लिया कि मैं अपने जीते जी कुछ भी छोड़कर नहीं जाऊँगा । अब मेरे कपड़े प्रतिदिन दर्जी के यहाँ से सिलकर आते उन्हें ही मैं पहनता । धुले हुए कपड़े पहनना मैंने छोड़ दिया । यह भी एक ऐयाशी थी । जिसने सुना, उसने सराहा । कोई कहता, 'तुम अपने जमाने के बादशाह हो ।' दूसरा कहता, 'बादशाह भी ऐसा नहीं कर पाते ।' मैं नित्य नये कपड़े पहनकर ठाठ से गाड़ी में बैठकर घूमने निकलता । रात-रात भर जुआ चलता । पैदल बाहर न चलने की भी प्रतिज्ञा थी । इस समय मैं फैय्याज भी काफी हो गया था । कोई भी माँगने वाला मेरे घर से खाली नहीं लौटता था । मैं अपना धन दोनों हाथों से नाव में पानी की तरह बाहर उलीच रहा था । कुछ वेश्याओं के संगीत, महफिल में लुटाया, कुछ दोस्तों में । इस तरह एक-एक करके मैंने सब लुटा दिया । नये कपड़े पहनने की प्रतिज्ञा अब भी चल रही थी । अन्त में एक दिन सबेरे मेरे रहने के मकान पर भी दूसरे का कब्जा हो गया । उस समय मैंने बड़े गर्व से अपने रिश्तेदारों से कहा, 'ले लो, अब क्या लोगे ?'

"अब अभिमानहृप्त मैं पास के मन्दिर की एक कोठरी में रहने लगा। जब भूखे मरने की नौबत आई तब किसी मित्र से उधार लेकर मैं साग-भाजी वेचने लगा। भीख मैंने नहीं माँगी, किसी के सामने झुका नहीं। यही मेरे अभिमान का कारण था। जब पहले दिन साग की टोकरी लेकर बाजार में बैठा तो मुझे देखने वालों की भीड़ लग गई। उस समय वे मुझे किस तरह देख रहे थे, यह मुझे नहीं मालूम, लेकिन मैं गर्व से फूला नहीं समा रहा था। एक बार जब मैं साग की टोकरी लिये बाजार में बैठा था तो एक नवयुवती आई। वह साग-भाजी चुनती जाती थी और उसकी आँखों से टप-टप आँसू बह रहे थे। वह साग लेकर चुपचाप चल दी। मैं कुछ भी समझ नहीं पाया, यह क्या था। दूसरे दिन वह फिर आयी। उस दिन भी साग लेते-लेते खामोश चेहरे से मुझे ही देख रही थी। मैं मैली धोती पहने था और नंगे बदन था। धोती प्रतिज्ञा के अनुसार नई थी, धुली न थी, क्योंकि मैं धुले कपड़े पहन नहीं सकता था। इतने पैसे नहीं थे कि और कपड़े सिलवाता।

"वह लड़की काफी सुन्दर थी। मैंने समझा लड़की मुझे चाहती है। कुछ ऐसा आकर्षण हुआ कि मैंने पता लगाकर उसके घर का चक्कर लगाना शुरू कर दिया। मुझ पर डाँट भी पड़ी। एकाध बार उसके घरवालों ने मुझे पीटा भी। फिर भी मैं नियमित रूप से उसके घर से दूर बिना कुछ कहे एक चबूतरे पर बैठा रहता।"

स्वामीजी ने टोककर पूछा, "क्यों, ऐसा क्यों करते थे ?"

"न जाने क्यों, मुझे ऐसा लगता था कि मैं इसके बिना जी नहीं सकता। वही मेरे जीवन का ध्येय थी ! अब न मुझे किसी का भय था न शरम। पशु की तरह निर्लज्ज मैं हो गया था। लोग मुझे दया से देखते, मैं उन्हें मूर्ख समझता। जब-तब उनका अपमान भी कर देता। उनकी ओर देखकर भी न देखता। समझाने का भी कोई असर मुझ पर नहीं पड़ रहा था। हारकर लोगों ने मुझे पुलिस बुलाने की धमकी दी। चबूतरेवाले ने मुझे उठा दिया तो मैं सड़क पर खड़ा रहने लगा।"

स्वामीजी हँसकर बोले, "प्रेमाग्रह था ?"

"हो सकता है।"

"तुम्हारी कहानी काफी रोचक है।"

उसने कहा, "एक बार मुझे पुलिस पकड़कर ले गई। दो दिन हिरासत में रखने के बाद छोड़ दिया। फिर भी मेरा वही क्रम रहा। अन्त में एक साँझ वह लड़की अपने छोटे भाई के साथ मेरे पास रोती हुई आई।

"'मैं पूछती हूँ क्या यह भले आदमियों का काम है? क्यों तुम मेरे पीछे पड़े हो। मुझे बदनाम कर रहे हो।' उसने कहा।

"मैंने हाथ जोड़कर उठते हुए कहा, 'अब नहीं बैठूँगा, लेकिन तुम्हारी याद मैं नहीं भुला सकता। न जाने तुम ने क्या कर दिया है।' मैं चला आया, और मन्दिर की कोठरी में जा लेटा। मैंने खाना छोड़ दिया। केवल पानी पीता। आठ दिन बीतने पर उसके घरवाले मेरे पास आये और बोले, 'हम कान्ता की शादी तुम्हारे साथ करने को तैयार हैं। उठो, खाना खाओ।'

"कुछ फल जो वे लाये थे, मैंने ले लिये। पीछे से मालूम हुआ, कान्ता मुझ से प्रेम करती है। दूसरे या तीसरे दिन उसके घर के एक आदमी ने आकर कहा, हम लोग हरिद्वार जा रहे हैं। हमारी इच्छा है तुम भी चलो। वहीं शादी की बातचीत होगी। मैं काफी कमजोर था फिर भी उनके साथ हो लिया। कुछ दिन हरिद्वार रहने के बाद हम लोग ऋषिकेश और लक्ष्मण झूला आये। इसी बीच एक साँझ नहाने के बहाने लाकर उन्होंने मुझे गंगा में धक्का दे दिया।"

काफी देर बाद स्वामीजी ने पूछा—"तुम्हारा नाम!"

"कमल।"

"स्वामीजी ने सुना तो चुप रहने के बाद बोले, अब?"

"मैं अब नहीं जाऊँगा। मैं चाहता हूँ कि वे लोग समझ लें कि मैं बह गया, मर गया। वैसे भी मेरी इच्छा उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने की नहीं है। आज मुझे लगता है वह एक सपना था। मैं स्वतन्त्र रहकर प्रसन्न हूँ। क्या मुझे संन्यास की दीक्षा दीजिएगा?"

"नहीं।" एकदम उनके मुँह से निकला। "तुम चाहो तो यहाँ रहकर पढ़

सकते हो। मेरे शिष्य तुमको पढ़ायेंगे। वे भी ब्रह्मचारी हैं, संन्यासी नहीं।"

"मुझे स्वीकार है।"

"लेकिन तुम्हारा पिछला चरित्र ?"

"जो बिगड़ सकता है वह सुधर भी सकता है महाराज !"

"क्या तुम मन से ऐसा मानते हो ?"

"मेरा मन आज तक रुका नहीं है, उसने मुझे बहाया है ?"

"और अब ?"

"अब आपके अधीन है।"

"तो तुम अपने को मेरे सुपुर्द कर रहे हो ?" स्वामीजी ने गम्भीर होकर प्रश्न किया।

"चाहता हूँ ऐसा हो।"

"मन की सबसे बड़ी कमजोरी उसकी अस्थिरता है। निश्चय करके बताओ। वैसे संसार के द्वार तुम्हारे लिए खुले हैं।"

स्वामीजी कुछ सोचते हुए उठकर चले गए। उसने पाया स्वामीजी विशेष रूप से उसकी चेष्टाओं और गतिविधियों को गहराई से देख रहे हैं। रात को सोते हुए शिवानन्द ने बताया, "स्वामीजी मनुष्य के अंतर्मन को पढ़ सकते हैं। तुम्हारे मन में क्या है, वे बता सकते हैं।"

यह मेरे लिए नया था।

स्वामीजी के लिए कमल 'मीडियम' बन गया। वे उसके मन का अध्ययन करने लगे। कमल का मन उन्हें आकर्षक और परीक्षा के योग्य लगा। उन्होंने उसे खुला छोड़ दिया। विद्यार्थी शिवानन्द के साथ उन्होंने कमल को ऋषिकेश के पुस्तकालय में भेजना शुरू किया और यह जानना चाहा कि वह क्या पढ़ता है। कौनसा विषय उसे पसंद है। एक बार उनके एक संन्यासी मित्र बम्बई से आए तो उन्होंने कमल को बम्बई भेज दिया। स्वामी हरिहरानन्द के पास प्रति सप्ताह उसकी रिपोर्ट आती।

बम्बईवाले स्वामीजी बड़े ठाठ से रहते थे। सदा रेशम पहनते। घोड़ा-गाड़ी में चलते। चाँदी की खड़ाऊँ पहनते। उनके कमरों में एक से एक महँगे

ईरानी और विदेशी कालीन, मखमली गद्दे, तकिये बिछे थे। नये-से-नये ढंग का फर्नीचर, उस समय का वैभव का सामान! दो आदमी तो उनके शरीर की मालिश करने के लिए थे। इत्र से उनके शरीर की मालिश होती, गंधी के यहाँ से एक-से-एक बढ़िया इत्र आते। कई रसोइये थे, कई नौकर। दो चोबदार चाँदी की पेटी लगाये दरवाजे पर तैनात रहते। स्वयं स्वामीजी काफी सुन्दर थे। विशाल ललाट, चमकता चेहरा, आकर्षक और सुघड़ शरीर, भव्य आकृति! कोई भी देखे तो देखता रह जाए! ऐसे थे वे स्वामीजी। भोजन करने बैठते तो बीस-पच्चीस प्रकार के भोजन चाँदी की थाली में सोने की कटोरियों में सजाए जाते। दो-चार आदमियों का उनके साथ बैठना आवश्यक था। दोपहर को भोजन के बाद आराम करते तो एक स्वच्छ नौकर उनके पैर दबाता। दूसरे कमरे में एक गायक तानपूरे पर हल्का राग छेड़ता और नींद आने पर बन्द कर देता। उठने पर कस्तूरी मिला दूध का एक गिलास! पाँच से छः के बीच में वे दर्शनार्थियों को दर्शन देते, कथा-वार्ता सुनाते। दर्शन करने वालों में नगर के प्रमुख सेठ, उनकी पत्नियाँ, बड़े-बड़े अफसर होते। मारवाड़ी, पारसी, बोहरे, खोजे, भाटिया, सभी उनके भक्त थे।

कमल ने देखा तो आँखें फट गईं। इतना वैभव, इतना विलास, कई दिनों तक उसकी समझ में ही नहीं आया कि वह एक संन्यासी के यहाँ है। शिव मंदिर में चाँदी की जलहरी, सोने का छत्र, चाँदी के बर्तन देखकर उसे लगा जैसे स्वप्न देख रहा है। उसे अपनी ऐयाशी के दिन भूल गए। बड़े कमरे की अलमारियों में सभी तरह की करीब दस हजार पुस्तकें थीं, पास के कमरे में लम्बी मेज पर ढेर-के-ढेर अंग्रेज़ी, गुजराती, हिन्दी के समाचारपत्र। स्वामीजी उन दिनों कोई पुस्तक लिख रहे थे। सबेरे वे अपने सेक्रेटरी को डिक्टेट कराते। बहु-ज्ञान-मंडित अजस्र वर्षा की तरह स्वामीजी के बोलने का ढंग देखकर कमल हैरान रह जाता। वे अंग्रेज़ी ऐसे बोलते जैसे उनकी मातृभाषा हो। गुजराती, मराठी, हिन्दी सभी में उनका प्रवेश था। जब संस्कृत बोलने लगते तो लगता जैसे सोता फूट गया है। इस स्थिति में कमल वहाँ पढ़ रहा था।

जैसे वर्षा के बाद धूप पाकर पौधे एकदम बढ़ने लगते हैं इसी तरह कमल का

ज्ञान के लिए प्यासा मन बाहर-भीतर चारों ओर से विकास पाने लगा। पहले वह स्वामीजी की सेवा में लगा। कुछ दिनों बाद उसे मन्दिर के संन्यासी का एक सहायक बना दिया गया। अब वह चार बजे उठकर नहाता, सुबह की आरती के लिए तैयारी करता। दो पंडित उस समय रुद्री का पाठ करते। आरती के समय लगभग एक घण्टे तक स्तुति-पाठ होता। अचानक शिवरात्रि आ पड़ने पर स्वयं स्वामीजी ने पूजा का भार सँभाल लिया। अब चार वेदपाठी वेद-पाठ कर रहे थे। चौबीस घण्टे लगातार शिवजी के सामने वेद-पाठ हुआ। गंगाजल से निरन्तर शिव-अभिषेक होता रहा। लोगों ने निराहार निर्जल व्रत रखा। कमल ने भी बड़े भक्ति-भाव से वह सब किया। रात भर मन्दिर में पूजा और जप करता रहा। भौतिक वैभव और अध्यात्म का समन्वय देखकर उसका भाव-प्रवण मन उन्मत्त हो उठा। बहुत कुछ उसने देखकर वातावरण से जाना, शेष पुस्तकों से। अब वह स्वामीजी को समाचारपत्र पढ़कर सुनाने लगा। इस सम्बन्ध में धीरे-धीरे रुचि बढ़ने पर उसने सभी तरह की पुस्तकें पढ़ीं। किसी विषय का पूर्ण ज्ञान न होने पर भी थोड़ी-थोड़ी सब बातें जानने लगा। स्वामीजी के पास सभी तरह के लोग आते। सभी विषयों पर वार्तालाप होता। कमल भी यह सब सुनता।

एक बार स्वामी कैवल्यानन्द लुनाविला के पास अपने मठ में तप के लिए पन्द्रह दिन के लिए गए तो कमल को भी साथ ले गए। वहाँ स्वामीजी ने केवल एक लँगोट पहन मृगछाला पर समाधि लगाई। बिलकुल एकान्त स्थान में बैठे तो तीन दिन तक निराहार, निर्जल बैठे रहे। न उनके पास कोई गया न उन्होंने किसी से बात की। तीन दिन बाद कुछ फल लेकर वे फिर समाधि में बैठ गए। इस तरह पन्द्रह दिन उन्होंने समाधि में बिताए। कमल के लिए यह नई बात थी। इस एकान्त स्थान में उसे कुछ भी करना नहीं था। वह या तो पुस्तकें पढ़ता या फिर इधर-उधर घूमता। प्रकृति के मनोरम दृश्यों में उसने एक चेतना, एक स्फूर्ति पाई। उसे लगा जैसे सम्पूर्ण प्रकृति में आनन्दमयी चेतना व्याप्त है। उसका अणु-अणु सजग है, जैसे कोई सोते-सोते साँस ले रहा हो; मौन, मूक होकर सौन्दर्य बिखेर रहा हो। मनुष्य में पाया जाने वाला सभी कुछ मूल रूप से प्रकृति में बिखर रहा है। इतना सौन्दर्य, इतनी खुशी, इतनी मादकता, इतनी भाव-विभो-

रता है इसमें। यह उसने रोम-रोम से पुलकित होकर पाया। अपने में उसने एक नया जीवन, नई दृष्टि, नई स्फूर्ति पाई। कमल ने पाया यह सब न पुस्तकों में है न और कहीं। उसका मनोमय कोष जैसे अभूतपूर्व रस से भर गया।

वह लौटा तो उसे बम्बई का वैभव भी तुच्छ लगा। मनुष्य बनावटी, वैभव क्षणिक; सांसारिक ज्ञान भंगुर। अब वह चुपचाप अपने कमरे में, जिसकी एक खिड़की समुद्र की ओर खुलती थी, बैठा देखता रहता। समुद्र की उत्ताल विशाल जल-राशि से वह बातें करता, उसकी बातें सुनता। रात को अँधेरे में समुद्र का गर्जन सुनकर उसे लगता जैसे वह चिरकाल से अपनी कोई कहानी सुना रहा है, बार-बार वही। शायद रात को, शायद दिन को, शायद दोनों को। हाँ, पूर्णिमा के दिन लहरों की कहानियाँ जैसे ज्यादा स्पष्ट हो जाती हैं, ज्यादा तेज, ज्यादा वेगभरी। वह आत्मरत होकर सुनता। एक बार उसे लगा ऐसा ही गर्जन उसके भीतर भी हो रहा है। उससे भी गहरा। बाहर से शान्त होने पर भी भीतर का गर्जन समुद्र के गर्जन से भी अधिक व्यापक, अधिक वेगवान है। उसका प्यासा मन उसमें रम गया।

अब वह दिन में और कभी रात में समुद्र के किनारे घूमने चला जाता। घंटों समुद्र के किनारे बैठा रहता। जुहू, चौपाटी, मैरिन ड्राइव के आस-पास चक्कर काटता। समय पर आकर खाना खा लेता और फिर बाहर निकल जाता। स्वामीजी ने देखा तो बोले, 'कहाँ रहता है?' 'कहीं नहीं महाराज'; उसने उत्तर दिया। और फिर नजर बचाकर बाहर निकल जाता। कमल एक दिन सवेरे बिना किसी से कहे, स्टीमर से एलीफेण्टा चला गया। दो दिन वहाँ घूमने के बाद लौटा तो रत्नागिरि की ओर चल दिया। जैसे समुद्र के किनारे घूमने का पागलपन उसे सवार हो, जैसे वह अपने को रोक न पाता हो। स्वप्न से अभिभूत की तरह उसकी दशा थी। समुद्र का गर्जन, लहरों का नर्तन, अपार, अकूल, अतल जल-राशि। वह देखता तो देखता ही रह जाता। रोम-रोम से उसके सौंदर्य का पान करता। एक दिन स्वामीजी ने समझाया तो बोला, "मैं बँधकर नहीं रह सकता स्वामीजी?"

हारकर [illegible] दिन स्वामीजी ने उसे वापस हरिहरानन्द के पास जाने की

आज्ञा दे दी। दो-तीन दिन बम्बई घूमने के बाद जब वह लौटने के लिये रेल में बैठा तो उसे लग रहा था सारे नगर पर समुद्र का शासन है। समुद्र ही बम्बई की आत्मा है, इसका प्राण है। प्रकृति का यह विशाल प्रपंच सागर यहाँ के निवासियों को अपने अक्षय वरदानों से जीवित करता रहता है। यही इस प्रदेश का देवता है। संसार की सभी नदियाँ इसकी पत्नी, सहेलियाँ हैं जो निरन्तर अपने स्वामी, अपने मित्र में लीन होने के लिए दौड़ती रहती हैं। इसमें लीन होकर जीवन की सार्थकता पाती हैं। बम्बई का वैभव देखकर उसकी आँखें चौंधिया गई थीं, किन्तु समुद्र के दर्शन करके तो वह भौंचक्का रह गया। उसकी कल्पना, धारणा की सीमाएँ जैसे टूट-टूटकर बिखर गईं। वह घंटों समुद्र को देखता, देखता ही रहता। यही सब सोचता जा रहा था वह।

गाड़ी में पहले से ही काफी भीड़ थी। फिर भी आने-जाने वालों का ताँता लग रहा था। इसी बीच उसने देखा एक दम्पती बड़ौदा से उसी कम्पार्टमेंट में चढ़ रहे हैं। दरवाजे के पास के यात्री उन्हें चढ़ने नहीं दे रहे हैं। यह देखकर वह आदमी इधर-उधर के कम्पार्टमेंट देखने गया। जब कहीं भी जगह न मिली तो बलपूर्वक उसी में घुस आये और दोनों दरवाजे के पास सामान के साथ खड़े हो गए। अचानक कमल ने इधर देखा तो बोल उठा, 'अरे, यह क्या ?' जैसे हृदय की सुप्त, संचित स्मृति मूर्त्त होकर आ गई। 'कान्ता !'

'कान्ता ! मैं भूल तो नहीं कर रहा हूँ ? नहीं, यह तो वही है। वही है। पर यहाँ कैसे, यह कौन है, इसका पति, तो क्या इसका विवाह हो गया ?' एकदम बहुत से प्रश्न उत्तर पाने को बेचैन होकर उसके दिमाग में मँडराने लगे। उसकी इच्छा हुई वह उसे पुकारकर पास बैठा ले। वह बेचैनी व्यग्रता से आधा उठा, जैसे उसे पुकार ही लेगा, पर न जाने क्या सोचकर फिर बैठ गया। उसका मन जैसे उसके भीतर रुक नहीं पा रहा था। इन्द्रियाँ बेकाबू हो रहीं थीं। एक प्रकार की अदम्य उत्तेजना उसमें जाग उठी। रोम-रोम की चेतना से वह कान्ता को देख रहा था। उसने खिड़की का डंडा जोर से पकड़ लिया। अचानक कान्ता की नज़र जो कमल पर पड़ी तो उसका सारा शरीर आश्चर्य और आगत चिन्ता

से काँप उठा। उसे लगा जैसे वह गिर जायगी। अपने को सँभालते हुए भी वह लकड़ी की दीवार के सहारे बैठ गई, जैसे गिर गई हो। साथी ने देखा तो सँभाला।

पास बैठे लोगों ने कहना शुरू किया, 'क्या बेहोश हो गई? गर्मी से बेहोश हो गई है बाई।'

लोगों में दया, माया, ममता जगी। सट-सटाकर हटते हुए उन्होंने उसे खुलकर बैठे कमल की सीट के पास ला बिठाया। थोड़ी देर में दोनों कमल के पास आ गए। पति पत्नी के ऊपर अखबार से पंखा कर रहा था। दूसरे ने सुराही से निकालकर पानी दिया। कान्ता को चेतना हुई तो वह कमल की ओर से मुँह फेरकर बैठ गई। कभी जान या अनजान में निगाह उठाते ही उसने पाया कि कमल सफेद कुरता, वैसी ही लुंगी पहने, घुटा हुआ सिर, दाढ़ी-मूँछ साफ, पहले से अधिक सुन्दर, तीखे नक्श, बड़ी फैली आँखों से उसे ही देख रहा है। बन्द बोतल में सोडे की तरह बाहर से निष्क्रिय दिखाई देती हुई भी कान्ता उस अप्रत्याशित मिलाप से बेचैन हो रही थी। उसने सुन रखा था कमल गंगा में बह गया, उसके भाइयों के लाख प्रयत्न करने पर भी वह बचाया नहीं जा सका। तेरह दिन तक सब लोग इस तरह दिखलाते रहे जैसे उनका अपना कोई चला गया हो। एक ब्राह्मण के जरिये उसका क्रिया-कर्म हुआ। ब्राह्मण भोजन कराये गए। किस तरह दुखी होकर बड़े भाई ने यह सब किया। माँ तो सुनकर मूर्छित ही हो गई। और लोग भी रूमाल से मुँह छिपाकर कोनों में पड़े रहते। उसने सुना तो स्वयं वह भी जैसे एकदम अभिभूत-सी हो गई। उसकी समझ में नहीं आया कि रोना चाहने पर भी सबके सामने क्यों नहीं रोई। फिर भी मुँह फेर आँखों से गिरती आँसुओं की मोटी-मोटी बूँदों को वह नहीं रोक सकी। यह वह नहीं समझ सकी थी उस समय कि उसे कमल से प्रेम था या क्या। फिर भी एक प्रकार की चिपकन उसके भीतर थी, एक लगाव था। हो सकता है उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर एक दया का भाव उसमें जागा हो। सारी जात-बिरादरी में उसकी चर्चा थी कि एक इतने बड़े घर का लड़का बाजार में टोकरी लिए साग बेच रहा है, इसीलिए कौतूहलवश दो-एक बार उससे साग खरीदने

के बहाने देखने गई। उसको इस हालत में देखकर उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह चाहने लगी यदि उसके पास रुपया होता तो सब देकर वह उसे बचा लेती। धीरे-धीरे जब वह उसके घर के पास धरना देकर बैठ गया तो लज्जा, संकोचवश उसे कमल से बेहद घृणा हो गई। गुस्से के मारे उसके जी में आया कि पत्थर लेकर उसका सिर फोड़ दे। इस दुष्ट ने उसे बदनाम कर दिया। उसे कहीं का भी न रखा। फिर धीरे-धीरे उसके मन में न जाने फिर कैसे भाव आने लगे कि वह जब-तब खिड़की से झाँककर उसे चबूतरे पर बैठा देखना चाहने लगी। कभी-कभी उसके मन में हुआ कि चुपके से वहाँ जाकर कहे, 'उठो, मैं तुम्हारी हूँ। तुम्हारी हूँ मैं।' दिन-रात जैसे कमल ही उसे दिखाई देने लगा।

इसी प्रकार की बातें उसकी स्मृति में झाँकने लगीं। बहुत देर तक वह इन्हीं विचारों में खोई रही। इसी समय उसके पति ने रेल-यात्री के नाते औरों के समान कमल से भी बातें कीं। मालूम हुआ कि वह हरिद्वार जा रहा है। बम्बई से आ रहा है। कान्ता सोच रही थी हरिद्वार, हरिद्वार क्यों जा रहा है? यह इसका क्या रूप है? साधु हो गया है क्या? लेकिन कपड़े तो साधुओं जैसे नहीं हैं। एक स्टेशन पर जब उसका पति कुछ लेने के लिए उतरा तो उसे पानी का गिलास देने के बहाने कमल को भरपूर देखने की चेष्टा की। कमल बाहर चला गया था। उसने देखा कम्बल का बिस्तर, सामान में एक कम्बल, एक चादर, दो-चार कपड़े और कुछ पुस्तकें, बस। साधुओं जैसा पीतल का डोल।

कमल ने पानी पीया और अपनी जगह आ बैठा। कान्ता का पति कुछ मिठाई-पानी लेकर लौटा तो उसने खाना माँगा। उसने तौलिया दोनों के बीच में फैला लिया और खाने लगा। आग्रह करने पर भी कान्ता ने साथ नहीं दिया। कमल निःसंग भाव से खिड़की में झाँक रहा था।

कमल ने यह समझकर सन्तोष कर लिया कि कान्ता की शादी इस व्यक्ति के साथ हो गई है। उसने अपने को रोका और उत्सुकता और जिज्ञासा के वेग को दबा लेना चाहा। फिर भी मानस आवेग उसको अस्थिर कर रहे थे। कान्ता के पति ने खाना खाकर हाथ-मुँह धोये, पान खाया और सामने खिड़की से देखने लगा। बीच-बीच में वह कान्ता से कुछ बातें करता। उससे खाना खा लेने की

जिद करता।

"यह सामने बैठा साधु मालूम पड़ता है," कान्ता बोली।

"शायद।"

"लगता है इसने कुछ भी खाया नहीं है। क्या हम इसे कुछ दे दें ?"

"ठहरो, पूछता हूँ।"

"आप कुछ खाएँगे ?"

"मैं ?" कमल हैरानी दबाकर कहने लगा। "मैं रेल में नहीं खाता।"

"चाहें तो अगले स्टेशन पर कुछ फल लेलीजिए।"

"अभी तो इच्छा नहीं है। आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"आगरा।"

"आगरा में क्या करते हैं ?"

"व्यापार।"

"क्या ?"

"कपड़े का व्यापार और आप क्या साधु हैं ?"

"साधु होने का अभ्यास कर रहा हूँ।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब कुछ भी नहीं।"

"जवान आदमी होकर साधु हो गए। क्या यह जरूरी था ?"

"आपका मतलब है क्या मेरे भीतर वैराग्य के भाव स्वाभाविक रूप से आ गए हैं या परिस्थितियों ने मुझे साधु बना दिया है ?"

"जी।"

"इसका मैं अभी कोई उत्तर नहीं दे सकता।"

"कब से यह वेश रखा है ?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका उत्तर देना उसे कठिन लगा। वह बोला, "क्या हर बात का उत्तर देना जरूरी है ? खासकरके उसे जो थोड़ी देर रेल में बैठकर चला जायगा।"

कान्ता का पति चुप हो गया। थोडी देर बाद बोला, "आपके रूप को देख

कर लगता है कि आप किसी भले घर के लड़के हैं, खाते-पीते। शायद खुफिया पुलिस में हों।" यह कहकर वह जरा ठिठका। उसे लगा ऐसा कहकर उसने अच्छा नहीं किया।

कमल ने हँसकर जबाब दिया, "तब तो आपको और भी नहीं पूछना चाहिए। अगर मैं आपसे पूछूँ, क्या यह आपकी पत्नी है तो आपको कैसा लगे ?"

"इसमें क्या है, साफ है कि यह मेरी पत्नी है और मैं इसका वैध पति।"

"इसका मतलब हुआ कि आप तो वैध पति हैं ये आपकी वैध पत्नी नहीं।"

"दो तरफ वैध न लगाकर एक तरफ ही लगा दिया, इसमें क्या है ?"

"नहीं, इसका मतलब हुआ यह आपको अपना वैध पति मानती हैं, आप इनको वैध पत्नी नहीं मानते। यानी आपका चरित्र सन्देहजनक है। कम-से-कम कोर्ट में केस जाने पर यही अर्थ निकाला जा सकता है।"

'कोर्ट' का नाम सुनकर कान्ता के पति शम्भूनाथ को लगा, सचमुच यह खुफिया पुलिस का कोई आदमी है। हो सकता है उस विभाग का कोई अफसर हो। स्वभाव से भीरू शम्भूनाथ मुँह फेरकर बैठ गया। उसके मन में आया, अगले स्टेशन पर किसी और डिब्बे में जाकर बैठ जाय। यही बात उसने अपनी पत्नी से कही। एक बार वह भी भीतर-ही-भीतर हँसी। बोली, "डरते क्यों हो, क्या हमने चोरी की है ?"

"नहीं, कोई मुसीबत न आजाय।"

"तुम चिन्ता मत करो।"

रात को शम्भूनाथ सो गया। कमल बैठा रहा। कान्ता भी आधी नींद में कभी इधर, कभी उधर ढुलकती रही।

एक बार आँख खुलते ही कान्ता ने देखा यह आदमी जब से गाड़ी में बैठा है सिवा पानी के इसने और कुछ नहीं लिया है, जबकि वे दोनों कई बार खा चुके हैं। कम्पार्टमैण्ट के और लोग भी निरन्तर चरते चले जा रहे थे। अचानक एक स्टेशन पर उसने कहा, "पैसा न हो तो खाना लेकर दे दूँ।"

कमल ने देखा, कान्ता की आँखों में करुणा है, जैसे वह उसे पूरी तरह पहचान गई है। उसे प्रसन्नता हुई। उसने कान्ता की तरफ देखते रहकर

सधुक्कड़ी ढंग से उत्तर दिया—

"इस शरीर की एक भूख नहीं है। कहाँ तक इसकी इच्छा पूरी की जा सकती है। अच्छा यही है कि इसकी कामना को नष्ट कर दिया जाय।"

कमल ने वैराग्य-भरा उत्तर दिया। फिर भी उसमें छिपी व्यथा का आभास कान्ता को हुआ।"

"तो क्या कोई इच्छा पूरी न होने पर शरीर को मार डालना चाहिए। यह तो कायरता है। साधु होना कायरता की निशानी है।"

कमल के विश्वास पर यह एक करारी चोट थी। ऐसा उसने कभी सोचा भी न था।

"मैं अपने को साधु कहाँ कहता हूँ ?"

"वेश तो कहता है। कमाओ, खाओ। क्या इतना सुन्दर जीवन साधु होकर बुझा देने के लिए है।"

कान्ता ने जानना चाहा कि उसकी बात का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है। कमल भीतर से चेतन हुआ। उसे जवाब कोई नहीं सूझा। उस समय भी लोग सोते-सोते उठकर कोई चाय, कोई मिठाई खा रहे थे। शम्भूनाथ मरा हुआ सा बेसुध पड़ा था। कम्पार्टमैण्ट में अधिकतर लोग सो रहे थे। कुछ सिगरेट-बीड़ी फूँक रहे थे। दूसरी तरफ के दो आदमी कान्ता और कमल को देखकर काना-फूसी करते हुए कह रहे थे, "मालिक सो गया है तो यह बाबाजी औरत को फँसा रहा है। देख नहीं रहे, कैसी घुट-घुटकर बातें हो रही हैं।"

"ऐसा ही जमाना है। देखते जाओ, अभी यह स्त्री मालिक को सोता छोड़-कर किसी स्टेशन पर उतर जायगी।"

दूसरा आदमी उन दोनों की तरफ देखकर जोर से खाँसा। कमल ने उधर देखा तो उसने अपना मुँह खिड़की की तरफ कर लिया। कान्ता फिर भी बोल रही थी।

"मैंने तो समझा था कि तुम······।"

"मुझे दूसरा जीवन मिला कान्ता।" उसने खिड़की से मुँह फेरकर कहा।

"अगर कह सको तो कहो।"

"कह सकने की क्या बात है ! बस, बच गया यह समझो । बहते हुए मुझे एक स्वामीजी ने बचाया ।"

"फिर ?"

"तब से उन्हीं के पास हूँ । संसार से जी ऊब गया है । जिन पर विश्वास किया उन्होंने धोखा दिया । मैंने जीवन में धोखा-ही-धोखा खाया है ।"

'बराबर धोखा खाने पर भी तुम कुछ न सीख सके ।"

"सीखा यही कि मैं किसी लायक नहीं हूँ ।"

"यह कमजोरी है ।"

"कमजोरी अनुभव से हुई है ।"

"यह अच्छा ही हुआ कि मुझे ऐसे कमजोर से दूर रहना पड़ा ।" कान्ता ने इतना कहकर जैसे उपेक्षा, घृणा प्रकट की । उसका यह अन्तिम वाक्य कमल के हृदय में तीर की तरह चुभ गया। उसे प्रतीत हुआ वह सचमुच निकम्मा है। पर अब क्या उपाय है । क्या करे वह । वह निरपेक्ष भाव से बोला, "किसी को मेरा खयाल करने की क्या जरूरत है अब ! जो हूँ सो हूँ ।"

"मैं चाहती थी तुम अपने को पहचानते । जो आदमी प्रेम हो जाने पर किसी के लिए जान दे सकता है, वह क्या इतना कमजोर होता है कमल ?"

दोनों बातें करते जा रहे थे । लोग दोनों को बातें करते देखकर चौकन्ने हो रहे थे । एक के बाद दूसरे उन दोनों की बातें जानना चाहते थे । और कुछ न सुन पाने पर भी 'प्रेम' शब्द उनके कान में पड़ा। गाड़ी तेज रफ्तार से चली जा रही थी । इस समय पुल आने पर गाड़ी की आवाज और भी तेज हो गई।

कमल के मन में जैसे एक उत्तेजना हुई । उसे लगा कान्ता ठीक ही कह रही है । आज उसके मन का वह उत्तान वेग कहाँ गया । कहाँ गया वह प्रेम के लिए त्याग की पीड़ा का आभास । हर रोज नये कपड़े पहनने की दृढ़ता, जिसका उसने कष्ट-पर-कष्ट सहते हुए भी पालन किया था । तो क्या वह कमजोर रहा उस समय ? परीक्षा में तपकर आदमी मजबूत होता है । वह परीक्षा पास करके भी फेल हो गया है ।

स्टेशन आ गया तो कमल पानी लेने उठा । कान्ता से भी उसने पूछा और

एक गिलास लेकर उतरा । पानी के साथ चाय का एक प्याला उसने कान्ता को दिया तो यह देखकर लोग अत्यन्त उत्तेजित हो उठे । एक चिल्लाकर कहने लगा, "कैसा बुरा जमाना है । किस पर विश्वास करे कोई ?"

"औरत की जात ही ऐसी होती है भाई साहब !"—दूसरे ने जवाब दिया।

"अब इसी को देखो ।"

"हाँ, और क्या ?"

कान्ता ने प्याला लेकर मालिक को जगाते हुए कहा, "चाय पीओगे ? लो पीओ ।" फिर चिल्लाकर बोली, "देखो कमल, एक प्याला और ले लेना ।" शम्भूनाथ उठ बैठा, और पत्नी को इस तरह उस बाबाजी को पुकारते देखकर अचकचाया ।

"यह कौन है ?"

"कमल, हमारी ही जात का पास का भाई है ।"

कमल ने एक प्याला लेकर कान्ता को दिया तो उसने आदेश देते हुए कमल से कहा, "एक प्याला अपने लिए भी ले लेना, सुना !"

"हाँ, भई !" चाय पीते हुए शम्भू ने समर्थन किया ।

लोगों ने यह देखा तो भौंचक्के रह गए। एक बोला, "यह भी स्त्री का एक रूप है ।"

पिछली सीट के लोग घूर-घूरकर उन तीनों को देख रहे थे। आगरा स्टेशन पर दम्पति उतरने लगे तो कान्ता ने कहा, "चाहो तो एकाध दिन के लिए उतर जाओ कमल ।"

"हाँ, क्या हर्ज है ?" शम्भूनाथ को जबरदस्ती बोलना पड़ा ।

कमल पहले कुछ हिचका, फिर उतरने लगा तो गाड़ी में बैठे लोग एक दूसरे से नजर मिलाकर जोर से खाँसे। कान्ता ने बाहर से ही कहा, "गधे हैं ।"

कमल भीतर से आ रहा था । शम्भूनाथ भीतर-ही-भीतर मजबूरी से कुसमुसा रहा था ।

आगरे में कमल एक दिन ठहरने के बजाय लगभग एक सप्ताह रहा। उस समय असंयम का बाँध जैसे टूट गया। कान्ता के प्रति वह इतना अनुरक्त हो उठा कि एक दिन कान्ता को कहना पड़ा कि वह यहाँ से चला जाय।

घर में उन दिनों शम्भू की माँ नहीं थी। एक नौकरानी और कान्ता! शम्भू बेचारा दिन भर दुकान पर रहता। पूछने पर पत्नी ने समझा दिया कि वह उसका भाई है। वैसे भी वह उन लोगों में था जो पत्नी के भृकुटि-कोप के सामने पहले ही नत हो जाते हैं, सौन्दर्य की दीप-शिखा के आगे पतंग की तरह पहले ही प्राण अर्पित कर देते हैं। माँ के बहुत अनुनय-विनय करने पर कान्ता की माँ ने लड़की का ब्याह माना। वह चाहती थी बदनामी से तिरस्कृत लड़की ऐसी जगह जाय जहाँ इस तरह की चर्चा दूर-दूर तक सुनाई न पड़े। इसीलिए बनारस से दूर आगरे एक काम से आने पर शम्भू की माँ का आँचल पसारकर लड़की माँगना उसे अच्छा लगा। शम्भू भी कोई पढ़ा-लिखा नहीं था। मुनीमी के साथ सट्टा खेलते-खेलते एक बार उसके हाथ इतना रुपया आ गया कि उसने कपड़े की दुकान खोल ली। जब शादी में ही शम्भू ने अपनी भावी भाग्य-लक्ष्मी को देखा तो दंग रह गया। वह तो जैसे सौन्दर्य-सागर में नहाकर आई थी। विवाह की वेदी के प्रयाग में पत्नी के सौन्दर्य गंगा-जल में शम्भू ने अपने हृदय की यमुना को उसी समय मिला दिया। जैसे शम्भू का अस्तित्व पत्नी में लीन हो गया। भिखारी को मणि मिल गई। उसकी माँ ने बहू को देखा तो कई दिन तक उसकी छवि पर भूली-सी रही। बहू में इतने रूप की क्या वह कल्पना कर सकती थी? वह तो चाहती थी इस गरीब को कैसी भी कानी-कुबड़ी लड़की मिल जाय, वही बहुत है। किन्तु कान्ता का फटा पड़ रहा सौन्दर्य देखकर माँ बेटों ने न जाने कितनी बार पितरों को मन-ही-मन मनाया।

ऐसी हालत में शम्भू का पत्नी-भक्त बनना स्वाभाविक था। और यही कारण है जब कान्ता ने उस साधु वेशधारी कमल को 'भाई' कहकर उतरने के लिए कहा तो न चाहते हुए भी उसे 'हाँ' करनी पड़ी। इसके बाद दुकान में बैठे ग्राहक के सामने कपड़ा फाड़ने पर कभी-कभी वह चौंक उठता, जैसे उसका गुलाम मन भी संशय में भरकर पत्नी के हृदय की दीवार को फाँदकर एकाएक

भीतर झाँकना चाहता है। उसका निर्बल मन यह कभी नहीं चाहता था कि पत्नी के प्रति उसके मन में कोई दुर्भावना पैदा हो। इसीलिए अनाहूत भय से डरकर दरवाजे के आँगन में पैर रखते ही बिना खाँसी के खाँसने लगता, पुराने जूते भी ऐसे बजाता जैसे इनमें कील लगी है और बिना बोले नहीं रह सकते। आत्मा की आँखों के सामने आ पड़ने वाली संदेह की धूमिल दीवार के पार कल्पना में उठे भय के चित्र को वह वरा देना चाहता था। इसीलिए न चाहने पर भी कमल को वह पूरा साधु देखना चाहता था। ऐसा था उसका मन!

इधर कान्ता के अवचेतन मन में आसक्ति का स्रोत चेतन मन की चालाकी से कभी करुणा और कभी व्यावहारिक स्नेह के रूप में प्रगट होता। स्त्री के अवचेतन की स्नेह-ग्रन्थियाँ इतनी अप्रत्यक्ष होती हैं कि वह आसानी से अपनी इच्छाएँ दमित करके मनुष्य के सामने दूसरे रूप में प्रकट होती हैं। शम्भू के आत्म-समर्पण ने कान्ता में एक प्रकार की विरक्ति, एक प्रकार की छिपी वितृष्णा उत्पन्न कर दी थी। वह पौरुष चाहती थी जो शम्भू में ढूँढे भी नहीं मिल रहा था। इसी से उदास होकर उसने देखते ही कमल को अपनाना चाहा। किन्तु कमल तो जैसे समर्पण के लिए तैयार होकर रेल से उतरा था।

उस समय वह सीधी लेटी थी। उसकी मुलायम केश-राशि आलिंगन के लिए पसारी भुजाओं-सी फैली हुई थी। नियम और समाज-मर्यादा में बाँधने वाली चूड़ियों और कड़ों से सुशोभित दोनों कलाइयों से उरोजों को छिपाए वह आँख बन्द किये लेटी थी। शरीर की सुषमा छिटककर देह की रखवाली कर रही थी, जैसे धीरे-धीरे चलती हुई साँसों से कमल को मूक संदेशा दे रही थी। फिर भी वह कुछ नहीं समझ पा रहा था। वह बैठा ही रहा। उसके हृदय का आवेग बढ़कर भी क्रियात्मक नहीं बन पा रहा था, जैसे साहस के पास आते-आते ही जड़ पड़ जाता हो, मन की सिहरन को संकोच ने बाँध लिया हो। भय उसको आगे नहीं बढ़ने दे रहा था। उधर कान्ता लज्जा से बँधी सर्वांग से उसे समर्पण करना चाहती थी। समर्पण, जिसके लिए प्राण उबल रहे थे, हृदय उछल रहा था। प्रतीक्षा के झूले में उद्वेलित देह सहारा चाहती थी वज्रपाश का। दोनों ओर दीवारें थीं। कमल में एक जड़ता-सी छा गई। उसने हाथ समेट

लिया। वह उत्तुंग आवेग को न दबा पाकर डरकर उठा और दूसरे कमरे में चला गया। कान्ता ने आहट पाकर आँखें खोल दीं। उसे लगा जैसे वह हार गई है। उसका सौन्दर्य निकम्मा है। उसकी राशि-राशि देह-सुषमा केवल दिखावा है। आँखें खोले वह पड़ी रही। फिर उठ बैठी। उसके हृदय की धड़कन दूनी हो गई। आँखों में ग्लानि और फिर क्रोध की छाया जागी। उसे कमल पर क्रोध आया। 'कितना मूर्ख है यह, कितना अनाड़ी, नपुंसक, कायर।'

उसके शरीर की नसें उस परिस्थिति में तन गईं। अपने को न दबा पाकर वह उठी और खिड़की के सहारे गली में देखने लगी। उसका भीतर धधक रहा था। मन की मरोरें धीरे-धीरे सोती जा रही थीं। उसने याद किया, 'कितनी उमंग से उसने कमल को आह्वान करने का अवसर दिया था। किन्तु यह मूर्ख··· नहीं, यह इस लायक नहीं है, पुरुषत्वहीन!' यह शब्द उसने और भी जोर से कहा। खिड़की की चौखट पर रखे दोनों हाथों से उसने अपने उरोजों को जोर से दबा लिया और इतना भींचा कि दर्द होने लगा। दोनों जाँघें एक दूसरी से दबा लीं। थोड़ी देर बाद वह फफककर रो उठी। कोई गली से उसे देख न ले इसलिए उसने आँसू पोंछे और फिर पलँग पर जा लेटी। शाम तक न कमल के कमरे की तरफ गई और न सामना होने पर उससे बात की। कमल को देखते ही उसका चेहरा तमतमा उठता; एक घृणा जाग उठती।

उधर कमल ने जब अपने प्रति कान्ता में उपेक्षा पाई तो वह और भी डरा। उसने समझा उसके बाल छू लेने या इसी तरह की हरकत से वह नाराज है। उसने ऐसा क्यों किया? उसे अब इस तरह के व्यवहार का क्या अधिकार था? क्यों उसने अपने पर संयम नहीं रखा? कितना मूर्ख है वह! उसे याद आया, रेल से उतरने के समय कान्ता ने उसको 'भाई' कहकर परिचय दिया था। तो क्या उसने भाई की तरह रहकर बहन की रक्षा की? वह अपने को धिक्कारता काफी देर तक बैठा रहा। उसकी इच्छा हुई वह छिपकर भाग जाय। बहुत देर तक वह इस मौके की तलाश में भी रहा, लेकिन रास्ता बिलकुल कान्ता के कमरे के सामने से था। वह भीतर कमरे में टहलने लगा। एक बार उसके जी में आया, माफी माँग ले। यह माफी माँगने का भाव सोचते-

सोचते इतना बढ़ा कि वह कमरे से बाहर आ गया। सामने चटाई पर कान्ता बैठी स्वेटर बुन रही थी। कान्ता ने देखा तो निगाह नीची कर ली। सामने काफी देर तक मूक खड़े रहने के बाद कमल ने कहा, "मैं माफी माँगता हूँ कान्ता !"

वह चुप थी।

थोड़ी देर बाद फिर उसने कहा, "मुझ से गलती हुई, माफ कर दो।" इतना कहकर चटाई से नीचे बैठ गया।

"बोलो माफ किया," वह जैसे उसके पैर छूने लगा।

"हटो, क्या करते हो ?"

दोनों काफी देर तक मौन रहे।

"मुझे आज्ञा दो।"

"हाँ, जाओ जाओ," थोड़ी देर बाद कड़कती हुई आवाज में कान्ता ने कहा, "संन्यास लेने में देर न हो जाय। मुमकिन है देर होने पर स्वर्ग न मिले।" कान्ता ने बुनते हुए हाथ रोककर कहा, और फिर हाथ चलने लगे।

कमल कुछ भी न समझा, "नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं कमज़ोर मनुष्य हूँ कान्ता। मुझे बिलकुल ध्यान न रहा।"

"कैसा ध्यान ?"

"मुझ से अपराध हो गया।"

"कमज़ोर हो न ?"

"हाँ।"

"कब जा रहे हो ?"

"शाम की गाड़ी से चला जाऊँ ?"

"शाम तो देर से होगी।"

कमल सकपका गया। उसे लगा जैसे कान्ता उसे अभी जाने के लिये कह रही है। वह भोलेपन से बोला, "तो अभी चला जाऊँ ?"

"बुरा नहीं है।" थोड़ी देर बाद फिर बोली, "तुम्हारे जैसे आदमी को साधु होना ही चाहिए। वह पहला रूप शायद ढोंग था।"

"कौनसा रूप ?"

"सोच लो।"

"मुझे दुःख है, मैं उतरा ही क्यों, सीधा चला जाता।"

"तो अब तक स्वर्ग के दरवाजे खुल गए होते, क्यों ?"

"नहीं, ऐसा तो नहीं है। अब लगता है वह मेरा पागलपन था।"

"चलो, बहुत देर बाद समझ आई।"

कमल सोचता हुआ सिर पर हाथ फेरने लगा; निगाह नीची कर ली। वह जान नहीं पाया, कान्ता क्या चाहती है। यहाँ आने पर उसके भीतर सोया हुआ उन्माद जाग गया था। एक लगाव-सा उसमें था। एक आकर्षण-सा था। वह अपना रूप भूल गया था। रूप के एक प्रकाश से उसका मन चौंधिया गया था। कुछ पिछला जागृत हुआ। इसी में उसने चाहा कि अपने को उसमें बुझा दे। तृप्त कर ले। किन्तु साहस····· इस आत्म-ग्लानि में वह जैसे फिर जाग उठा। उसे लगा, कान्ता अब उसकी नहीं है। वह कभी का उसे भुला चुका है। इतने दिन साधुओं के सम्पर्क में रहने पर उसकी वासना को एक धक्का लग चुका है। फिर वही तो है यह जिसके घर के लोगों ने उसे गंगा में बहा दिया था। सम्भव है कान्ता ने भी यही चाहा हो।

"तो क्या अब साधु ही बने रहना है ?"

कान्ता के इस प्रश्न से उसमें एक प्रकार की तिक्तता भरी। उसने उत्तर दिया।

"यह तो अपने से पूछो, कान्ता।"

कान्ता, जो अब तक कमल को तोड़ने वाला खिलौना बनाकर खेल रही थी, चौंकी। उसे लगा जैसे कमल ने उसके कमजोर पहलू को छू दिया। वह चुप रही और सफाई देने के तौर पर बोली, "मुझ से किसी ने नहीं पूछा, तुम्हारा खयाल गलत है।"

"भला, मैं क्या जानूँ। क्या तुम यही मानते हो ?"

"मुझे ऐसा लगा, इसी से कह दिया। अब क्या हो सकता है ? मेरा रास्ता अलग हो गया है। जैसे मुझे किसी ने दूसरी तरफ जाने वाली गाड़ी में बिठा

दिया है। पहली गाड़ी में मेरे लिये जगह नहीं रही। मेरी सीट पर और कोई आकर बैठ गया है।"

कान्ता ने उसी स्वर में कहा, "जो बैठ गया है उसका टिकट पुराना है, हकदार वह भी नहीं।"

"लेकिन मैं अब कहाँ बैठ सकता हूँ। मैं आज जाना चाहता हूँ।"

कान्ता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह स्वेटर बुनती रही। उसने माना, कमल ठीक कह रहा है। उसका अब कोई अधिकार नहीं है। वह उसकी कोई नहीं है। वह जो उसे 'भाई' कहकर उतार लाई वह वैसा ही बना रहने के लिए क्या ? क्या वह उसके भीतर का सच्चा भाव था ? वह क्या करने जा रही थी। आत्म-निगूहन भाव से भीतर-ही-भीतर जैसे वह तड़प उठी। अपने उस बहाव से, झोंके से जैसे वह सिहर उठी हो। न सही, पति के प्रति ईमानदारी, वह अपने प्रति भी तो ईमानदार नहीं रही। समाज की उसे परवा नहीं है। छिपाकर किया गया पाप क्या पाप नहीं होता ? लेकिन वह इतनी उत्तरंग, एकदम अप्रत्याशित रूप से इतनी उन्मत्त क्यों हो उठी ?

कमल कमरे में चला गया। उसके हाथ स्वेटर बुनते-बुनते रुक गए। 'यह ठीक ही हुआ, काफी देर बाद फिर दूसरे विचार उसके भीतर जागे। मानस-उत्ताड़न जागा। नहीं, नहीं, यह मेरी कमजोरी है। संस्कारों की कमजोरी है। इसमें कुछ भी बुराई नहीं है। सभी ऐसा करते हैं। मैं स्वतन्त्र हूँ। पति से मुझे क्या मिल रहा है। मैं भूखी हूँ। मुझे तृप्ति चाहिए। मैं इसीलिए उसे लाई थी।' उसके जी में एक बार आया कि कमल के कमरे में जाकर उससे लिपट जाय। उससे कहे, 'कमल, मैं तुम्हारी हूँ। तुम्हारी हूँ। तुम्हें ही मैंने हृदय से वरा है। तुम्हारे बहा देने में मेरा बिलकुल हाथ न था।' वह जड़ की तरह उठी और कमल के दरवाजे तक गई। वह भीतर कमरे में बिस्तर बाँध रहा था।

"मैं जा रहा हूँ कान्ता।"

उसके जी में आया कह दे, "तो मुझे भी ले चलो।" लेकिन वह कह नहीं सकी। चुप खड़ी रही। उसका सर्वांग ठिठुर रहा था। एक सिहरन उसके शरीर में दौड़ रही थी। इतने में कमल जड़ की तरह एक किताब उठाकर पढ़ने

लगा। उसने कान्ता की ओर देखा तक नहीं। कान्ता देर तक खड़ी रही। वह आगे बढ़ी। उसके पास जाकर बोली, "क्या अभी जाओगे ?"

उसने रूखे स्वर से उत्तर दिया, 'हाँ' और किताब पढ़ने में लगा रहा। कान्ता चुपचाप आकर कमरे में लेट रही।

वह सोच रहा था, "क्यों वह उसकी साधारण-सी बात को वरदान मान बैठा। उसके चारों तरफ चकई की तरह घूमा। दाँत निपोरकर मुस्कराते हुए ऐसे देखा जैसे चिरकाल के भूखे के आगे बहुत स्वादिष्ट भोजन का थाल रखा हो। पर सहसा...। एकान्त में बैठकर कान्ता के मूक रहने पर वह...। डरते-डरते बातें करता था। एक दिन उसने खाना खाने के लिए बुलाने पर डरते-डरते उसका पल्ला छू लिया। इसी तरह एक दोपहर सोती हुई कान्ता के पास चुपचाप आकर बैठ गया और उसके बालों के किनारे सँवारने लगा। बाहर से न चाहते हुए भी दो-एक बार कान्ता ने आँख बन्द करके न जाने क्या चाहा, यह कि वह बलपूर्वक उसे अंक में भर ले। वह बहुत देर मौन पड़ी रही। बहुत देर बतलाना चाहती थी जैसे सो रही है।" ...नहीं और नहीं। मैं भूला।

नहीं कह सकते कि इस प्रक्षेप से कमल ने क्या सीखा। किन्तु वह कई दिन तक फिर गम्भीर बना रहा। जैसे उसने इतने दिनों तक कोई सपना देखा हो। स्टेशन तक आते-आते उसे एक प्रकार की खिसियाई खुशी हुई और टिकट ले कर गाड़ी में बैठने के बाद वह अपने में खो गया। दो चित्र-पट की तरह दो भिन्न तस्वीरें उसके दिमाग में घूम जातीं। उसे मालूम होता जैसे एक दर्शक की तरह उन्हें देख रहा है। न उसे अपने साधु-जीवन को देखकर खुशी है और न कान्ता के रोमांसजन्य अपमान में दुख। वह निर्विकार भाव से उन दोनों अवस्थाओं का द्रष्टा है। दोनों में उसका कोई हाथ नहीं है। वह उनमें इतना खो गया कि उसे अपने रेल में बैठने पर लोगों की बात-चीत का भी ध्यान न रहा। उसे यह भी याद न रहा कि वह कहाँ जा रहा है, कौन है। इसी बीच टिकट चैकर आकर जब उससे टिकट माँगने लगा तब भी वह यह न जान सका

कि वह क्या चाहता है, क्यों खड़ा है। वह टिकट चैकर को देख रहा था। जब कमल आँख खोले हुए भी टिकट न दिखा सका तो किसी ने कह दिया। "साधु है, टिकट नहीं होगा, जाने दीजिए।" टिकट वाले ने उसे गाड़ी से उतारने के लिए हाथ पकड़ा तो वह उठ बैठा। चैकर की गालियों और दुर्व्यवहार से जैसे उसे होश आया।

"क्या बात है, क्या करूँ ?"

"उतर और क्या करेगा, उतर।" कहकर वह घसीटने लगा।

"क्यों ?"

"एक तो बिना टिकट बैठता है ऊपर से अकड़ दिखाता है साला।"

"टिकट, टिकट लो।" उसने टिकट दिखा दिया।

चैकर बोला, "पहले क्यों नहीं दिखाया ?" इसी बीच उसकी जगह एक और ने घेर ली तो वह खड़ा ही रहा।

अब धीरे-धीरे उसकी चेतना लौट रही थी। पश्चात्ताप, ग्लानि, स्वप्न, उस पर छा रहे थे। 'यह मैंने क्या किया, मैं क्यों उसके साथ उतरा, क्यों रहा वहाँ ? क्यों अपने को भूल गया ?' यही वाक्य वह दुहरा रहा था। कोई उत्तर उसे नहीं मिल रहा था। एकाएक और भी ग्लानि में भरकर वह रो पड़ा। आँसू झर-झर बहने लगे। वह ऊपर की बर्थ का सहारा लिये अब भी खड़ा था। नीचे सीट पर बैठे एक यात्री ने देखा तो दूसरे से बोला, देखो जी, यह रो रहा है बिचारा, इसकी सीट खाली कर दो।"

उसे रोते देखकर और लोग भी सहानुभूति दिखलाने लगे। सीट खाली कर दी गई। फिर भी वह खड़ा था। जैसे यह जो कुछ हुआ उसका कोई ज्ञान ही नहीं है उसे। लोगों ने हाथ पकड़कर बैठाया तो एक चेतना उसमें आई।

जब वह स्वामीजी के आश्रम में पहुँचा तब भी दुख का भार कम न था। वह मन्दिर के बरामदे में बिना किसी से बोले बैठ गया, जैसे उसका बहुत कुछ खो गया हो।

"क्या बात है कमल, कब आया ?" शिवानन्द ने देखा तो उत्सुकता से पूछ बैठा।

"कुछ नहीं।"

"चुप क्यों है ?"

कमल फीकी हँसी हँसा।

"बोल न।"

"क्या ?"

"अरे तू तो पागल-सा हो गया है ?"

"वह अब भी चुप अपने में खोया बैठा था।"

स्वामीजी को खबर हुई तो उन्होंने बुलाया।

"कमल !"

"जी महाराज !" न उसने हाथ जोड़े, न प्रणाम किया।

"क्या हो गया तुझे चुप क्यों है ?"

"मुझे बहुत दुख है।"

स्वामीजी चुप उसे देखते रहे। उन्हें लगा यह दूसरी बार इसकी वैसी अवस्था हुई है।

कमल अब भी चुप था। थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने कहा, "कोई बात नहीं ठीक हो जायगा, जा आराम कर।" वह लौट आया। न वह किसी से कुछ कहता, न हँसता। चुपचाप कम्बल के आसन पर पड़ा रहता। खाने के समय बुलाने पर खा लेता फिर अपने कमरे में आ लेटता। दोनों ब्रह्मचारी और आश्रम के लोग कुछ भी न समझ पाये इसे क्या हो गया है। स्वामीजी ने फिर देखा तो उसने कुछ भी साफ-साफ नहीं बताया। जितना पूछते उतना बोलता। अन्त में एक दिन स्वामीजी ने बुलाकर पास बिठाया और सम्मोहित करने लगे।

कमल मूर्च्छित हो गया तो स्वामीजी ने प्रश्न-पर-प्रश्न करके बहुत सी बातें जान लीं। कान्ता कमल का सम्बन्ध भी उनसे छिपा न रहा। अन्त में उन्होंने पूछा, "क्या तू अब भी कान्ता को चाहता है ?"

"हाँ !" टूटी-बिखरी संस्कारों से भीगी आवाज निकली।

"वह तो तुझे नहीं चाहती।"

"मैं नहीं जानता। मैं चाहता हूँ"......वह चुप हो गया।

"इतना अपमान सहने पर भी ?"

चुप ।

"और यह वैराग्य ?"

"कैसा वैराग्य ? "

"तूने तो प्रतिज्ञा की थी न ?"

"मैंने !"

"हाँ तूने । जब हमने डूबते हुए तुझे बचाया था तब ।"

"मुझे याद नहीं है ।"

"अब क्या चाहता है ?"

इसके उत्तर में उसने जो कुछ कहा वह बेतुका और प्रसंगहीन था । कभी वह कुछ अच्छी बात कहता, कभी लोगों को गाली देता । न जाने क्या-क्या वह कहता रहा ! जैसे बहुत सी बेतरतीब अच्छी-बुरी बातों का पिटारा खुल गया हो । उस समय स्वामीजी अकेले थे । उन्होंने कुछ नोट किया और कमल को होश में लाकर बोले, "सो गया था ?"

"जी !"

"यह कान्ता कौन है ?"

"कान्ता, आपको कैसे मालूम ? कान्ता एक लड़की है जिसके साथ मैं शादी करना चाहता था ।"

"तुम उसके पास ठहरे थे न ?"

अचकचाकर कमल ने उत्तर दिया, "ठहरा तो था । पर···आपको···" वह स्वामीजी की ओर आश्चर्य से देखने लगा ।

"सुनो कमल, तुम इस योग्य नहीं हो कि संन्यासी हो सको । तुम्हारा मन अस्थिर, असंयत है । इस आश्रम में भी तुम्हारे लिए स्थान नहीं है ।"

"पर मैं तो··· ।"

"वैराग्य भीतर से आना चाहिए ।"

"मैं मन से कह रहा हूँ महाराज ।"

"तुम चाहते हो कान्ता तुम से शादी कर ले ।"

"नहीं तो।"

"तो क्यों गये उसके पास ?"

"मैं कुछ भी नहीं बता सकता। जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। मैं चुपचाप उतर गया।"

"तुम्हारा मन कमजोर है। हर आवेश तुम्हारे ऊपर छा जाता है। उस समय तुम भूल जाते हो।"

"मैं खो गया था। मैं अपने को काबू में न रख सका।" वह रो पड़ा।

हरिहरानन्द के पास बम्बई से कमल के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट आई उसमें और इस सम्मोहन में उन्हें बहुत अन्तर लगा। वे कमल के मन का अध्ययन करने को बेचैन हो उठे। आसानी से बेहोश होकर अर्द्धचेतन, अवचेतन में स्थित विचारों, संस्कारों, के प्रकट करने वाला यह माध्यम उन्हें और कहाँ मिल सकता था। वे योग की प्रक्रिया द्वारा मानव-मन की आश्चर्यजनक विकृति प्रकृति जानना चाहते थे। साधारणतया ऐसे प्रयोग भावुक व्यक्तियों पर सफलता से हो सकते हैं। यही सब सोचकर वे जब-तब कमल को माध्यम बनाकर उसके अंतरंग को पढ़ने की कोशिश करते। कमल उन्हें मन की अज्ञात शक्ति से खेलने वाला एक खिलौना लगता। एक ऐसा व्यक्ति जिसे संघर्ष पूर्ण रूप से नचाता रहता है। कमल का मन उन्हें जहाँ सरल लगा वहाँ वे यह भी जान गए कि चेष्टा करने पर यह व्यक्ति ऊपर उठ सकता है; अच्छा योगी, अच्छा दार्शनिक या अच्छा विचारक बन सकता है। निर्बल भावना-ग्रन्थियों को यौगिक विधि से उन्नत और दृढ़ भी किया जा सकता है। वह अन्तर्मुखी व्यक्ति था। इसके साथ ही एक दिन स्वामीजी ने लक्ष्य किया कि कमल अब अनुमान से अधिक भक्त हो गया है। वह दिन-रात मन्दिर में बैठा मौन रहता, भजन करता, सरस्वती के भित्ति-चित्र को लक्ष्य मानकर आराधना करता। शिव का पूजन करते समय वह स्वर से महिम्न-स्तोत्र का पाठ करता। गंगा के तट पर शाम को नियमित रूप से गंगा लहरी का पाठ करता। एक दिन स्वामीजी ने उसके बिस्तर पर पैन्सिल से खींचा हुआ अविकसित सरस्वती का चित्र देखा। उन्हें लगा कमल के मन में अज्ञात भावना की यह प्रतिक्रिया या उसका परिवर्तित, विकसित रूप

है। वे इस बात से सन्तुष्ट थे कि मन का यह विकार बुरी ओर नहीं है। भक्ति के प्रबल आवेग में कई बार वह रो उठता। आधी-आधी रात तक वह शिव की मूर्ति के सामने बैठा रहता। उस समय कोई भी उसे उस दशा में देखकर कह सकता था कि वही एकमात्र भक्त है इस आश्रम में। स्वामीजी फिर भी उसकी चेष्टा से सतर्क थे। वे जानते थे कदाचित् यह उसमें कान्ता के प्रति किये व्यवहार की प्रतिक्रिया है।

किन्तु कमल अपनी विचारधारा में ऐसा डूबा कि उसने खाना-पीना तक छोड़ दिया। शरीर से बेसुध अपने प्रति विरक्त कमल के अन्तर में भक्ति की रूढ़ तृष्णा जाग उठी। सबसे पहले सबेरे स्नान करके वह मन्दिर के बरामदे में जा बैठता; स्वामीजी के आने पर पूजा में उनकी हर प्रकार से सहायता करता। आरती के बाद गद्गद् भाव से स्तोत्र बोलता और तन्मय हो जाता। एक दिन जब स्वामी हरिहरानन्द ने उसे पुजारी बना दिया तो मूर्ति के शृंगार-पूजन के बाद भक्ति-विह्वल होकर घण्टों मूर्ति को निहारता रहता; भागवत पढ़ते हुए बेसुध हो जाता। गोपियों के साथ कृष्ण की रास-लीला या इसी प्रकार के प्रसंग को पढ़ते हुए उसकी आँखें बन्द हो जातीं। आश्रमवासी उसे इस अवस्था में देखकर आधा पागल समझते। इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं थी।

इसी बीच स्वामीजी ने एक दिन उसे फिर सम्मोहित किया, चाहा, उसके मन के अवचेतन से कुछ नई बातें जानें। किन्तु वहाँ सब धूमिल था। कान्ता की जगह देवता का नाम निकल रहा था। उस अवस्था में उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

एक रात स्वामीजी ने उससे कहा, "कमल, बिना ज्ञान के भक्ति का कुछ अर्थ नहीं है। निःसार है। तेरी भक्ति अन्धी है।"

कमल कुछ न समझ पाया। बोला, "फिर?"

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। तू दर्शन पढ़। उससे ज्ञान होगा। इसके साथ ही गीता वेदान्त के कुछ श्लोक बोलकर उन्होंने ज्ञान की महिमा बताई। रोज प्राणायाम, ध्यान, धारणा पर जोर दिया। और कहने लगे, 'इससे आत्मा बलवान होगा।' स्वामीजी स्वयं सबेरे दो-ढाई घण्टे की समाधि लगाते

थे। कमल का मन उधर ही चल पड़ा, जैसे झरने का वेग आसानी से मोड़ दिया जाता है। इसी तरह प्राणायाम, प्रत्याहार आदि योग की विधियों में स्वामीजी ने उसे ज्ञान के महत्त्व के प्रति आकृष्ट किया। अब वह दर्शन, उपनिषद् पढ़ने लगा। दर्शनों के तर्क-वितर्क में उसका मन रमा। सृष्टि का कारण प्रकृति, आत्मा, ईश्वर की स्थापना में उसे बहुत सी नई बातें मिलीं। उसे लगा, सचमुच वह अब तक भूला ही रहा। श्रद्धा के स्थान पर तर्क जागा। संकल्प की जगह आत्म-प्राप्ति की धुन। विश्वास की जगह कहीं-कहीं संशय, सन्देह अनास्था ने ली। काफी दिन तक सोचने के बाद उसने पाया कि सब भारतीय आस्तिक दर्शन एक सीमा तक जाकर रुक जाते हैं, केवल वेदान्त दर्शन ही ऐसा है जो पूर्ण है, किन्तु उसकी पहुँच कल्पनातीत है। वहाँ अगर विश्वास न किया जाय तो वह भी कुछ नहीं है। अन्त में श्रद्धा और विश्वास के बिना काम नहीं चलता। फिर पहली श्रद्धा ही क्या बुरी थी! जहाँ से चला था उसका खोजी मन फिर वहीं जा अटका। अब स्वामीजी उसे विश्वास करने और आस्था रखने पर जोर दे रहे थे।

बहुत दिनों तक वह प्राणायाम करता रहा। समाधि में आत्मज्योति पाने की लालसा उसमें उग्र हो उठी। कभी-कभी उसे लगता, यह जगत् सचमुच मृग-मरीचिका है, असत्य है, वास्तविकता से परे है। वेदान्त के अध्ययन में एक सीमा तक वह पहुँच पाया। वह ब्रह्म को सर्वव्यापी मानकर भी संसार की अनित्यता को स्वीकार न कर सका। उसका जागरूक मन यह विश्वास न कर सका कि नित्य ब्रह्म से अनित्य माया का जन्म कैसे हो सकता है। इसका कोई उदाहरण भी उसे नहीं मिला। स्वामीजी जितना ही उसे समझाते उसका मन उतना ही शंका से भर जाता। प्रश्न-पर-प्रश्न करने पर कभी-कभी स्वामीजी खीझ उठते तो वह चुप हो जाता; अपने भीतर से प्रश्न करके उत्तर पाने की चेष्टा करता। हर वस्तु को तर्क की कसौटी पर कसकर जानने का जो उपदेश उसे स्वामीजी ने दिया था उसी आधार पर जब वह हर तरह के प्रश्न स्वामीजी से करता तो वे श्रद्धा को मन में स्थान देने पर जोर देते।

स्वामीजी ने कहा, "तर्क ज्ञान को माँजकर शुद्ध करने और बाह्य पदार्थ

को जानने की कसौटी है। ब्रह्म के सम्बन्ध में तर्क नहीं चल सकता। वहाँ समाधिजन्य अनुभव की आवश्यकता है। तर्क असीम नहीं है, उसकी सीमा है।" यह सब सुनते हुए भी उसकी बेचैनी दूर नहीं हो पाती थी। वह तो जैसे यह सब जानने के लिए अधीर हो उठता। कभी-कभी उसे लगता यह सब व्यर्थ है, अँधेरे की खोज है, जहाँ जिसके हाथ जो लग जाए उसी को सर्वोपरि मान लेना है। उसने माना, यदि ज्ञान सही है तो सबको एक-सा क्यों नहीं होता। विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि में ब्रह्म के भेद क्यों हैं ? फिर बौद्ध धर्म का चिन्तन, जैनों का चिन्तन एक क्यों नहीं है ? एक समाज के लिए इतने धर्म ही क्यों हैं, जब कि मनुष्य मात्र के लिए अन्न-जल एक ही प्रकार का है। स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति संस्कारवश दूसरे से भिन्न होती है। इसी से चिन्तन के परिणाम भी भिन्न हैं। यह बात जब उसने स्वामीजी से कही तो उन्होंने उसे डाँटते हुए उत्तर दिया, 'सब मार्ग एक ही ओर जाते हैं। सब धर्म सत्य में प्रतिष्ठित होते हैं।' किन्तु सत्य तो एक है उसके रूपों में भेद क्यों है ? ब्रह्म यदि है तो सबको एकसा क्यों नहीं दिखाई देता। एक धर्म-प्रचारक किसी रूप में और दूसरा किसी और रूप में उसे क्यों मानता है ? फिर इतने धर्मों के प्रचार की क्या आवश्यकता थी, एक ही धर्म सब के लिए काफी था।"

"यह कुतर्क है," स्वामीजी नाराज होकर बोले। "तुम यदि पूरे विश्वास के साथ नहीं रह सकते तो चले जाओ। नास्तिकों के लिए यहाँ स्थान नहीं है।"

कमल चुप हो गया, किन्तु उसका तर्कशील मन किसी तरह भी शान्ति न पा सका। उसके विश्वास हिलने लगे। जितना ही वह इस विषय में सोचता उतना ही वह पाता, यह सब कुछ नहीं है। यही नहीं, अकेले हिन्दू धर्म में ही इतने अलगाव हैं कि वे एक दूसरे से नहीं मिलते। प्रत्येक संप्रदाय प्रवर्त्तक नये ढंग से, नये तर्कों से मनुष्य जीवन के लक्ष्य की व्याख्या करता है। सब के साध्य भिन्न, सबके साधन भिन्न और सबके सिद्धि-पथ भिन्न हैं। कमल जितना ही इन बातों पर विचार करता उतना ही उसे कुछ न जानकर बेचैनी होती। उतना ही वह और खोज करता। जब ज्यादा सोचते-सोचते उसका मस्तिष्क थक जाता तो वह पुस्तकों से समस्या हल करने का प्रयत्न करता। रात को जागकर एकान्त में

उन प्रश्नों का उत्तर पाना चाहता। कभी-कभी दोपहर में आश्रम के बाहर निकलकर निरुद्देश्य घूमता। घाट के किनारों, आश्रमों के ऊपर पहाड़ों से घिरे बनों में चला जाता। और कहीं पेड़ की छाया पाकर पास एकान्त में बैठकर यही सोचता।

एक दिन अचानक एक झरने के पास वह बैठा था कि उसने देखा छोटी-छोटी मछलियाँ पानी में तैर रही हैं। और पानी में जो कुछ मिल जाता है वही वे खा रही हैं। वे निरंतर गतिमान हैं। न ठहरती हैं, न बैठती हैं। पानी उनको नीचे बहा ले जाता है। उससे लड़कर वे ठीक झरने के पास आ जाती हैं। यही उनका काम है। पानी निरन्तर उन्हें वहाव में ले जाता है और वे उससे लड़कर ऊपर आ जाती हैं। देर तक वह यह खेल देखता रहा। जैसे उनके जीवन का ध्येय पानी के बहाव से निरन्तर लड़ना है। पास ही बन में झींगुर बिना रुके बोलता जा रहा था। एक पेड़ से चिपटा वह चिल्ला रहा था। उससे जरा दूर हटकर काकातुआ, गिलहरी फुदक रहे थे। काकातुआ एक डाली से दूसरी पर बिना कारण उड़ रहा था। गिलहरी एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर, एक डाल से दूसरी डाल पर चुग रही थी। कभी वह आधा शरीर ऊपर करके देखती फिर चक्कर लगाने लगती। इसी बीच एक तोतों का गिरोह आकर वहाँ छा गया। कौए बोलने लगे। बकरियाँ निडर होकर चरती आ गईं। वह उन्हें ही देखने लगा। गायों ने आकर वहाँ पानी पिया और एकान्त पाकर बैठ गईं। उन्होंने आँखें मूँदीं और जुगाली करने लगीं, जैसे कई शिष्य पढ़े हुए पाठ को दुहरा रहे हों।

कमल यह सब बैठा देखता रहा। तोते पेड़ों के फल खाकर गिराने लगे। उनके कारण बन में एक सिहरन-सी छा गयी। हर पक्षी कुछ-न-कुछ बोल रहा था। छोटे जीव-जन्तु, कई तरह के चींटे इधर-उधर न जाने कहाँ जा-आ रहे थे। गायों के अतिरिक्त सभी में एक गति, एक चेष्टा थी। झरने का पानी भी निरन्तर बिना रुके चल रहा था। कमल ने पाया जैसे यह गति ही जीवन है। इसका उद्देश्य गति है। प्रारम्भ और मध्य तथा अन्त गति। गति के अतिरिक्त और कुछ जैसे है ही नहीं। पेड़, झाड़ियाँ, पत्थर, झरने सब मूक रूप से गतिमान

हैं। पत्थर, वायु तथा जल आपस में टकराकर गोल, टेढ़े-मेढ़े हो रहे हैं। पेड़ बढ़ रहे हैं, सूख रहे हैं। जैसे सब का उत्थान-पतन कालगत है। इन पहाड़ों में भी कुछ-न-कुछ परिवर्तन हो रहा है, किन्तु मनुष्य की आयु से जैसे वह परे है। जैसे हर वस्तु का जीवन-काल उसके हिसाब से अलग-अलग बँट गया है। इसी तरह की बातें वह सोच रहा था कि उसे आहट से ही सुनाई पड़ा जरा दूर हटकर पेड़ की शाखा से एक हरा सा साँप मुँह में कुछ दबाये झूल रहा है। उसने देखते-देखते गर्दन फैलाकर जिस किसी को पकड़ा उसे ही वह आनन्द से खा रहा है। इसके बाद वह उलटकर शाख पर बैठ गया और थोड़ी देर बाद ऊपर-से-ऊपर फुनगी पर चला गया। गायों के झुण्ड ने उठकर झरने का पानी पिया और मंद गति से निश्चिन्त होकर फिर चरने लगा। कमल बहुत देर तक बैठा रहा। उसे लगा यह भी एक संसार है। सारे वन में न जाने ऐसे कितने जीव-जन्तु निरन्तर पैदा होकर बढ़ते, खाते, पीते, मर जाते हैं।

फिर······

उसका प्रश्न फिर भी अनुत्तरित था। यही सोचता वह आ रहा था कि मार्ग में पड़ने वाले एक आश्रम से लड़ाई की आवाजें आने लगीं। दूर से मालूम होता था जैसे बहुत से लोग गुत्थमगुत्था होकर फूली साँसों से एक दूसरे को गाली दे रहे हैं।

कमल ने वहाँ जाकर सुना, 'अबे साले, तेरे बाप को भी कभी ज्ञान हुआ है जो तुझे ही होगा।' एक कह रहा था। फिर बोला, 'अपने गुरु से जाकर कह, वह अभी मेरे पास दस साल पढ़े तब तुझे आयेगा। चले ब्रह्म की व्याख्या करने। तुम क्या खाकर करोगे, मूर्ख दुष्ट।'

'अबे लंठ, तेरे जैसे बहुत देखे हैं मैंने, अभी मैं तुझे बीस साल पढ़ा सकता हूँ।'

'तू ?'

'हाँ, मैं।'

'मैं कहता हूँ यहाँ से काला मुँह करके चला जा। नहीं तो दम घोट दूँगा। आया सुसरा, मुझे पढ़ाने, पहले खुद तो पढ़ ले! अक्षर से भेंट नहीं, चले हैं ज्ञान

बघारने, वेदान्त की बातें करने। अवे मैं कहता हूँ वेदान्त तो तू क्या पढ़ाएगा पहले तर्क-संग्रह (न्याय की पहली पुस्तक) तो समझ ले।'

'चल-चल, तर्क-संग्रह तो मेरे शिष्यों के शिष्य पढ़ाते हैं।'

'यह मुँह और मसूर की दाल ! बता, अभाव कितने तरह का होता है।'

'ये बच्चों की बातें हैं। बात करनी हो तो वेदान्त की बात कर।'

'मैं कहता हूँ तू तो वेदान्त भी शुद्ध नहीं बोल सकता।'

'पहले तू सुद्ध को सुद्ध बोलना सीख घोंचू ! मैं शैव हूँ। शंकर का वेदान्त मैंने पढ़ा है।'

'तूने और शंकर का वेदान्त !'

'हाँ, शंकर का।'

'क्या वेदान्त शंकर ने लिखा है ?' हँसकर, 'अभी इतना भी नहीं मालूम कि वेदान्त शंकर ने लिखा है या किसी और ने। लंठ ! जा !'

'मैं कहता हूँ, गाली मत दे गर्दभ ! वेदान्त शंकर ने नहीं लिखा व्यास ने लिखा है।'

'तो तू शंकर-शंकर क्यों चिल्लाता था धूर्त !'

'शंकर ने व्याख्या की है कुक्कुर !'

इस समय कुछ और व्यक्ति बोल पड़े। उन्होंने मजाक उड़ाते हुए कहा, 'पहले यह सीख के आ कि शंकर ने व्याख्या की है या भाष्य लिखा है।'

'मैंने तो तुम मूर्खों की परीक्षा लेने के लिये 'व्याख्या' शब्द कहा था उलूको ! मैं जानता हूँ, कि शंकर ने भाष्य लिखा है।'

'तो बता, शंकर के मतानुसार ब्रह्म अद्वैत कैसे हैं ?'

कुछ लोग कहने लगे, 'क्यों पत्थर से सिर मारते हो स्वामीजी। यह मूर्ख क्या जाने !'

'मूर्ख होगे तुम, मुँह सँभालकर बात करना।' 'हमारे स्वामीजी के सामने ऐसे अपमानजनक शब्द कहे तो हम सिर तोड़ देंगे।' दूसरे पक्ष के लोगों ने कहना शुरू किया। इसके बाद शिष्यों में लड़ाई होने लगी। कुछ यात्री लोग आ गये। एक ने बीच-बचाव कराते हुए पूछा, 'क्या बात है, क्यों लड़ते हो भाई ?'

'अजी कुछ नहीं, न पढ़े न लिखे। हमारे स्वामीजी के पैरों की धोवन भी नहीं हैं, आ गए स्वामीजी से वेद-वेदांग की बातें करने।' एक पक्ष के व्यक्ति ने कहा।

दूसरा बोला, 'सेठजी, ऐसी बात नहीं है। मैं तो ब्रह्म और माया का सम्बन्ध इस विद्यार्थी को बता रहा था कि बीच में ही ये स्वामीजी टपक पड़े। पूछो तुमसे कुछ कहा, कोई बात हुई, तुम क्यों बीच में बोल पड़े।'

'यह विद्यार्थियों को अशुद्ध बता रहा था। इसलिए मुझे बोलना पड़ा।'

'मालूम होता है आप दोनों को ब्रह्म-ज्ञान हो गया है।' यात्री ने हँसकर व्यंग्य से कहा।

'हाँ, मुझे तो अवश्य। पच्चीस वर्ष से मैं निरन्तर विद्यार्थियों को पढ़ा रहा हूँ।'

'गलत है, मेरा जीवन ही वेदान्त पढ़ाते बीता है सेठ जी!'

'तो क्या ब्रह्म को जानने पर लोग इस तरह से लड़ते हैं। यदि ऐसा है तो यह ज्ञान त्याग देने योग्य है।'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है।'

'बात तो ऐसी ही है। जीवन का परम तत्व ब्रह्म-ज्ञान जिसको हो जाता है क्या वे मूर्खों की तरह लड़ते हैं? जाइए, आप दोनों ही अँधेरे में हैं। हम अज्ञानी लोग लड़ें तो कोई बात भी है।'

कमल को लगा ब्रह्म सम्बन्धी यह लड़ाई शास्त्रकारों में बहुत पुराने समय से चली आई है। शंकर ने बौद्धों का, बौद्धों ने वैदिक मत का तथा सभी महात्मा कहे जाने वाले विद्वानों ने तर्क से, युक्ति से, अनुमान से एक दूसरे का खण्डन किया है। इससे मालूम होता है ब्रह्म या ईश्वर का साक्षात्कार किसी को नहीं हुआ। उसका मन एक दम विरक्त हो उठा। यही बात जब उसने स्वामीजी से कही तो नाराज होकर बोले, "कमल, तुम में श्रद्धा का अभाव है। अच्छा है तुम यह आश्रम छोड़कर और कोई काम करो। यह विद्या योगगम्य है।"

"कुछ लोग कहते हैं भक्ति ही सब कुछ है। भक्ति से मोक्ष मिलता है।"

"भक्ति साधारण लोगों के लिए है। फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ, तुम यदि

शास्त्रों में, गुरु में, श्रद्धा नहीं रख सकते तो तुम्हारा यह आश्रम छोड़ देना ही उचित है। तुम जीवन का उद्देश्य नहीं जान सकते। तुम नास्तिक हो।"

"तो जीवन का उद्देश्य क्या है ?"

"कुछ नहीं, तुम्हारे जैसों के लिए कुछ नहीं।"

"महाराज, आपने ही ज्ञान को प्रधान बताया था और ज्ञान के लिए तर्क को। अब मेरी समझ में नहीं आता तो '...।"

स्वामीजी देख रहे थे, बतलाने पर भी यह विश्वास नहीं करता। सबसे कहता है, प्रत्यक्ष के अलावा कुछ नहीं हैं। ईश्वर भी नहीं है। धर्म भी नहीं है। सब ढकोसला है।

स्वामीजी क्रोध में उठकर चले गए। कमल फिर भी बैठा रहा। उस दिन से आश्रम में उसका भोजन बन्द हो गया। जब रात को वह भोजन के लिए गया तो शिवानन्द ने कहा, "नास्तिक के लिए यहाँ भोजन नहीं है।"

"मैं नास्तिक हूँ।"

"मैं नहीं जानता। स्वामीजी की आज्ञा है।"

कमल चुपचाप उल्टे पैरों लौट आया। वह चाहता था स्वामीजी से जाकर कहे लेकिन स्वामीजी ने उससे मिलने से इन्कार कर दिया। अपनी कोठरी में बैठे-बैठे वह बहुत देर तक दिन-भर की घटनाओं को सोचता रहा। भूख उसे लग रही थी। किन्तु भूख से भी अधिक चिन्ता उसे कहे गए 'नास्तिक' शब्द की थी। उसने नास्तिक शब्द किताबों में पढ़ा था। आज यह पदवी अपने लिए पाकर वह और भी व्याकुल हो उठा। क्या मैं नास्तिक हूँ ? मैं किसी चीज़ को जानना, पाना चाहता हूँ; वह मुझे किसी तरह भी नहीं मिल पाती। मैं पूछता हूँ तो क्या इसीलिए मैं नास्तिक हूँ। जो बात समझ में नहीं आती उसे मैं कैसे मान लूँ ? कैसे श्रद्धा करूँ ? श्रद्धा क्या अविवेक का नाम है ? क्या श्रद्धा अंधी है ? नहीं, जो बात मेरी समझ में नहीं आती उसे मैं नहीं मान सकता। मैं चला जाऊँगा। मैं यह आश्रम छोड़ दूँगा। किन्तु मैं अन्धी श्रद्धा को स्वीकार नहीं करूँगा। नहीं करूँगा। उसे अचानक याद आया जैसे उसने कहीं पढ़ा हो, 'ईश्वर का वास मनुष्य में है। उसकी सेवा में है।' तो क्या मनुष्य में ईश्वर

रहता है ? मुझमें भी ईश्वर रहता है ? तो मैं अपने को खोजूँ, अपने में खोजूँ उसे ?

वह बहुत देर तक अँधेरे में बैठा इसी तरह की बातें सोचता रहा। नींद उसे नहीं आ रही थी। इसी समय शिवानन्द ने प्रवेश किया, "सो रहा है कमल ?"

"नहीं।"

"जाग रहा है ?"

"हाँ।"

"भूख लगी होगी।"

"हाँ, नहीं, ऐसी नहीं।"

"स्वामीजी की आज्ञा है सबेरे तुम आश्रम छोड़ दो।"

बहुत देर चुप रहने के बाद उसने कहा, "अच्छा !"

"कहाँ जाओगे ? तू मूर्ख है कमल। भला स्वामीजी से तर्क-वितर्क करने की क्या जरूरत थी। क्या मिला तुझे बता ?"

"जो समझ में नहीं आता वह पूछा न जाय शिवानन्द, वही तो मैंने किया।"

"क्या तू सब-कुछ समझ सकता है ?"

"कोशिश करता हूँ।"

"तू मूर्ख है।"

"हो सकता है, मैंने ग़लती की हो।"

"तू माफी माँग ले।"

"नहीं, यह बात नहीं है, मैंने स्वामीजी को सर्वज्ञ समझा, यह मेरी गलती है। स्वामीजी ने ही मुझमें जिज्ञासा पैदा की और पूछने पर वे उत्तर न देकर नाराज होने लगे। मुझे नास्तिक कह दिया। शिवानन्द, यही मेरी गलती है।"

"मैं यह सब कुछ नहीं जानता, जानना भी नहीं चाहता।"

"तो तू क्या चाहता है शिवानन्द ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो। क्या रोटी तोड़ना और पड़े रहना ?"

शिवानन्द थोड़ी देर के लिए चुप हो गया फिर बोला, "यहाँ आ गया तो

यहीं रहने लगा।"

"महन्त बन जायगा ?"

जैसे किसी ने उसकी रग पकड़ ली। बोला, "हाँ।"

"फिर क्या होगा ?' कमल ने पूछा।

"फिर कुछ नहीं। जैसा चल रहा है वैसे ही और चलेगा। मैं भी इस आश्रम को बढ़ाऊँगा, कमरे बनवाऊँगा, मन्दिर का भाग और बनवाऊँगा। जो भी हो।"

"ठीक है, तू ही यहाँ रहने लायक है।"

"अब तू कहाँ जायगा ?"

"देखूँगा कहाँ जाता हूँ।"

"कल क्या आज दीखता है ?"

"बहुतों को आज भी आज नहीं दीखता शिवानन्द।"

शिवानन्द की कुछ समझ में नहीं आया। थोड़ी देर बाद बोला, "कहे तो दो रोटी बच गई हैं ले आऊँ।"

"नहीं।"

"भूखा होगा।"

"नहीं, मैं नहीं खाऊँगा।

दूसरे दिन पौ फटने से पहले कमल पहनने के कपड़े और कम्बल लेकर गंगा के किनारे आकर बैठा तो बैठा ही रहा। शिवानन्द तथा दूसरे आश्रम के लोग एक रात में ही जैसे पराये हो गए। कोई भी उससे नहीं बोल रहा था। आस-पास के लोगों ने जानना चाहा तो उन्होंने कह दिया, "स्वामीजी ने इसे आश्रम से निकाल दिया है।"

"क्यों ?"

"नास्तिक है। किसी देवी-देवता को नहीं मानता।"

"नास्तिक! बहुत बुरी बात है! मुसलमान और ईसाई भी ईश्वर को मानते

हैं चाहे उनका ईश्वर कैसा भी हो।"

उन लोगों ने यह कहते हुए कमल को उपेक्षा से देखा। एक अपने साथियों से कहने लगा, 'यह आजकल के लड़के ईश्वर तो क्या अपने बाप को भी नहीं मानते।' दूसरा हँसकर गंगा में नहाने के लिए घुसते हुए बोला, 'औरत को मानते हैं भैया। यह औरत का युग है।' इसके बाद 'हरगंगे' कहकर उसने डुबकियाँ लगाना शुरू कर दिया।

पास ही एक बूढ़ी संन्यासिनी कपड़े धो रही थी वह बोली, "इन्द्र की अप्सराएँ साप से इस लोक में उतर आई हैं, वे ही लोगों को गिरावें हैं। पाप-मोचन हो तो ठीक है। कौन करे पाप-मोचन ? हमारे स्वामीजी कर सके हैं। मैंने एक दिन उनसे कही तो बोले, 'तुझे क्या, नारायणी, इस कलजुग में व्यक्ति दोस लगता है। सब मानस पापी हैं।' तो मैंने पूछी महाराज, 'मानस पाप क्या होवे हैं ?' तो कहने लगे, 'तू नहीं जाने नारायणी, मानस पाप वो है जिसमें भीतर का मन भगवान की आराधना नहीं करे।' फिर कुछ रुककर बोली, 'नारायणी तो तभी से दुखी है। न जाने क्या होने वाला है। गंगा जी में भी तो सत कम होता जावे है। सभी देवी-देवता सो गए हैं। ये देवताओं की रात है रात। पाप जागे है पुण्य सोवे हैं। सो सोरिया हैगा।"

'नारायणी भगवान का भजन कर ? न कोई सोवे है न जागे है।' कहकर एक साधु कमण्डल में जल भरकर 'नारायण-नारायण' कहता चला गया। नारायणी ने कपड़े धोए, स्नान किया। चलते-चलते कपड़ों में रखे दो रुपये भूल गई। कमल ने देखा तो उठा लिए। उसके पास एक भी पैसा नहीं था। वह सोच रहा था कि इस बुढ़िया को रुपए की जरूरत नहीं है, मुझे है। मेरे पास एक भी पैसा नहीं है, कल से भूखा हूँ। नाव में बैठा वह देख रहा था कि नारायणी लौटकर उस घाट पर बड़ी लगन से रुपए खोज रही है। कमल को नाव में बैठा देखकर वह चिल्लाई, "अरे यहाँ से मेरे रुपए तो नहीं ले गया रे, ओ जाने वाले जात्री, मेरे रुपए, अरे ओ भाई, तैने देखा क्या ?"

पार पहुँचते-पहुँचते कमल ने देखा नारायणी रोती-रोती हर जगह अपने वे दो रुपये ढूंढ रही है।

कमल अपने मन से बार-बार पूछ रहा था, क्या उसने नारायणी के दो रुपये उठाकर ठीक काम किया? एक दुकान से चने और गुड़ लेकर वह गंगा के किनारे बैठकर खाने लगा। नारायणी उस समय भी अपने रुपये ढूंढ रही थी। वह रोती-चिल्लाती जा रही थी। उसके सामने गंगा के पार कमल उन्हीं में से एक रुपया भुनाकर चने खा रहा था। भूख कह रही थी यह ठीक है, मन कह रहा था नहीं, रुपये उसके हैं। जैसे-जैसे भूख मिटती जाती थी मन के अपरिग्रह का दबाव मिट रहा था। कमल ने चने खाकर भर-पेट पानी पिया। कपड़े की पोटली उसकी बगल में थी। पैर ऋषिकेश की ओर चले जा रहे थे। रास्ते में कोढ़ियों, भीख माँगने वालों की कतार चिल्लाती हुई पैसा माँग रही थी। कमल ने पेड़ के नीचे अपाहिज एक रोगी भिखारी को रुपये में से बचे पैसे दे दिये और आगे चल पड़ा। अब वह बिना किसी उद्देश्य के घूम रहा था। कभी किसी मकान के चबूतरे पर बैठ जाता, कभी पेड़ के नीचे चादर बिछाकर लेट जाता। दोपहर तक निरुद्देश्य घूमने के बाद वह गंगा के किनारे वसुधारा जा पहुँचा।

नंगे पैर, तहमद और सफेद मैला कुरता, यही उसकी पोशाक थी। बढ़ी हुई बेतरतीब दाढ़ी और सिर के बालों से उसका गोरा मुख वर्षा का जल पड़ने पर मकान की मटमैली सफेदी की तरह चमक रहा था। किनारे से जरा ऊपर फूँस के छप्पर में एक नागा साँट-सा पतला साधु धूनी रमाये बैठा था। सामने धूनी में मोटा लक्कड़ सुलग रहा था। पास ही चिमटा गड़ा था। आस-पास कई तरह की छोटी-बड़ी चिलमें उल्टी रखी थीं। बड़े से एक डिब्बे में तमाखू भरा था। गोल पत्थर को जमा करके रेत डाल दी गई थी। उस पर कंबल का एक आसन। बाबा उसी पर नंगा बैठा था। हल्की पीली, मटमैली जटाएँ बाँधे सारी देह में भस्म लपेटे बाबाजी की आँखें काले खून की तरह चमक रही थीं। तीनों तरफ फटे टाट। जमीन पर कुछ भक्त बैठे सुल्फे का दम लगा रहे थे। सुल्फे की लौ ऊँची उठाकर बाबा ने चिलम अपने चेले को दी। उसने भी गुरु से एक कदम आगे बढ़कर ऊँची लौ उठाई और बारी-बारी से भक्तों को दे दी। आखिरी भक्त के पास पहुँचते-पहुँचते सुल्फा जल गया, सिर्फ थोड़ी सी तमाखू रह गई तो मुँह बनाकर उसने दम लगाया।

"लछीराम, कुछ भी तो नहीं है इसमें, क्या पीऊँ राख। सारा सुल्फा जल गया। नहीं, नहीं यह नहीं होयगा। बाबाजी के बाद मैं पीऊँगा बाद में तुम। यह क्या कि वंचो हमें मिले ही नहीं। बाबा, तुम्हीं न्याय करो। दो कलदार का सुल्फा लाया, और एक का फुँक गया। एक बार भी मजा नहीं आया। नहीं, यह नहीं होगा। हम साले क्या किसी से कम हैं।"

अबे तो मरा क्यों जाय है तू भी भर के लगाले दम। लेकिन बाबा को पहले देना उनके भोग के बिगैर चलेगी नहीं। दूसरे ने नशे में धुत्तहोकर कहा और बिज्जू की तरह ऊपर निगाह उठाई। उसकी भौंहों के घनेपन में लाल-लाल आँखें छिप गईं। सिर्फ कुछलाल डोरे छिटक आये। वह जीभ से होठ चाटकर सीधे हाथ की दो उँगलियों को घुटने से बजाने लगा। दूसरा साथी खांसने उठा तो वहीं पास थूकने बढ़ा।

बाबाजी के चेले ने कहा, "ओ भगत, दूर जाकर थूक। देखता नहीं, महाराज का आसन है।" भगत साला···है। चूतड़ धोने की तमीज नहीं है। जा हट, दूर हट ? बाबा के आसन के पास बैठा खौं-खौं करे है। अबे उल्लू के पट्ठे, कभी तेरे बाप ने भी दम लगाया है। जरा खींचा तो नसें निकल आईं। लगा गधे की तरह खों-खों करने। बं बं। काट दे जड़ और मार दे चम ?' बाबा ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा। अबे चम का मतबल समझा साले। क्या समझेगा तू···के।' बाबा ने चीमटा खींचकर आँच को राख से हटाते हुए कहा, "बिन्द्रावन दास, आज भाँग नहीं घुटेगी साली। चरस होता तो एक दम उसका भी···"

"तुलसी या संसार में भाँत-भाँत के लोग।"

"लंठ हैं सब साले,·· के। साला, भगत बना फिरे है। कुछ गाँठ में भी है के दूसरे का ही पीना जाने है। बोल क्या लाया आज ? साले, सब मिलके उस का पी गए। भगत राजाराम, बस तू पी ? इन सालों को देने की जरूरत नहीं है। लफंगे हैं लफंगे। गुण्डे, गधे। कुतिया चोर।" फिर गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला पर हाथ फेरकर बोला, "जूती चोर साले। भर लिया न। ला।"

"लो महाराज, बस, तुम्हारे बाद मेरी बारी है," राजाराम बोला।

"राजाराम गिरवी रखकर दो रुपए का लाया है महाराज ! उसी का

सुल्फा है," लछीराम बाबा की ओर देखकर बोला।

चिलम हाथ में लेकर बाबा ने कहा, "ओ राम के बच्चे आ, एक दम लगा ले बेटा। सरग में अकेला बैठा क्या करता है ?"

बं बं बं 'रामचन्द्र भज मनम्' कहकर बाबा ने दम लगाया और धुआँ छोड़कर गाने लगा। "लोग साले कहते हैं, पर मैं पूछता हूँ बोल बेटा सुल्फा भी सस्ता हुआ है ?"

"सब अपना पेट भरे हैं, महाराज ! किसी में दम नहीं है।" कहकर राजाराम ने दम लगाया तो आँखें पिटारे-सी खुलकर लाल हो गईं। "अब के आया है मजा। सुल्फा भी क्या चीज है वाह, लेगा लछीराम, अभी है इसमें।" कहकर उसने चिलम लछीराम की तरफ बढ़ाई तो वृन्दावनदास ने झपट ली और चिलम में लौ उठाने लगा।

नपुंसक की तरह लछीराम ने देखा और बोला, "बाबाजी, राजाराम भी खूब है। लड़की ब्याहने बैठी है, पर इसे परवाह ही नहीं। हो जायगा ब्याह, कहता है। हो तो जायगा ही, किसी का ब्याह रुका है।"

"अबे साले, यहाँ ब्याह-फ्याह की बात मत करो। कैसा ब्याह, किसका ब्याह !" अपने पेट पर हाथ फेरकर उसने कहा, "इसे देखा है। बेटा राम, तुम भी खूब हो।"

नशा ज्यादा चढ़ा तो बाबा चुप होकर लेट गया। राजाराम ने वृन्दावन से चिलम लेकर फिर एक बार पी तो शरीर शिथिल हो गया। आँच की राख बराबर करने लगा। "जिन्दगी······ जिन्दादिली का नाम है। बाबा सो गए ?" फूटे घड़े की सी आवाज में उसने कहा।

"बाबा कभी नहीं सोते। राम से बातें कर रहे हैं", वृन्दावनदास बोला।

"लछीराम, तू घर जाकर कह देना राजाराम साधु हो गया। साधु ! आह, क्या नज्जारा है। बस, अब एक ही दम के लिए सुल्फा है। अब पैसा नहीं है। एक कड़ा हाथ लग गया था वही बेच डाला। नहीं-नहीं, गिरवी रख दिया, गिरवी। जो पिये सुल्फे की कनी, वह हो जाय साला धनी। क्या परवाह है कल और वह देगा, क्यों लछीराम ? बोलता नहीं है। मर गया क्या ?"

कमल पास बैठा सुन रहा था उसकी ओर नजर फेरकर, राजाराम ने देखा। "तू भी पीएगा क्या ? पी, एक दम के लिए है।"

उसने सुल्फा निकाला और भरकर पीने लगा। जब लछीराम चलने लगा तो राजाराम से बोला, "चलेगा नहीं, राजाराम ?"

"तू जा, मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा। मेरे जान सब मर गए। नरक है नरक ! सब सुसरे खाने को फिरे हैं। यह लाओ वह लाओ। कहाँ से आवे ? चोरी करूँ ? कहाँ से लाऊँ ? मुझे ऐसे देखेगी जैसे खा ही जायगी। सो बाबा, मुझे डर लगे है।" फिर अपने सिर पर हाथ फेरते हुए हाथ से दूरी दिखाते हुए उसने कहा, "कौन पड़े मुसीबत में, हरेक का अपना भाग। तू भी जो भाग में लिखा लाई है वह ले।" अकड़कर बोला, "मैंने कोई दुनिया का ठेका ले रखा है ! मैं पूछता हूँ क्यों लाई थी ऐसा भाग। कहो साब," यह कहकर उसने कमल की तरफ देखा, "कुछ बुरी कही मैंने ? तुम्हीं न्याव करो। कहो न। मैंने कमाया तो उड़ा दिया। अब तेरे पास कोई गहना नहीं है तो मैं क्या करूँ। बाप ने दिया था बेटे ने उड़ा दिया। और लड़की बड़ी हो गई। ब्याहने को बैठी है तो मैं क्या करूँ ? कोई अकेले मैंने ही पैदा नहीं की है, तैंने भी तो पैदा की है, बल्कि तैंने ही पैदा की है। कहो साब, कुछ झूठ है इसमें ?"

बाबा ने उठते ही एक गाली दी और बोला, "अबे राजाराम के बच्चे, क्यों भौंकता है इतना साले ! ला निकाल बाकी का सब, खबरदार जो यहाँ औरत की बात कही। यह फकीर का थान है, यहाँ ऐसी-वैसी बात नहीं बोलना भला। ला निकाल ! विन्द्रावन सुल्फ़ा लेकर भर तो एक चिलम। साला नशा उतर रहा है। क्यों राम बेटा, क्या सला है। कोई भेज आँख का अन्धा गाँठ का पूरा। कितने पैसे हैं तेरे पास राजाराम बेटा, थोड़ा सा दूध ले आ रे विन्द्रावन दास। बाबा दूध का प्रसाद पावेगा। उससे कहियो मलाई ठीक से रहे।"

"मेरे पास तो बाबाजी अब कुछ भी नहीं है।"

"तो यहाँ क्यों आया था······के। चल भाग ?" इतना कहकर चिलम भरकर बाबा ने दम लगाया और आसन के नीचे से कुछ पैसे वृन्दावनदास को दिये। वह दूध लेने चला गया।

राजाराम का आखिरी सुल्फा भी बाबा ने पी लिया और थोड़ा ही हिस्सा उसे मिला, इससे उसे निराशा हुई। नशे की चटक में भी उसका मन गिर-गिर रहा था। वह कमल की तरफ, जो पास ही में बैठा था मुड़ा और बोला, "तुमने देखा, बाबा ने मेरा सारा सुल्फा पी लिया। दो रुपये का दोपहर को लाया था, बीवी का चाँदी का कड़ा गिरवी रखकर। वह क्या दे रही थी, मैंने ही उड़ा लिया। एक दम घर से भाग निकला। वह चिल्लाती रह गई। मैंने भी कही तू डाल-डाल चलती है मैं पात-पात चलूँगा। बस, दुकानदार ने दो रुपये दिये। आठ रुपये के दो रुपये। कहने लगा गिरवी रख रहा हूँ छुड़ा लेना। अब क्या छूटेगा ? ही, ही, ही, ही, अब क्या छूटेगा। मैंने कहा, सब गहना जो तूने गिरवी रखा है, उसमें से क्या छूटा है, बोल क्या छुड़ाया है, कोई छुड़ाया है अब तक, जो यही छूटेगा। बेईमान है बेईमान ! पहले मैं मुनीम था। सेठ का मुनीम। हिसाब-किताब मेरे जैसा कोई रख तो ले। पाई-पाई का हिसाब साफ।" (यह कहकर उसने माथे का पसीना पोंछा) "एक दिन सट्टे में उसका कुछ लगा दिया। बहुत नहीं थोड़ा, यों ही कोई पाँच सौ। फिर धीरे-धीरे चुराकर और लगाया। तुमसे क्या कहूँ, एक बार भी तो नहीं आया सुसरा। नहीं तो अब तक लखपति होता। सेठ से मैंने कही, एक-एक पाई चुका दूँगा सेठजी, जरा एक दाँव सीधा पड़ने दो। तुम कहोगे, क्यों मैंने पहले बताया कि सेठ का रुपया कहाँ गया ? उसी ने मुझे पहले पकड़ा। तब मैंने बचन दिया। लेकिन उसने मेरी एक न सुनी मुझे निकाल दिया।" 'राजाराम चुप हो गया और पसीना पोंछकर सिर पर हाथ फेरते हुए बड़बड़ाने लगा, "नहीं तो आज मैं भी लखपति होता। क्या नाम है तुम्हारा ? आदमी तो भले मालूम होते हो। साधु हो क्या ? वैसे मालूम तो नहीं होते। हाँ तो फिर।"

"मेरा नाम कमल शील है।"

"कमल शील। अजीब नाम है ! मेरा नाम राजाराम है। राजाराम मुनीम। तुम यह मत समझना कि मुझे सुल्फे का नशा है। नशा मुझ पर नहीं, मैं नशे पर चढ़ा रहता हूँ। हा-हा-हा-हा, यह भी खूब है ! वैसे मिले तो तीन-चार रुपये का सुल्फा मैं दिन भर में पी सकता हूँ। बस, बाबाजी को छोड़कर कोई

भी मेरा मुकाबिला नहीं कर सकता। लेकिन क्या बताऊँ, जरा दो पाव दूध मिल जाता तो देखते, इतना ही और पी जाता। छटंकी-सी जान! खूब है खूब है!"

वह फटी हँसी हँसा। बढ़ी हुई खशखशी दाढ़ी बिखरे बालों पर हाथ फेरता रहा। आँखों के अलावा कहीं भी शरीर पर लाली नहीं थी। पीला मुर्दनी चेहरा, पतले साँट-से हाथ-पैर, फटा कुर्ता, वैसी ही मैली धोती। हाथ-पैर के नाखून बढ़े हुए। उम्र होगी कोई पैंतालीस से ऊपर। लेकिन साठ का लगता था। बहुत देर तक नीचे निगाह किये कुछ सोचता सिर पर हाथ फेरता रहा। अचानक उसने सिर उठाकर ऊपर देखा तो आँखों में नमी, दीनता के चिन्ह थे।

कमल ने पूछा, "अब क्या करते हो?"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने कमल के मुँह पर आँखें जमा दीं। काफी देर देखते रहकर बोला, "अब क्या करता हूँ पूछते हो! कुछ भी नहीं, कुछ भी तो नहीं। क्या करता, बीबी का एक-एक गहना चुराकर, छीनकर सुल्फे में फूँक दिया। सब फूँक दिया। बड़ी नामुराद चीज है सुल्फा! क्या नाम है तुम्हारा?"

"कमल शील।"

"कमल शील! पर यह क्या नाम है, मजाक तो नहीं करते। देखो, मैं गरीब आदमी हूँ। धोखा न देना। समझ में नहीं आता अब घर कैसे जाऊँ। यह बाबा तो रहने नहीं देगा। तुम कहाँ रहते हो, न हो वहीं रात काट लूँगा। भूख लगी है। तुम्हारे पास कुछ है क्या? बड़ा डर लगता है। वैसे वह बड़ी भली है। उसका पीठ पीछा है ऐसी नेक औरत हो तो ले। बड़ी सेवा की है उसने मेरी। जब एक बार मैं बीमार हो गया तो दिन-रात एक कर दिया उसने मेरे पीछे।" फिर कुछ सोचकर बोला, "खैर, अब नहीं कहूँगा।"

वह थोड़ी देर तक चुप रहा। इसी समय गंगा के किनारे जाकर उसने पानी पीया और आकर बैठ गया।

इधर दूध आने पर जब बाबा और चेले पीने लगे तब राजाराम ने गिड़-गिड़ाकर थोड़ा-सा दूध माँगा। बाबा ने डाँट दिया। फिर दो पूरी निकालकर

उसकी तरफ फेंकते हुए बोला, "ले खा साले, देने से तो रहा, उल्टा बाबा से माँगता है।"

उसने बाबा के द्वारा फेंकी दोनों पूरियाँ उठा लीं और खाने लगा। बाबा ने कमल से कहा, "तू क्यों बैठा है ? जा रास्ता नाप !"

"बहुत देर से बैठा है," चेले ने कहा।

उस समय रात घहरा रही थी। राजाराम के मानस में घिरे संशयमय नपुंसकता के समान उसकी काली तहें गंगा के किनारे, पार पहाड़ों और गंगा-जल के अस्तित्व को पी रही थीं। दूर-दूर साधुओं, फकीरों, बाबाओं की कुटियों से हल्का प्रकाश अज्ञान में छिपे ज्ञान की तरह चमक रहा था। जैसे सारे प्रदेश को किसी महाग्राह ने ग्रस लिया हो। कहीं दूर खँजड़ी पर राम-नाम की धुन सुनाई दे रही थी। गंगा तट के पश्चिम में बनी धर्मशालाओं से कई तरह की आवाजें बिखर रही थीं। चारों ओर मन्दिरों में आरती के घंटे-झाँझ बज रहे थे। शायद यही सुनकर उस मैदान में चरता कोई गधा ढेंचूं-ढेंचूं करने लगा। दूर सियार बोल रहे थे। सर्दी बढ़ रही थी। बाबा ने एक लकड़ी धूनी में और डाल दी। चेले ने छप्पर में टाट रस्सी से बाँधकर पर्दा तान लिया। और दोनों धूनी की ओर मुंह करके बैठ गए। बाबा इस समय कोई भजन गाने लगा। चेले ने तमाखू का दम लगाया। राजाराम उस समय भी बैठा था। एकाएक उसने कमल से पूछा, "तुम कहाँ जाओगे ?"

"सोचता हूँ कहाँ जाऊँ।"

एकाएक निहोरे के स्वर में उसने कहा, "मुझे घर पहुँचा दो। तुम साथ होगे तो शायद मैं बच जाऊँ। नहीं तो वह मुझे खा जायगी। तुम्हारा भला हो, चलो।"

इतना कहकर राजाराम ने कमल का हाथ पकड़ा। कमल बिना कुछ सोचे उसके साथ हो लिया। ऊबड़-खाबड़ पत्थरों को पार करते वे दोनों एक धर्म-शाला के बाहर बनी कोठरी के सामने पहुँचे।

कोठरी में मिट्टी के तेल की कुप्पी जल रही थी, जिसमें प्रकाश की अपेक्षा परिवार की दरिद्रता की तरह धुआँ ही अधिक था। कोठरी का एक

दरवाजा भिड़ा था। सामने गूदड़ों भरी खाट पर एक बच्चा रो रहा था। लड़की बाहर ठिठुरती और आँसू बहाती बर्तन माँज रही थी। माँ धुएँ-भरी कोठरी में रोटी बना रही थी। एक कोने में टूटा संदूक, उस पर कुछ कपड़े, कीलों पर बेतरतीब, चिथड़े टँगे थे। बच्चे के रोने के साथ स्त्री का स्वर तीखा हो रहा था। वह रह-रहकर मालिक, लड़की और लड़के को बुरा-भला कह रही थी। पत्नी की आँखों में धुएँ के आँसू थे या दुःख के यह कहना कठिन था।

राजाराम और कमल दूर अँधेरे में खड़े हो गए। जब बच्चा रोते-रोते चुप न हुआ तो माँ ने उठकर दो-तीन थप्पड़ और जमा दिए। अब वह और भी जोर से रोने लगा। वह भूख के मारे रो रहा था। माँ की दी हुई सूखी रोटी वह नहीं खाना चाहता था। जब मारने के बाद भी उसने रोटी नीचे फेंक दी तब माँ बोली, "कहाँ से लाऊँ साग मरे, कुछ छोड़ा है उसने ! न जाने कहाँ पड़ा होगा नसे में। आग लगे इस सुल्फे में ! क्या करूँ मौत भी तो नहीं आती !"

इतना कहकर उसने बच्चे को पीटना शुरू कर दिया तो बर्तन माँजती लड़की दौड़कर बचाने लगी, "काहे को उसे मारे डालती है अम्मा ! ले मुझे मार, मुझे मार।" मिट्टी सने हाथों से उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और पुचकारने लगी। माँ बड़बड़ाती चूल्हे के आगे बैठकर रोटी बनाने लगी। लकड़ियाँ गीली थीं, धुआँ दे रही थीं, इससे कमरा अँधेरे से और भी भर गया।

"अभी नहीं आया, न जाने कहाँ होगा।"

"उसी बाबाजी के यहाँ होंगे काका।"

"इस दुःख का कोई अन्त है। मालिक होते हुए भी मैं तो राँड हूँ राँड।" फिर बोली, "तू भी तो ऐसी कुलच्छनी पैदा हुई है, पैदा होते ही मर जाती तो यह दिन न देखना पड़ता।"

लड़की चुप-चाप बच्चे को लिये रोती रही। माँ झर-झर आँसू बहाती रोटी बना रही थी। उस कुप्पी की रोशनी में राजाराम की औरत की पीठ कई जगह फटी धोती से चमक रही थी। अँगिया की तनी से उसकी पीठ बँधी थी। लड़की धुएँ में भीतर खड़ी न रह सकी तो कोठरी के बाहर चबूतरे

पर आ खड़ी हुई। सरदी बढ़ने के कारण काँपने लगी। उसने भाई को धोती के आँचल से और ढक लिया। एकाएक उसे लगा जैसे सामने दीवार से सटे आदमी खड़े हैं। उसे लगा ये वही दोपहर के गुण्डे हैं जो पिछले कई दिनों से ताक-झाँक लगाए चले आ रहे हैं। इनकी वजह से सुभद्रा का बाहर आना-जाना बन्द हो गया है। दिन-रात ऐसे डर लगा रहता है कि न जाने कब क्या हो जाय। इसी दहशत से लड़की ने भीतर पैर रखा और माँ को इशारा किया। माँ अब तक रोटी बना चुकी थी। उसने जलती लकड़ी उठाई और बाहर आकर उधर ही देखने लगी। कड़कती आवाज में उसने कहा, "आओ मरो, तुम्हें देखूँ। तुमने समझ क्या रखा है! खून न पी लूँ तो कहना। मेरी लड़की पर कुदिष्टि डालते तुम्हें सरम नहीं आती। तुम्हारे माँ-बहन नहीं हैं। मरो, निपूतो, आगे बढ़ो न! आओ राँड के साँडो इधर, आओ।"

उस औरत की आवाज़ से साथ की कोठरी का एक आदमी फटा कम्बल ओढ़े निकल आया। "क्या है राजाराम की बहू, क्या है, कौन है?"

कौशल्या की हिम्मत बढ़ी। वह जलती लकड़ी लेकर दौड़ी। उधर राजाराम डर के मारे कमल के पीछे हो गया। कमल के लिए यह सब नया था। वह हिला भी नहीं, वहीं खड़ा रहा। जब कौशल्या पहुँची तो कमल को देखकर अचकचाई। "कौन है तू? अब तू आया है। ले", कहकर उसने जैसे ही लकड़ी उठाई तो कमल हट गया। राजाराम डरा हुआ सहमा-सा खड़ा था।

"अच्छा तू है! इसका सहारा लेके आया है!" कौशल्या ने उसका कुर्ता पकड़ा और खींचकर घर में ले गई। राजाराम सहमा-सा चला जा रहा था, जैसे निर्जीव मांस का लौंदा हो। कौशल्या ने कुरते का गला पकड़कर चिल्लाते हुए कहा, "कहाँ था अब तक, बोल।" लकड़ी उसने जमीन पर पटक दी। और दोनों हाथों से उसे आचार के बर्तन की तरह हिलाने लगी।

"कहाँ था अब तक, वह कड़ा कहाँ है, बोल निपूते बोल, तू मर क्यों नहीं गया। क्यों मेरे प्राण पीवे है।" कुरता छोड़कर चूल्हे में जलती लकड़ी बुझाते हुए उसने कहना शुरू किया।

"इस घर को आग लगा दे। हम सबको बलती भट्टी में डालदे। फिर

सुल्फा पी । भाँग पी । गाँजे का दम लगा । मरे नास गये, सवेरे का गया अब सूरत दिखाई है ।"

"चल जाने दे कौशल्या, आखिर तेरा पति है । ऐसा नहीं कहे हैं," पड़ोस की एक औरत ने सहानुभूति के स्वर में कहा ।

"जाने दूँ, कब तक जाने दूँ । कब तक धीरज रखूँ काकी ? एक दिन हो, दो दिन हो तो चुप रहूँ । लड़की ब्याहने को बैठी है और ये मरा रोज कभी कुछ कभी कुछ नजर बचाकर उड़ा ले जावे है । बेचकर सुल्फा पीवे है । न जाने कहाँ-कहाँ खे खाता फिरे है ।" चिल्लाते-चिल्लाते वह रोने लगी । "अब रात को इन महाराज के दर्शन हुए हैं । पूछो, ये बच्चे हैं तो इन्हें कुछ पेट में डालने को चाहिए कि नहीं । ये क्या खाँय मेरा मूंड । घर में न आटा है न दाल । कहाँ से खिलाऊँ इन्हें ? कहाँ से लाऊँ काकी ?"

राजाराम चुपचाप अपराधी की तरह खड़ा था, खड़ा रहा । कमल चबूतरे के नीचे सब सुन रहा था । कौशल्या कह रही थी, "तुम जानो काकी, कहाँ तक कोई सबर करे । कमाने कूँ कुछ नहीं । सुल्फा पीने कूँ रोज चहिए । आज तुम ने देखा इस धरमशालावाले ने कैसे गुण्डे इकट्ठे कर लिए । वह तो वहाँ काका और तुम न होतीं तो लड़की को उड़ा ले जाते । मैं अकेली क्या करूँ ।" वह फिर रोने लगी । इस समय दूर से आवाज आई, "धर्मशालावाले को क्यों दोस लगावे है भागवान् ? मैंने क्या किया है अपना माल खोटा तो परखने वाले का क्या दोस । अपना घर देख पहले फिर कहियो ।"

"तू तो बड़ा तिरबेनी नहा के आया है । मेरा मुँह मत खुला । सारी कलई खोल के रख दूँगी । बड़ा बना फिरे है रुस्तमखाँ ? आने दे अब के धरमशाला के सेठ को कहूँगी, धरमशाला इसने गन्दी कर रखी है । कोई भलामानस यहाँ रहना पसन्द नहीं करे है । हाँ, नहीं तो ।"

"तू तो बड़ी भलीमानस है । भलीमानस होती तो चार महीने का किराया देती । ला, अभी ला । और खाली कर दे कोठरी ।"

"कोठरी क्या तेरे बाप की है ? नहीं खाली करते जा । कर ले जो कुछ करना हो ।" इसी समय दहाड़ता धर्मशाला का मुंशी आ गया, "देख सीधी

तरह रहना हो, रह, नहीं तो निकल यहाँ से। छिनाल कहीं की।"

'छिनाल' शब्द सुनकर कौशल्या और भी गरजी। रोकर कहने लगी, "मैं छिनाल हूँ। छिनाल होगी तेरी माँ, तेरी बहन, मुँह सँभालकर बात करियो मरे!"

मुंशी को गुस्सा आ गया। वह जैसे ही उसे मारने आगे बढ़ा तो सब कोठरी वाले पीछे हट गए। राजाराम अब भी चुप नशे में नपुंसक बना खड़ा था। मुंशी ने आगे बढ़कर कौशल्या को धक्का दे दिया। वह हटते-हटते चबूतरे से नीचे गिर पड़ी।

"सुसरी बकती जा रही है। कल कोठरी खाली नहीं की तो झोंटा पकड़ कर निकाल दूँगा, समझ क्या रखा है तूने!"

कौशल्या जमीन पर गिर पड़ी। उसके सिर में चोट आ गई। वह थोड़ी देर के लिए बेहोश-सी हो गई। कमल ने उसे उठाया और चबूतरे पर बिठा दिया। मुंशी से कोई भी कुछ न कह सका। सब लोग अपनी-अपनी जगह चले गए। कौशल्या को होश आया तो वह और जोर से रोने लगी। लड़की और बालक भी रो रहे थे।

राजाराम बैठा सिर पर हाथ टेके यह सब देख रहा था। कमल बहुत देर तक साँस साधे सब सुनता रहा, जैसे यह सब उसके लिए नया हो। कमल के जीवन में यह पहली घटना थी कि उसे समाज के एक अंग में इतना उत्पीड़क, दर्दनाक दृश्य देखने को मिला। क्या ऐसे भी लोग हैं जिनकी बाहरी जिन्दगी संघर्ष से इस तरह पिस रही है? राजाराम को उसने बाबा के यहाँ सुल्फा पीते देखा था, उसकी बेतुकी बातें भी सुनी थीं। नशे में आँय-बाँय बककर जो अपने दुख-दर्द का संकेत दिया था वह इतना दर्द भरा, इतना उग्र, इतना मर्म-वेधी होगा इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। तो क्या संसार में यह एक ही परिवार की कहानी है, और लोग ऐसे नहीं होंगे? दुनिया में इतना दुख है, यह उस ने आज ही जाना। पिछले दिनों जिन्दगी की शुरूआत में भी उसे ऐसा देखने को नहीं मिला। उन दिनों की जिन्दगी उसकी निगाह में जुए के पाँसे की तरह धूप-छाँह वाली थी, लेकिन उसमें कहीं भी इतना नग्न चित्र नहीं देख पड़ा। प्रेम, ऐय्याशी,

फिजूलखर्ची, मस्ती के आलम में उसने जो खेल खेले थे वे अपने तक ही सीमित थे। मजबूरियाँ उनमें माँगी हुई थीं, परेशानियाँ खुद बुलाई हुई थीं। जो कुछ था वह एक खिलौने को तोड़ने की तरह था, जिसमें मन की एक उमंग काम करती थी। इसके बाद आश्रम के जीवन में उसे ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं दिया। रसोई में बनने वाले नित नये स्वादिष्ट भोजन खाकर उसे कभी ऐसा नहीं लगा कि दुनिया में किसी तरह का कोई अभाव है। कहीं बेचैनी का कोई निशान है। सवेरे से शाम और रात से सवेरे तक निर्द्वन्द्व विचरने वाले बेफिक्र जीवन में योग, अध्यात्म ईश्वर चिन्तन के अलावा और कोई भी ऐसी फिक्र हो सकती है जिसका एक रूप उसने आज देखा है। वह अब तक बहुत बड़े भ्रम में रहा। कोढ़ में पीव भरी इस जिन्दगी को उसने अब तक क्यों नहीं देखा ? उसे आज ही ये आँखें कहाँ से मिल गईं ?

वह व्याप्त सिहरन से एकबारगी अभिभूत हो उठा, जैसे प्रेम यहाँ दूर-दूर तक कहीं नहीं है, जैसे ईश्वर, धर्म, मोक्ष ने इस ओर कभी झाँका भी नहीं है। कितनी बेबसी है इस परिवार में ! कितना उग्र व्यापक अभाव ! उसे कौशल्या पर दया हो आई। फटे चिथड़ों में ढकी सुभद्रा को देखकर उसे लगा जैसे जिन्दगी का विषैला कीड़ा उसके एक रोम को डँस रहा है। ओः कितना कष्ट है। बेचैनी से उसका अन्तर भर गया।

राजाराम अब भी वहीं बैठा था। सर्दी से काँपते उसके अंग निराशा, उदासीनता, भाग्य के अँधेरे की चाबुक खाकर और भी निस्तेज, निर्वीर्य होते जा रहे थे। कौशल्या अब चुप थी। लड़की बालक को लिए जमीन पर बैठी थी। वह रोकर सो गया था। किसी ने भी रोटी नहीं खाई थी। खाता भी कोई कैसे, इस घटना का प्रभाव जैसे नशे की तरह उन लोगों पर छा रहा था। बहुत देर तक वह खड़ा देखता रहा। अन्त में पास का एक रुपया फेंककर वह चलने लगा तो देखा कि राजाराम में एक हिम्मत आ गई। वह रुपया उठाने चला तो कौशल्या ने झपटकर वह राजाराम से छीन लिया। उसने न कमल को धन्यवाद दिया और न उससे कुछ पूछा।

कमल निरुद्देश्य चल पड़ा तो राजाराम ने उसे करुणा-भरी नजर से देखा,

लेकिन कहा कुछ नहीं जैसे मूक मन उससे कछ कहना चाहता हो, लेकिन मन वाणी बनकर फूटने में असमर्थ था, सर्वथा असमर्थ ।

भूखा तो कमल भी था । वह इधर-उधर घूमने के बाद काली कमलीवाले की धर्मशाला के भीतर घुसा तो बाहर बैठे एक चपरासी ने कहा, "अब भोजन नहीं है जाओ ।"

कमल बिना बोले खड़ा रहा तो खाना समाप्त करके बैठे हुए एक रसोइए ने कहा, "ले बाबा, दो रोटियाँ हैं पा ले ।"

कमल ने रोटियाँ ले लीं और वहीं बैठकर खाने लगा ।

रात में काफी सरदी पड़ने पर कंबल और चादर मिलाकर वह वहीं भरत मन्दिर के उत्तर में, जहाँ से सूखी चन्द्रभागा और आगे घना जंगल था, दालान के एक कोने में बैठ गया । नींद उसे नहीं आ रही थी । जैसे राजाराम के परिवार का दृश्य उसकी आँखों में रह-रहकर झूम उठता हो । वह बहुत देर तक बैठा रहा । जीवन के इस पहले धक्के ने उसके रोम-रोम को झँझोड़ डाला । वह कुछ भी समझ नहीं पा रहा था । कुछ भी जान नहीं पा रहा था कि यह ऐसा क्यों है ? मनुष्य क्या इतना बेबस है ? इतना दुखी है ? एक-एक करके उसे याद आया कि इन कोठरियों में रहने वाले और ऊँचे मकानों, आश्रमों में रहने वाले लोगों में क्या अन्तर है । तो क्या साधु-संन्यासियों, महन्तों का अध्यात्म प्रपंच सारहीन है ? एक आदमी भूखा है, अभावों से पीड़ित है, रोग-शोक उसके प्राणों पर ऐसे घहरा रहे हैं, जैसे धीरे-धीरे जीवन का रस निचोड़ रहे हों । दूसरी ओर उन्हीं के पास ऊँचे, पक्के मकानों में तृप्ति-कर स्वादिष्ट भोजनों की इतनी बहुतायत है कि उसे कुत्तों-भंगियों को देना पड़ता है । और सूँस की तरह वे लोग पड़े साँस लिया करते हैं । दूर क्यों जायँगे ये भंगी भी तो उसी निरर्थकता अवास्तविकता के दास हैं जो कुत्तों से लड़कर एक-एक टुकड़ा इकट्ठा करते हैं । उसे आश्रम के भंडारे की याद हो आई । जिसमें एक बार इतना अन्न फेंका गया कि भंगियों ने भी न जाने कितने दिन पेट भरकर खाया होगा । यह सब क्या है ? इतनी विषमता क्यों है ? धर्म इनकी रक्षा क्यों नहीं करता, क्यों ये मोक्ष नहीं चाहते ? क्या मोक्ष केवल इन पेट भरे लोगों के लिए ही है ?

इस समय चन्द्रमा निकल आया था। दूर सड़क पर लालटेन जल रही थी। जिसका प्रकाश मालदार के परिवार के सुख की तरह चारों ओर फैल रहा था। खुशामदियों की तरह लालटेन के चारों तरफ कुछ कीड़े घूम रहे थे। सन्नाटे को चीरते हवा के झोंके मैदान में पड़े नागा बाबा की नाक से फूटकर निकलती साँस की तरह बेरोक बह रहे थे। दूर कुत्तों का दल जगह-जगह एक दूसरे के आख्यान-व्याख्यान पर टीका-टिप्पणी कर रहा था। दूर खड़ा एक कुत्ता रो रहा था मानो ऋषिकेश में पधारनेवाली मृत्यु को मनुष्यों द्वारा दिखाई गई अपनी उपेक्षा की दर्द-भरी कहानी सुना रहा हो। वातावरण में उत्पन्न बेचैनी के साथ कमल का उखड़ा-उखड़ा मन पेड़ों पर कभी-कभी फड़फड़ा उठने वाले पक्षियों की तरह कुछ सरदी से और कुछ जीवन की तिक्तता से व्याकुल हो उठता। अब कुत्ते बोलना बन्द करके शायद थककर हलवाइयों की भट्टी में जा छिपे थे। इसीलिए सन्नाटे की छाया में एक सिहरन उठ रही थी! हवा के झोंकों के गीत अब कभी-कभी उसे सुनाई देते। फिर भी भय की तरह गंगा के तेज प्रवाह की गर्जना को रात अपने अंक में भरे सो रही थी, जैसे किसी रोते बच्चे को माँ थपथपाकर सुलाना चाहती हो। नींद न आने पर आँखें फाड़े कमल रात को पढ़ रहा था। पेड़ों की छाया में चाँदनी की छिटकन उसे काले कागज पर लिखे अक्षरों की तरह लग रही थी।

इसी समय उसने देखा दो छाया मूर्तियाँ जरा दूर हटकर उसी दालान के एक कोने में आकर रुकीं। उनमें से एक ने कहा, "बस, यही जगह ठीक है। यहाँ कोई नहीं है।"

"नहीं, तनिक और आगे चलो," दूसरे ने आग्रह किया।

"मैं आगे नहीं जाऊँगा, खोलो।"

"अच्छा!"

दोनों ने एक बड़ी-सी पोटली खोली। कमल की उत्सुकता जागी। वह चुपचाप उठकर दीवार से सटा-सटा अँधेरे में जरा और आगे बढ़ा। उसने देखा पोटली खोली जा रही है; कोई आदमी है।

"सब गहने उतार लो। लाओ, मैं निकालता हूँ।"

एक-एक करके उन्होंने गहने उतारे तो वह कुनकुनाई।

"चलो, हो गया। अभी साँस है मरी नहीं। चलो, ले चलो गंगा में फेंक दें। रात का समय है, देखेगा भी कौन ?"

गहनों को लेकर दोनों में छीना-झपटी चलती रही। गंगा में फेंकने के प्रश्न पर भी उनमें काफी वाद-विवाद हुआ। एक ने कहा, "आधा गहना ले लिया है अब तुम जाओ। मैं इसे अपने पास रखूँगा।"

"मैं कहता हूँ तू मारा जायगा, ऐसा मत कर।"

"नहीं, नहीं, नहीं मानेगी तो मार डलूँगा, पर अभी नहीं।"

"तेरी मर्जी।" कहकर पहला चला गया। कमल को स्पष्ट हो गया कोई स्त्री है। ये दोनों बेहोश करके उसे बाँध लाये हैं। दूसरे आदमी ने उसे अंक में भर लिया। वह धीरे-धीरे होश में आई तो अचानक चीखकर बोली, "कौन है, मैं कहाँ हूँ ?"

"चुप, एक आदमी तुझे मारकर गंगा में फेंकना चाहता था। मैंने बचाया है।"

वह एक बार फिर चीखी—"तू, तू कौन है ?"

"धीरे बोल !"

थोड़ी देर बाद वह फिर चिल्लाई, "हाय रे, मार डाला ! मुझे मार डाला ? मुझे बचाओ ! बचाओ !" वह जितना ही चुप कराता औरत उतना ही चिल्ला रही थी। कमल से न रहा गया। वह आगे बढ़कर सामने आ गया।

"क्या है, कौन है तू ?"

उसे मालूम हुआ, वह कोई बाबाजी हैं। जैसे ही वह औरत के पास पहुँचा तो बाबाजी ने झपटकर कमल को दबोच लिया और मुक्कों, घूँसों, लातों से उसकी मरम्मत करने लगा। वह काफी हैंकल जवान था। औरत और भी चिल्लाने लगी। जब कमल होश में आया तो देखा लालटेन लिये आदमियों की भीड़ खड़ी है। वह आदमी भाग गया है। थोड़ी ही देर में पुलिस के दो सिपाही भी आ गए। वह स्त्री फूट-फूटकर रो रही थी। अब कमल फिर पिट रहा था। लोगों को समझाने पर भी इधर-उधर से उस पर हाथ पड़ रहे थे। कोई

धक्का देता, कोई चपतियाता, गाली देता। वह गिर पड़ा तो लोगों ने लात-घूँसों से मारना शुरू कर दिया। अन्त में उस औरत ने निरपराध सिद्ध करते हुए पुलिस से उसे बचाने की प्रार्थना की। कमल और उस औरत को पुलिस पकड़-कर ले गई।

उस दिन किसी काम से शिवानन्द ऋषिकेश आया तो उसने देखा कि कमल सिर पर सन्दूक और बगल में बिस्तर उठाये जा रहा है। एक सम्पन्न आदमी उसके साथ है। कमल के कपड़े फटे और मैले हैं। पहले तो उसे यकीन न हुआ। पास जाकर देखा तो उसे पुकारा।

बोझ से दबे हाँफते कमल ने देखा।

"अरे मजूरी करता है क्या ?"

कमल ने कोई उत्तर न दिया। वह बराबर चला जा रहा था। शिवानन्द पीछे हो लिया। जब धर्मशाला में सामान रखकर कमल लौटा तो शिवानन्द को बाहर खड़े पाया।

"यह क्या है रे ?"

"कुछ बुराई है इसमें ? मजदूरी करके खाना मुफ्त का माल खाने से अच्छा है।"

उसकी आवाज में तीखापन था, दृढ़ता थी। जैसे उसने कोई बड़ा काम किया हो। चौड़ी छाती फुलाकर वह शिवानन्द के सामने खड़ा हो गया।

"तू कैसे आया ?"

शिवानन्द आँख फाड़े कमल को देख रहा था जैसे उसका अप्रत्याशित रूप वह पा रहा हो। वह थोड़ी देर के लिए हैरान रह गया।

"इसमें कोई बुराई नहीं है शिवानन्द। दो आने मिले हैं। चने खाने को बहुत हैं।" उसकी हैरानी को और झकझोरते हुए उसने कहा—"इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? चोरी तो नहीं की।"

"पर······।" शिवानन्द की वाणी रुक गई, "ठहर, मैं इसी धर्मशाला के

एक यात्री को देखकर आता हूँ।" शिवानन्द भीतर जाकर थोड़ी देर में लौट आया। जैसे वास्तविक और बनावटी दो आदमी आमने-सामने खड़े हों। शिवानन्द को लगा, वह पुराना कमल नहीं। उसका कंकाल है जो काफ़ी नीचे उतर गया है। क्या एक आदमी इतना गिर सकता है! उसके हृदय में उसके प्रति उपेक्षा के साथ एक दया का भाव जागा। लेकिन उसने पाया उसके इस तरह देखने पर भी कमल को कोई शर्म-लज्जा नहीं आई है। वह वैसा ही निर्भय है, जैसे उसने कोई बड़ा काम किया है। "मजदूरी भी उतनी पवित्र है, जितना तुम्हारा तप, बल्कि उससे भी अधिक। क्या देख रहा है?" कमल ने कहा।

"मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ।"

हँसकर कमल ने उत्तर दिया, "समझ पाने की क्षमता क्या हर एक में होती है? बनावटी विश्वासों से पले मनुष्य जीवन की गहराई तक नहीं जा पाते। मुझे इसमें खुशी है। पिछले दो दिन तक खाना न मिला तो आज यह कर लिया।"

दोनों चन्द्रेश्वर महादेव के मन्दिर के पास गंगा के किनारे जा बैठे।

उस समय साँझ हो रही थी। सामने अस्ताचल को जाते हुए सूर्य की किरणें सिमटकर गंगा के किनारे की पर्वत-माला पर खेल रही थीं; हवा हरे-हरे पेड़ों के पत्तों, किशलयों को अपने कोमल करों से गुदगुदा रही थी। ठण्डक बढ़ रही थी। आस-पास साधु तथा अन्य यात्री लोग आ-जा रहे थे। कुछ भक्त गंगा के किनारे बैठे थे। पास ही एक यात्री अपने परिवार के साथ गंगाजी की आरती का सामान लिये पूरी साँझ की प्रतीक्षा कर रहा था। शिवानन्द और कमल वहीं दूर हटकर दो गोल बड़े पत्थरों पर बैठ गए। कमल की दाढ़ी बढ़ रही थी, बाल बेतरतीब, कुरता मैला और फटा। कन्धे पर खद्दर की मोटी चादर। शिवानन्द कमल को इस अवस्था में देखकर दुखी हुआ और बोला, "हाँ, अब कह, मैं समझा तू घर चला गया होगा।"

"मेरा घर कहाँ है शिवानन्द······।"

"क्या तब से यहीं है?"

"नहीं, हरिद्वार भी हो आया। इन पिछले दिनों काफी दुनिया देखी है, विश्वास

की नदी में उतरने पर अविश्वास, अनास्था, कपट-छल के मगरमच्छों ने मुझे डस लिया। मेरी आस्था की नींवें हिल गईं। मुझे लगा मनुष्य मनुष्य न रहकर विलास का कीड़ा, अनास्था, अश्रद्धा, कपट, ईर्ष्या का पुतला हो गया है। जैसा वह बाहर से दीखता है भीतर उससे काफी भिन्न है। इन्द्र-धनुष के रंगों की तरह चमकता हुआ भी जैसे अन्तर में विष का सागर है। मैं तुझसे क्या कहूँ शिवानन्द, इन पिछले दिनों जो मैंने देखा, जो सुना, जो जाना, उसे तू सुने तो आँखें निकल पड़ें।" वह रुककर अपने में खो गया फिर बोला, "तुझे मालूम है ईश्वर के सम्बन्ध में तर्क करने पर स्वामीजी ने मुझे निकाल दिया तो मैंने सोचा आत्मा की शान्ति के लिए, अपने संशय को दूर करने के लिए साधुओं, महात्माओं के दर्शन करके उनके चरणों में बैठकर शंकाओं का समाधान करूँ। इसीलिए हर आश्रम में, हर साधु के पास गया। मिला क्या, कुछ नहीं। मैंने देखा बहुत से स्वयं ही अज्ञान में हैं, ऐय्याशी, विलासिता में फँसे, रहन-सहन विचारों में बिल-कुल हमसे भी गये-बीते हैं। वैसा ही खाना, वैभव के सामान उनके यहाँ हैं। बड़े-बड़े महलों में रहते हैं। घोड़ा-गाड़ी, मोटरें उनके यहाँ हैं। सुन्दर स्त्रियाँ इनके पैर दबाती हैं। भंग, शराब, सुल्फा, गाँजा, अफीम कोई नशा नहीं है जो इनके यहाँ न चलता हो। सूरज की धूप की तरह चमकते गेरुए कपड़ों में चाँद की मुस्कराहट बिखेरते वे आँखों से, अधरों से, शरीर से, अंग-अंग से, रोम-रोम से, पराई स्त्रियों के सौन्दर्य में डूबे हुए बाहर से 'नमो नारायण' पर भीतर से काम-देव की मूर्ति बने हैं। रँगे हुए कपड़ों के भीतर साक्षात् कलुष, पाप जैसे साकार होकर विचरण करता है। बहुत से ऐसे देखे जिनकी तरफ से बूढ़ी, खंगड़, कुरूप चेलियाँ सम्पन्न, कुलीन ऊँचे परिवार की सुन्दर स्वस्थ काम-रतियों को बहका-कर उनकी सेवा में अर्पित करती हैं। वे इत्र से नहाने वाले, पुष्पहारधारी मखनियाँ साधुओं की निगाहों का शिकार बनती हैं। वहाँ दिन में ब्रह्म-चिन्तन और रात को रति-चिन्तन होता है।

एक आश्रम में मैंने देखा स्वामीजी अप्सराओं से ऐसे घिरे हैं जैसे सूरजमुखी का बड़ा फूल जगर-मगर करते चमेली के फूलों से घिरा हो, या चन्द्र-मण्डल तारिकाओं के बीच शोभा पा रहा हो। दो स्त्रियाँ उनके पैर दबा रही हैं। कुछ

पंखा कर रही हैं। उस समय दो और स्त्रियों को कुछ न सूझा तो वे स्वामीजी की पीठ-कन्धे दबाने लगीं। और स्वामी 'नारायण-नारायण' कह रहे हैं जैसे नारायण को बुलाकर दिखा रहे हों कि—देख नारायण, तेरे चरण केवल एक लक्ष्मी दबाती है मेरे चरण दबाने वाली बेशुमार लक्ष्मियाँ हैं। गर्व से उनका चेहरा चमक रहा था। गले में फूलों का हार, रुद्राक्ष की माला, माथे पर त्रिपुण्ड, सिर पर रेशमी पगड़ी, रेशमी कुरता पहने थे। पास चाँदी की खड़ाऊँ रखी थीं। दोनों तरफ ऊँचे गाव-तकियों के बीच में ढासना लगाए मखमली कालीन के ऊपर स्वामीजी विराजमान हैं। नशे से उनकी आँखें झूम रही हैं। लाल डोरे वाली आँखों में रस छलक रहा है। जगह-जगह अगर बत्तियों की मादक सुगन्धि से सारा कमरा नहा रहा है। स्वामीजी अप्सराओं की सेवा पाकर आत्मलीन हैं।

"कभी दाएँ, कभी बाएँ वे प्यासी आँखों से भगतनियों की तरफ देखकर मुस्कराकर कहते हैं, "बड़ी अच्छी है, देवी है देवी ! नारायण की सेवा कर रही है। सेवा में मेवा है प्यारी भगतिनी।" उस समय उन स्त्रियों में सेवा की होड़ लगी। कुछ दूर बूढ़ी स्त्रियाँ बैठी गीता और जोर से पढ़ने लगीं। इसी समय बाहर से एक स्त्री मिठाई का थाल लेकर आई तो महात्माजी ने आँखें खोलीं। पूछा, क्या है, क्या है प्यारी माई, अच्छा मिठाई लाई है ?"

' "हाँ महाराज।" वह पैरों पर झुक गई।

' "वाह वा, खूब है; नारायण-नारायण, कब आई ?"

' "अभी-अभी।" उसने हाथ जोड़ते हुए कहा।

' "अच्छा, आज ही, कह, राजी-बाजी तो है, सब ठीक तो हैं।" फिर कहा।

' "भगत खुश ! बड़ा अच्छा है। बाल-बच्चे राजी तो हैं न ?"

' 'हाँ स्वामीजी, चरनों की किरपा है।" इतना कहकर एक बार फिर चरणों पर गिरी। स्वामीजी गद्-गद् हो उठे। पास बैठी स्त्रियों को सम्बोधन करके बोले, "ये हैं भाँगा वाली माई। इसी ने ऊपर का कमरा बनवाया है। इस बार क्या सला है, क्या लाई है ?" स्वामीजी उठे और सबको सम्बोधन करके कहने लगे, "देखो, इसके बाल नहीं होवे थे। हमने कहा, स्वामीजी कूँ कर दे अर्पण तन मन। भगवान् की किपा होगी तो खरा लड़का होवेगा। तो हो गया।

यहाँ क्या कमी है ! नारायण-नारायण, कौन काम ऐसा है जो हम नहीं कर सकें। क्यों ठीक है नीं।"

'"हाँ महाराज!" सबने एक स्वर में कहा। फिर स्वामीजी कहने लगे, "अरे कल्यानदास ?"

'एक संड-मुसंड चेला आया तो स्वामीजी ने कहा, "माई कूँ परसादा छका, माई यहीं रहेगी। ऊपर कमरे का प्रबन्ध करदे। समझा, जा नारायन का अरदासा करदे।"

'चेला थाल उठा ले गया। माइयाँ और भक्ति से विह्वल हो उठीं। एक ने आकर कमरे में और अगर बत्तियाँ जला दीं। कुछ औरतें गीता समाप्त करके भजन गाने लगीं। राम-राम की धुन सारे कमरे में व्याप्त हो गई। स्वामीजी उठकर बैठ गए। वे भी भजन गाने लगे। गुरुजी की आरती हुई। सबने फिर एक बार स्वामीजी के चरणों में बारी-बारी से आकर सिर रख दिया।

'एक चेले ने मुझे देखा तो कहने लगा, "क्या है, क्यों बैठा है ?"

'मेरे कुछ न कहने पर उसने मुझे भगा दिया। मैं भूखा बड़े फाटक के पास आ गया। बाहर एक दरबान बैठा था। मुझे देखकर बोला, "क्या है, जा भाई जा !"

'मैंने कहा, "बड़ा आनन्द है।"

'"हाँ आनन्द तो है ही।" बातचीत के सिलसिले में उसने बताया, "भोजन के बाद स्वामीजी भीतर कमरे में सोयेंगे। वहाँ कोई नहीं जा सकेगा। केवल नए भक्त ही, वे भी खास-खास, जा सकेंगी। उस समय कुछ चुनी हुई स्त्रियों को बुलाया जायगा। वे ही जायेंगी और नहीं। वे दोपहर भर सेवा करेंगी। रात को स्वामीजी बाग के कोने में एक मकान में सोते हैं, वहाँ कोई नहीं जा सकता। वहाँ रात के दस बजे तक कीर्तन-कथा-वार्ता होती है।"

'बहुत देर तक मैं चुप खड़ा रहा। भूख के मारे बुरा हाल था। उसने मेरी ओर देखा तो बोला, "भूखा है।"

'"हाँ।"

'"ठहर, यहाँ कोठरी में बैठ जा, मैं खाना लेने जाऊँगा तो चार रोटी और

ले आऊँगा।" मैं बैठ गया। थोड़ी देर बाद वह खाना लेकर लौटा तो चार रोटियाँ और साग, दाल, थोड़ी खीर, हलुवा, चटनी उसने मुझे दिये। वह भी कोठरी में खाने बैठ गया। मेरे पूछने पर उसने बताया, "जाड़ों में महाराज बाहर जाते हैं और चेली-चेला बनाते हैं। हर शहर में इनकी चेलियाँ हैं। वे ही इनके पहुँचने पर बड़े घरों की स्त्रियों को दर्शन कराने लाती हैं। उन्हें चेली बनाया जाता है। दक्षिणा ली जाती है। वहाँ स्वामीजी राजा की तरह रहते हैं। मोटर में चलते हैं। हर शाम कथा-वार्त्ता में हजारों आदमी इकट्ठे होते हैं। इस तरह बीस-पच्चीस हज़ार रुपया चार-पाँच महीने में लेकर लौटते हैं। मकान, कमरे प्रायः शिष्य ही बनवाते हैं। अभी चार कमरे चार यात्रियों ने बनवाए। स्वामीजी ने सहारनपुर में दो कोठियाँ बनवाई हैं। हरिद्वार में कुछ दुकानें और एक मकान अभी खरीदा है। एक वैद्य है जो स्वामीजी के लिए मँहगी से मँहगी दवाई बनाया करता है। उधर कोने में एक पाठशाला है, जिसमें कुछ नौकरों और आस-पास के गरीबों के लड़के पढ़ते हैं। एक फटे हाल पण्डित है जो अपने आप बहुत कुछ नहीं जानता। पहले वह पण्डित यहीं रहता था। एक रात बड़े चेले ने उसकी औरत को पकड़ लिया। औरत चिल्लाई, पण्डित बाहर था, उसने आकर शिकायत की तो उलटा उसे डाँट दिया गया। पण्डित ने दुहाई दी तो उसे पीटा और धमकी दी कि यदि शोर मचावेगा तो जान से मार दिया जायगा। वह नौकरी छोड़कर चला गया। अभी पिछले दिनों उसे फिर नौकर रखा गया है।"

"वह औरत?"

"औरत मौज में है। अब वह स्वामीजी की चेली है। उसी ने पण्डित को नौकर रखवाया है। क्या पूछते हो! बड़े-बड़े काम होवें हैं यहाँ। अपने को क्या? तनखा खरी है, खाना भी तुम जानो बुरा नहीं है। बाजार में ऐसा खावें तो पचास से कम न बैठे। फिर हर रोज भंडारे, जाड़ों के कपड़े, कम्बल। गर्मियों में दूध, सरदई सभी तो है। अब जा, रास्ता नाप।" दरबान ने सहज भाव से सब कह डाला।

"बड़ी विचित्र बात है।" शिवानन्द बोला।

उस दिन मठों में रहने वाले लोगों का यह व्यापार देखा तो आँखें फट गईं। मन में जिज्ञासा हुई, देखूँ कहाँ तक ये लोग नीचे गये हैं। अब मेरा काम साधुओं के आश्रमों का चक्कर लगाना रह गया। सुबह से शाम तक घूमता। कभी रात में भी वहीं रह जाता। जब, जो, जहाँ-जैसा मिलता खा लेता। अचानक एक दिन सुबह एक साधु के आश्रम में पहुँचा तो मुझे देखकर एक नौजवान मेरे पास आया, बोला, "नौकरी करोगे?"

"कैसी नौकरी?"

"बस, एक साधु की सेवा करनी है, खाना-कपड़ा मिलेगा, बीस रुपया माहवार।"

कुछ देर सोचकर मैंने उत्तर दिया, "कर लूँगा।"

"तो चल।"

वह मुझे भीतर ले गया। कमरे में साधु लेटा था। सारा शरीर मोटे-मोटे फफोलों से भरा हुआ, जिनसे पीव रिस रही थी। विकृत रूप। हड्डियों का ढाँचा। बदबू आ रही थी। पास ही एक मेज पर दवाई की शीशियाँ रखी थीं। कोई भी उसके पास नहीं था।

"क्या करना होगा?" मैंने पूछा।

"कुछ नहीं, समय पर दवा देना और यहाँ रहना। और कोई काम हो तो—वह भी।"

"उत्सुकता तो थी ही। मैंने मान लिया। मैंने काम शुरू कर दिया। कमरा साफ किया। धूप जला दी। स्वामी के कपड़े बदले। पहने कपड़े उबालने डाल दिए। सामने पड़े एक तख्त पर बैठ गया। थोड़ी देर बाद एक अधेड़ स्त्री दिखाई दी। उसने देखा तो बोली, "ठीक है," और बैठ गई।

"क्या बीमारी है, इन्हें?" मैंने पूछा।

"इसके पाप हैं," उसने बिना मेरी ओर देखे जवाब दिया।

"क्या मतलब?"

"वह कुछ नहीं बोली। लड़के के आने पर उसके साथ चली गई। थोड़ी देर बाद वैद्य आया। उसने देखा तो कुछ दवा बदली। और मुझे नसीहत करके

बाहर उस औरत और लड़के से बातें करने लगा। वह कह रहा था, "अभी काफी भोगना है इसे, शायद अच्छा हो जाय।"

"तो ऐसी दवा दो कि मर जाय," लड़का बोला।

"मैं ऐसा काम नहीं करता। अस्पताल भिजवा दो।"

"मैं चाहती हूँ रजिस्ट्री हो जाय तो भेजूँ, खूसट अभी रजिस्ट्री नहीं कर रहा है। वकील दो बार आकर लौट गया है। मैंने भी समझाया है। समझता ही नहीं है। छाती पर रखकर ले जायगा।" बहुत देर तक वह बातें करती रही।

साधु चुप था। वह जब-तब करवट बदलता तो कराह उठता। कभी उसकी आँखों में आँसू भर जाते। मक्खियाँ बेचैन करतीं तो हाथ हिला सकने की भी सामर्थ्य उसमें नहीं थी। सिर हिलाकर जैसे उन्हें उड़ाने की कोशिश करता। काँटे से खड़े दाढ़ी और सिर के बालों से वह और भी भयंकर लगता, जैसे श्मशान का कोई मुर्दा हो। पीला रंग कालापन लिये हुए। फीकी और फटी विकराल आँखें जिनमें गड्ढे पड़े थे। पिचका मुँह ! कोई-कोई दाँत। मुँह-अँधेरी गुफा की तरह, उससे लार बह रही थी। वह बोलता तो स्वर साफ सुनाई नहीं दे रहा था कि क्या कह रहा है, फुड़-फुड़ ओठ हिलते और आवाज बैठी हुई होने के कारण नाक से स्वर निकलता। पीछे से मालूम हुआ नाक और मुँह में घाव हैं।

एक फफोला फूटता तो दूसरा उसी जगह निकल जाता। फिर भी वह जी रहा था, जीना चाहता था, जैसे हविस उसकी अभी तक जाग रही थी। वह मौत से लड़ते हुए भी जी रहा था। दवा के लिए इशारा करता। मैं दूर हटकर तख्त पर बैठा रहता, कभी बहुत मक्खियाँ इकट्ठी होने पर उड़ा देता या कभी पास आकर खड़ा हो जाता तो वह जैसे मुझसे कुछ कहना चाहता, पर साफ आवाज नहीं निकलती थी। कुछ भी समझ में आना मुश्किल था। मैंने दो एक बार उस बुढ़िया से कहा, "यह कुछ कहना चाहता है" जब वह पास जाकर रजिस्ट्री की बात करती तो वह चुप हो जाता।

मालूम हुआ कि मरने पर उस आश्रम की सम्पत्ति पर एक पास का साधु कब्जा करना चाहता था, जब कि यह औरत और लड़का उसे हथियाना चाहते थे। एक बार शहद लेने के बहाने जो उसी के मकान के बाहर दुकान पर गया

तो दुकानदार ने बताया—यह स्वामी जो बीमार पड़ा है, इसने बहुत दिन हुए इस औरत को रख लिया था । यह भंगिन या ऐसी ही किसी नीच जात की है । इससे एक लड़की हुई जो अब मर गई है । उसके बड़े होने पर इसको निकालकर उसे रखा, यह लड़का उसी से है । लड़की मर गई । अब वह पहली फिर आ गई है । यहाँ से निकलकर वह एक और साधु के पास रही । उस साधु की सारी सम्पत्ति भी इसके नाम है । अब ये दोनों चाहते हैं कि सारी जायदाद यह बूढ़ा इन दोनों के नाम कर दे । वह कर नहीं रहा । यह साधुओं के अखाड़े को देना चाहता है । अखाड़े वालों से अभी तक कोई जवाब नहीं मिला है ।

"क्यों अखाड़े वाले तो ले सकते हैं ।"

"कुछ चाहते हैं ले लें, कुछ इसके खिलाफ हैं । बड़े महन्त इसके खिलाफ हैं । यही छीना-झपटी है । तुम यहाँ कैसे आ गए ?"

"मुझे साधु की देख-भाल के लिए नौकर रखा गया है ।"

"कैसी देख-भाल ?"

"यही सफाई रखना, दवा देना ।"

दुकानदार ने कहा, "अरे, तुम यहाँ से भाग जाओ । इसे बहुत भयंकर बीमारी है । तुम्हें भी लग सकती है । यही वजह है ये दोनों और दूसरा कोई भी उसके पास नहीं जाता । पड़ोसियों ने रिपोर्ट की है, शायद कोई आकर अस्पताल ले जाय ।"

मैंने सुना तो सन्न रह गया । मुझे देर तक चुप बैठा देखकर उसने पूछा, "क्या सलाह है ?"

"कुछ नहीं ।"

"हो सकता है तुम सेवा करो तो तुम्हारे नाम कर जाय । पर बड़ा घुटा हुआ है । यह सारी जायदाद इसने माँगकर इकट्ठी की है । और यही दो औरतें नहीं हैं, और भी हैं जिनसे इसका सम्बन्ध रहा है । बिना लाइसेंस सुल्फा, गाँजा बेचता रहा है ।" वह और भी बहुत कुछ कहता रहा । आठ-दस घंटे के भीतर ही मुझे इस जगह की स्थिति मालूम हो गई । रात को लड़के ने गाली देते हुए आकर उससे कहा, "अगर कल वकील के आने पर दस्तखत नहीं किये तो शाम

तक गला घोटकर मार डालूँगा। समझ क्या रखा है तूने ? कल से खाना, दवा-दारू बन्द। समझा, कान खोलकर सुन ले। इसके बाद औरत ने आकर उसे फिर समझाया। स्वामी ने कोई जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप पड़ा कराहता रहा।

मैं जब-तब उठकर उसे देखता, दवा देता। नंगा होने पर ढक देता। औरत काफी रात तक दूर बैठी-बैठी उसे समझाती रही। कभी लड़के की ओर से धमकी देती, कभी खुद लड़ती। उस औरत के चेहरे पर झुर्रियाँ थीं। गाल भी पिचक गए थे, ठिगना कद, मझोला शरीर, गेहुँआँ रंग ! ध्यान से देखकर कहा जा सकता है कि जवानी में वह साधारण किस्म की औरत रही होगी। आँखों में अब भी काजल था। मामूली-सी धोती पहने और वैसी ही बंडी। पैर बड़े-बड़े गोल ऊँट के जैसे गद्दीदार ! हाथों में हरी चूड़ियाँ ! एक हाथ में सोने का कड़ा ! दूसरा हाथ चाँदी के गहनों से भरा। ओंठ लटके हुए लेटर बाक्स जैसा मुँह। ठोढ़ी नीचे से दबी हुई जैसे कम्प्रेशर में किसी ने सारे मुँह को दबा दिया हो। देखने में अजब बेतुकी-सी औरत थी वह। लड़का भी कोई खूबसूरत नहीं था। अठारह-उन्नीस साल की उम्र का, एक दम लम्बा, हाथ-पैर फैले, शरीर बेडौल ! लगता था जैसे कद एकदम बढ़ गया है जगह बना रहा है।

मैं औरत के जाने के बाद काफी देर तक बैठा रहा। बीमार अब भी जाग रहा था। कभी थोड़ी देर को सो जाता फिर कराहता। पास ही लालटेन जल रही थी, रोशनी और सूनेपन के कारण उसके पास जाते हुए डर लगता था। फिर भी साहस करके मैं उसका काम करता रहा। इसी समय एकदम बदबू आई। मालूम हुआ उसने पाखाना कर दिया है। और कोई पास नहीं था। सारा कमरा बदबू से भर गया। मैंने सामने कमरे में सोती औरत को जगाया तो बोली, "पड़ा रहने दे। सबेरे देखा जायगा। मरने दे। तू बरामदे में आकर सो जा। बाहर से खाट ले ले।"

मैं खड़ा रहा। पानी भी पास नहीं था। आँगन के नलके से काम चलना मुश्किल था। बर्तन वह औरत भीतर बन्द करके सो रही थी। कभी जी में आता छोड़कर चला जाऊँ। बदबू के मारे भीतर बैठना मुश्किल था। मैं बाहर बरामदे

मैं खाट पर लेट गया। भीतर वह कराह रहा था। मुझे लगा जैसे इस व्यक्ति के सारे पाप रोग के रूप में प्रकट हो उठे हैं। बीभत्स, घृणित जीवन जैसे प्रति-मूर्त हो उठा है। फिर भी उसके भीतर का राक्षस रोग की सीमाओं को तोड़ डालने के लिए छटपटा रहा है। इतना होते हुए भी उसके मुंह पर न कोई प्रायश्चित्त के चिह्न हैं न पश्चात्ताप के आँसू। यदि अब भी जी उठे, तो शायद वही करे जो अब तक करता रहा है। मुझे लगा जैसे किसी भयंकर अपराधी को गरम लोहे की जंजीरों में जकड़ रखा है; उसी से छूटने के लिए वह छटपटा रहा है। शायद उसे विश्वास है वह जी उठेगा और अभी उसे बहुत कुछ करना है।

वह खकारा तो लगा जैसे उठकर बैठ गया है। इच्छा हुई जाकर देखूँ, लेकिन डर रहा था। काली रात सांय-सांय कर रही थी। मैं लेटा रहा। चादर मैंने अपने ऊपर डाल ली। थोड़ी देर बाद मुझे लगा जैसे कमरे में कोई चल रहा है। यह क्या, क्या यह मर गया। उसका मुर्दा है जो उठकर कमरे में टहल रहा है? मेरा सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। मैंने आँखें बन्द कर लीं। तो क्या सचमुच वह चल रहा है? मुश्किल से बीस फुट का फासला होगा उस कमरे और बरामदे में। चलने की आहट साफ सुनाई दे रही थी। मैंने मान लिया, निश्चय ही वह मर गया है और शरीर में हवा भरने पर उसका मुर्दा चल रहा है। डर के मारे मेरे होश बिगड़ रहे थे। गला सूख रहा था। सारी देह थर-थर काँपने लगी। क्या करूँ? कहाँ भाग जाऊँ? मुझे लगा जैसे घिग्घी बँध रही है। मैं रोम-रोम से, अणु-अणु से उसकी आवाज़ सुन रहा हूँ। दीवार होते हुए भी मुझे सब दिखाई दे रहा है। जैसे वह मेरी ओर ही बढ़ा आ रहा है।

मैं नहीं कह सकता वह स्वप्न था या सत्य। मुझे दिखाई दिया वह बीमार पेड़ की तरह लम्बा कंकाल-सा विकराल मुँह निकाले हँस रहा है। उसकी उँगलियाँ बबूल की डाल की तरह पतली, काँटों की तरह नुकीली हैं जो मिट्टी खोदने की गैंती की तरह फैली हैं। वही कपड़े, वही लिबास, सिर गेरुए कपड़े से ढका है। आँखों में जैसे मशाल जल रही है। क्रोध से उसके जबड़े फैल गए हैं, वह डगमगा रहा है। गिरता है, फिर उठता है। बढ़ रहा है। अब एक नहीं

कई हो गए हैं। जैसे हर कोने से वही निकल रहे हैं। मैं दालान में खड़ा हूँ। पीछे हट रहा हूँ। अब एक दम वे काले रंग के हो गये हैं, कद उनका बढ़ गया है। शकल और भयावनी हो गई है। पहले से तेज चल रहे हैं। रात और काली होती जाती है। वर्षा हो रही है। बिजली कड़कने लगी है। उसी की रोशनी में वे मूर्तियाँ जैसे चारों ओर से मुझे घेर रही हैं। हाथ उनके फैल रहे हैं। मैं काँप रहा हूँ, थर-थर काँपकर पीछे हट रहा हूँ। लेकिन वे अब बहुत पास आ गए हैं। मेरी आवाज नहीं निकलती जैसे किसी ने मेरा गला दबा दिया है। फिर मुझे लगा, मेरे पीछे की दीवार हट रही है। मैं उसी के साथ पीछे हट रहा हूँ। उसी चाल से वे भी पास आते जारहे हैं। अब दीवार हटने पर पीछे एक पहाड़ आ गया है। मैं उस पर चढ़ रहा हूँ। ठोकर मुझे लगती है, मैं गिर पड़ता हूँ और वे अब और पास आ गए हैं। अब वे और भी भयंकर हैं, और भी खूँखार। अब उनके मुँह और भी चौड़े हो गए हैं। उनके हाथ और भी बड़े हो गए हैं। उनकी टाँगें और भी लम्बी हो गई हैं। अब चार फुट, अब दो फुट, अब एक फुट, अब और भी पास! मैं फिर भी पीछे हट रहा हूँ। मैं उड़ना चाहता हूँ, उड़ता हूँ, फिर भी बहुत दूर नहीं है। भागना चाहता हूँ पर भाग नहीं पाता हूँ। इसी समय उन सब के हाथों ने मुझे छू लिया है, पकड़ने जा रहे हैं। पकड़ रहे हैं। मैं अब पीछे नहीं हट पाता। मुझे उन सबने पकड़ लिया। मैं चिल्ला रहा हूँ। चिल्लाता जा रहा हूँ। कोई नहीं सुन रहा है। कोई भी नहीं है जो मुझे बचाये। मैं पुकार रहा हूँ। पुकार रहा हूँ। जैसे मुझे उन्होंने पकड़ लिया है। और लोहे से कड़े हाथों से रुई के गाले की तरह मेरे सारे शरीर को दबा रहे हैं, निचोड़ रहे हैं। मेरा दम घुटने लगा है। मैं मर रहा हूँ।

बहुत देर तक न जाने क्या हुआ। मुझे अचानक लगा मैं खाट पर पड़ा काँप रहा हूँ। मुझे सरदी लग रही है। कहीं भी कुछ नहीं है। सामने वैसा ही दिया जल रहा है। शायद बीमार वैसे ही लेटा है। अब उसके चलने की आहट बन्द हो गई है। डर मुझे अब भी लग रहा था। सारा भीतर काँप रहा था। अब थोड़ी चाँदनी निकल आई थी। सब साफ दिखाई दे रहा था। मैं वहाँ किसी तरह भी नहीं बैठ सका और चादर ओढ़कर बाहर निकल आया। वह

दुकानदार दुकान के बरामदे में खाट बिछाए सो रहा था। आहट पाकर जाग गया। पहले वह डरा। फिर मेरे खखारने पर उठ बैठा। मुझे देखकर बोला—"क्या बात है ? मर गया क्या ?"

"कुछ नहीं, अच्छा नहीं लग रहा है भीतर।"

"चिलम पियो।"

"मैं चिलम नहीं पीता।"

"बड़ा दुष्ट आदमी है। बड़े-बड़े कुकरम किये हैं इसने। ऐसे थोड़े ही मरेगा। पूरा राच्छस है।" मैं एक कोने में बैठ गया। थोड़ी देर उसी की बातें करते-करते सो गया। रात अब भी काफी थी। मैं थोड़ी देर बैठा रहा जैसे मेरे दिमाग में वह नजारा घूम रहा हो। आँखें मींचने पर लगता जैसे वही नर-कंकाल दरवाजे से मेरी ओर आ रहा है। इसी समय कुछ दूर चलते राहगीर सुनाई दिये। जब पास आ गए तो मैं भी उनके पीछे हो लिया। वे गंगा-स्नान करने जा रहे थे। मैं घाट पर जाकर टीका लगाने वालों की छतरी में लेट गया। सबेरे उन्हीं में से एक ने उठाया।

इन पिछले दिनों जो देखा, जो सुना उससे मुझे लग रहा है कि हम लोग आदमी के बढ़े हुए नाखून की तरह बेकार हैं जो केवल समाज को नोचते हैं। कौनसा बुरा काम है जो यहाँ नहीं होता, हत्या, गर्भ-पात, व्यभिचार सभी के अड्डे हैं इनमें। पिछले दिनों पुलिस ने छापा मारकर एक ऐसी जगह का पता लगाया जहाँ बाहर से आई गर्भवती स्त्रियों के अवैध गर्भ गिराए जाते थे। क्लिनिक के रूप में दिखावे के तौर पर वहाँ बीमारों का इलाज होता था। लेकिन गर्भ गिराने का काम ही असली काम था। पुलिस ने छापा मारकर देखा कि तहखाने में पचासों सद्योजात शिशुओं के कंकाल सड़ रहे थे। बाहर से भगाई हुई औरतों को वहीं बन्दी कर दिया जाता था। यथासमय वे रात को जहाँ-तहाँ पहुँचाई जाती थीं। शराब ऐसे चलती है जैसे नहर बहती हो और भी बहुत कुछ देखा। शिवानन्द, यह सब देखकर मुझे ऐसा लगता है कि हमारे समाज के सुधारक, धर्म के प्रवर्तक, मर्यादा के रक्षक यह लोग अपने आप तो डूबे ही हैं सारे देश को ले डूबेंगे। चरित्र नाम की चीज तो ढूँढे नहीं मिलेगी, आत्म-ज्ञान कल्पना है, ईश्वर-भक्ति

ढोंग । कथा-वार्ता आडम्बर । यही मैं सोचता रहता हूँ । जी चाहता है खुलकर विद्रोह करूँ । कुछ समझ में नहीं आता । मैं जो पाने आया था वह मुझे नहीं मिल रहा है । वह कहीं नहीं है । कुछ भी नहीं है । सब ओर दिखावा है, छूँछा है, हीन है, गिरा हुआ है, स्पष्ट है ।' बोलते-बोलते उसका गला रुक गया । आवाज बैठ गई । लग रहा था जैसे वह अपने होश में नहीं है ।

शिवानन्द ने उसके कंधे पर हाथ रखा और धीरे से बोला, "तुम ठीक कहते हो । निश्चय ही ऐसे लोग बहुत हैं जिन्होंने इस रूप को विकृत कर दिया है, इस वेश को लांछित किया है । फिर भी कुछ ऐसे भी लोग तुम्हें मिलेंगे जिनके कारण आज भी देश का गौरव बढ़ रहा है । जो आज भी अपने ज्ञान के द्वारा लोगों में शान्ति, वास्तविक सुख फैला रहे हैं ।"

"शायद ऐसे दाल में नमक के बराबर भी नहीं हैं ।"

"हैं तो सही ।"

"मैं जानता हूँ । इसी बीच में एक-दो ऐसे लोगों से भी मिला हूँ जिनको देखकर श्रद्धा होती है । पर बुराई की बात कहने पर जब तुम कुछ अच्छे लोगों की बात कहते हो तो स्पष्ट ही हम वास्तविकता से मुँह मोड़ लेना चाहते हैं, शिवानन्द ! यही हमारा दोष है, हमारी कमजोरी है ।"

वह चुप हो गया ।

"तुम्हें मालूम है हर चीज की नकल होती है । नकली मोती, नकली हीरा, क्या नहीं बनता ! असली-नकली में भेद सीखो कमल । खैर, मैं तुम्हें एक आश्रम में ले चलूँगा जहाँ सचमुच एक महात्मा रहते हैं । वीतराग संन्यासी । उनसे मिलकर तुम्हें खुशी होगी । मैं स्वयं अपने आश्रम से ऊब गया हूँ । स्वामीजी सिवा मकान बनाने, वैभव बढ़ाने के और कुछ नहीं करना चाहते । यह यात्री जिसे मैं अभी कल आश्रम में चलने के लिए कह आया हूँ इसे स्वामीजी इसलिए बुलाना चाहते हैं कि वह दो-एक कमरे और बनवा दे, कुछ रुपया स्वामीजी के नाम बैंक में जमा करा दे । यही होगा भी । जब से तुम आश्रम छोड़कर आए हो तभी से मुझे ऐसा लग रहा है कि सचमुच मेरा जीवन निकम्मा हो रहा है । मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूँ । मेरा मन भी विद्रोह करता है, लेकिन क्या करूँ ।

पड़ा हूँ। तुम कोई आश्रम खोलो तो मैं वहीं आ जाऊँगा।

कमल हँसा। बोला, "फिर हम भी ऐसा आश्रम खोलकर लोगों को फँसाएँ, क्यों?"

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है।"

उस समय पत्ने के कटोरे में रखे गरम काढ़े पर धुएँ की तरह अँधेरे की लहर ऋषिकेश पर छा रही थी। गंगा के तटवर्ती पर्वतों की लम्बी कतार पर काली चादर बिछ गई थी। काली रजाई ओढ़े सोती हुई किसी युवती की तरह गंगा भीतर-ही-भीतर कुसमुसा रही थी। दूर मायाकुण्ड के पत्थरों से रगड़ खाती गंगा की बहती धारा झगड़ालू औरत की तरह चिल्ला रही थी। पश्चिम की तरफ बसे ऋषिकेश के मन्दिर आरती के घण्टों से गूँज उठे थे।

बहुत देर तक दोनों चुप होकर सोचते रहे। अचानक कमल बोल उठा, "यहाँ के इस रूप ने जहाँ मुझे पागल कर दिया है शिवानन्द, वहाँ आज मुझ में एक नया जीवन उगता दिखाई दे रहा है। मेरे भीतर एक ज्योति जाग उठी है। मुझे लगता है समाज के ये बन्धन, जो हमें जकड़ रहे हैं व्यर्थ हैं। इनकी मर्यादाएँ छूँछी और बेजड़ हैं। बहुत कुछ धर्म एक दिखावा, आडम्बर है, छल है, अप्राकृतिक है। सहज स्वभाव से बढ़ते हुए जीवन की जड़ों को इसने खोखला कर डाला है। ईश्वर का कोई आकार नहीं है। धर्म का कोई एक निश्चित मार्ग नहीं है। सामाजिकता का कोई एक रूप नहीं है। सब बेकार है। सब इस प्रकार के विचार भुलावे में डालने वाले हैं। मैं किसी को नहीं मानता, अपने को मानता हूँ। मनुष्य को मानता हूँ। जीवन में विश्वास करता हूँ। जीवन ही सत्य है। जीवन ही श्रेष्ठ है। मनुष्य ही धर्म है, मनुष्य ही ईश्वर। यही सहज है, यही स्वाभाविक। तुम कहोगे मैं द्रोही हो उठा हूँ। नहीं, यह बात नहीं है सहज स्वाभाविक ज्ञान द्रोह नहीं हैं, द्रोह है अस्वाभाविकता, कृत्रिमता।"

कमल इसी प्रकार बोलता रहा। शिवानन्द का ध्यान किसी और तरफ था। वह सुनते हुए भी कुछ नहीं सुन पा रहा था। उसे लग रहा था, कमल व्यर्थ होते हुए भी सही है, उसकी दृष्टि में देखने का एक नयापन है, जबकि मैं ठीक जगह होते हुए भी निकम्मा हूँ। जैसे मेरी दृष्टि में जीवन की कोई दिशा नहीं

है, कोई लक्ष्य नहीं है। व्यक्ति का वैशिष्ट्य नहीं है। व्यक्ति उसी समय व्यक्ति है जब वह समाज से ऊपर उठकर सोचता है। समाज की 'रट' से बाहर आ कर अपने को उसमें मिला नहीं देता। वैसे समाज भी क्या है ? एक प्रकार के लोगों का गिरोह, जो एक ही ढंग से सोचते हैं, एक ही सीमा में बँधकर चलते हैं, एक ही लक्ष्य रखते हैं। मैं भी उन हजारों में एक हूँ। एक ही पथ का पथिक। वह उद्विग्न हो उठा।

कमल के भीतर अपने व्यक्तित्व की लहर उठ रही थी। उसे लग रहा था रात के अँधेरे की तरह सारा संसार अज्ञान से घिरा हुआ है। लोगों को अपने भीतर के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं देता। जैसे चारों ओर के अपने स्वार्थी वातावरण के अलावा बाहर की दुनिया का कोई रूप उनके सामने स्पष्ट नहीं है। एक अनाहूत, अदृश्य जंजीर से सब जकड़ा है। सीमा के भीतर आ जाने वाली वस्तु भी उनके संस्कारों की दृष्टि से विविध रंग की दिखाई देती है। जैसे मनुष्य दिन भर इधर घूमकर रात को अपने मकान में लौट आता है, उसी बन्द चहार-दीवारी में सुख का, सन्तोष का अनुभव करता है, ठीक इसी तरह मनुष्य की संकुचित सीमाएँ उसे मुक्त आकाश में स्वच्छन्द विचरणशील अनन्त आनन्द का अनुभव नहीं करने देतीं। कितनी संकुचित है मनुष्य की दृष्टि, कितना छोटा है उसका ज्ञान ! अपने अन्त के आवेगों से खिचा वह बह रहा है। उसी में समझता है उसने प्राप्य पा लिया। ध्येय उसका केवल अपनी इच्छा-पूर्ति है, अपना स्वार्थ साधन है। 'स्वार्थ' यह शब्द उसके मस्तक में घहराने लगा। उसे लगा 'स्वार्थ' मनुष्य की सबसे बड़ी कमज़ोर एवं सबल कामना है। ओः, इसने जीवन के उदात्त रूप को कितना विकृत, कितना सीमित बना दिया है। कितना विकृत हो गया है मनुष्य, कितना बीभत्स।

वह जैसे अपने से बेचैन हो उठा। अपने ऊपर भी ग्लानि हुई। मानने लगा कि वह शरीर को फाड़कर अपने को मुक्त कर पाता। शरीर का बन्धन भी उसे असह्य हो उठा। चाहने लगा विचारों की तरह उसकी चेतना मुक्त होकर विचरती, बिना किसी रुकावट के। यही सब वह सोचता रहा। निर्बन्ध क्षोभ में आकर उसने चादर फेंक दी। कुरता फाड़ डाला। शिवानन्द उसे देखता रहा।

कहा उसने कुछ भी नहीं। उसे कमल को देखकर न कौतुक हुआ न हैरानी। कमल अब चुपचाप खड़ा सामने गंगा की धारा को देख रहा था। यद्यपि अँधेरे के कारण कुछ भी स्पष्ट नहीं था। फिर भी कमल को लगा जैसे अँधेरा कृत्रिम है, उसे उसके पार भी बहुत कुछ दिखाई दे रहा है।

कमल पिछले दिनों से अपने भीतर, शरीर के प्रति विरक्ति पा रहा था। पागल की तरह घूमते रहने और सब कुछ देखने पर भी उसे कुछ नहीं दिखाई देता था। निःसंग आत्म-भाव से वह या तो घूमता रहता या कहीं बैठकर अनासक्त हो जाता। उसके पैर कहाँ जा रहे हैं, वह कहाँ चल रहा है इस पर वह कभी ध्यान न देता। चला है तो चला जा रहा है। बैठा है तो बैठा है। किसी ने खाना दे दिया तो खा लिया। अचानक उस दिन भूख लगने पर जो एक यात्री ने सामान ले चलने के लिए कहा, तो सामान उठाकर चल दिया। उसके बाद जो उसने दे दिया बिना हीलो-हुज्जत के लेकर चल दिया और पूछने पर बहुत दिनों से इकट्ठी हृदय की भड़ास शिवानन्द के सामने खोलकर रख दी, ऐसी सिलसिलेवार जैसे किताब से पढ़ रहा है। वह शायद बहुत दिनों बाद इतना मुखर हुआ, जैसे दबी हुई आग वायु पाकर भड़क उठी हो।

उस समय बिलकुल एकान्त हो गया था। लोग उठकर चल दिए थे। शिवानन्द भी जाना चाहता था। उसने निश्चय कर लिया था वह आश्रम को शीघ्र ही छोड़कर लौट आवेगा। कहाँ जायगा, क्या करेगा यह कुछ सोचा नहीं था। लेकिन वह वहाँ नहीं रहेगा। कमल के साथ रहेगा, यह भी वह नहीं जान पा सका था। कमल अब भी खड़ा था। आत्म बेसुध-सा।

इसी समय दूर 'कमल, कमल' पुकारती यशोदा आई। कमल ने सुना तो उत्तर नहीं दिया। शिवानन्द ने जवाब दिया तो वह वहीं आ गई। शिवानन्द स्वयं नहीं जानता था यह कौन है?

यशोदा ने पास आकर कमल को देखा तो बोली, "क्या करता है रे? दो घण्टे से ढूँढ़ रही हूँ। तुम··· ?"

'मैं शिवानन्द हूँ इसका साथी ?"

पास जाकर उसने कमल को देखा तो बोली, "नंगा खड़ा है। सरदी लग

जायगी।" इतना कहकर उसने कमल को फटा कुरता पहनाया, चादर कन्धे पर ओढ़ा दी। बोली, "चल। कुरता भी फाड़ लिया।"

कमल को जैसे चेतना हुई। वह बिना बोले खड़ा रहा।

"चल न !"

"कहाँ ?"

"घर, और कहाँ ?"

"मेरा घर नहीं है, तू जा !"

"फिर कहाँ जायगा, कहाँ काटेगा रात, ऐसे ही कम सरदी नहीं है। फिर ठण्डी रात सिर पर घहरा रही है। न जाने कहाँ-कहाँ घूमता-फिरता है पागल की तरह।" उसने शिवानन्द से कहा, "तुम्हीं समझाओ न इसे। मैं क्या इससे कुछ कहती हूँ ? लेकिन मुझसे देखा नहीं जाता। दिन-भर इधर-उधर मारा-मारा फिरता है ! न खाने का ठीक न पहनने का, न रहने का ठिकाना न सोने का। भला, ऐसे कब तक चल सकता है, तुम्हीं बताओ ?" यशोदा ने शिवानन्द की ओर देखते हुए कहा। फिर बोली, "उस दिन जब सिपाही मुझे पकड़कर ले गए थे यही था जिसने मुझे बचाया। साधु को पकड़वाने में इसने पुलिस की मदद की। वह बदमाश टिहरी के जंगलों में भागता मिला। बड़ा दुष्ट था वह ! न जाने कैसे-कैसे लोग हैं यहाँ !"

शिवानन्द की कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। वह भौंचक खड़ा सुनता रहा। पूछा उसने कुछ भी नहीं। यशोदा ने कमल का हाथ पकड़कर कहा, "चल, चल न !"

कमल चल दिया बिना कुछ कहे।

तीनों पथरीला मैदान पार करके ऊपर के बाजार की गली के मकान में पहुँचे। मकान बहुत मामूली था। दो छोटे-छोटे कमरे, जरा-सा आँगन। एक तरफ टट्टी, बस। कमरों का फर्श टूटा हुआ। दीवारों से चूना उधड़ रहा था। कमरों के सामने बरामदा था। यहीं यशोदा रोटी बनाती थी। दो-तीन बर्तन और पास एक चूल्हा। लालटेन जल रही थी। कमरों में न खाट थी न सामान। बीच में एक कम्बल बिछा था, उसी पर दोनों बैठ गए। एक कोने

में यशोदा बैठी। "हाथ-मुँह धो ले, मैं खाना लाती हूँ। तुम भी खाओगे ?" उसने शिवानन्द से पूछा।

शिवानन्द भूखा था बोला, "खा लूंगा।"

यशोदा ने दोनों की पत्तल बनाकर उस पर खाना परोस दिया और कुल्हड़ में पानी रख दिया। कमल बिना कहे खाने लगा। शिवानन्द ने देखा कि यशोदा ने जितना खाना बनाया उसमें कुछ भी नहीं बचा। फिर भी वह खुश थी। पानी पीकर वहीं आ बैठी। यशोदा ने अपनी कहानी सुनाई कि किस तरह दो आदमी बेहोश करके उसे भगाये लिये जा रहे थे, किस तरह बेहोशी में उन्होंने गहने उतारे। वह जागी। चिल्लाई, चीखी, और पुलिस उसके साथ इसे भी पकड़ ले गई। चोर भी पकड़ा गया। कमल लड़ा तो उसे भी पीटा। कमल ने उसे चोरों से बचाया, पुलिस से बचाया। बड़ी मुश्किल से थोड़ा सा गहना मिला। उस वखत यह न होता तो······। यहाँ आकर वह अटक गई जैसे भयंकर सपना देखा हो। 'नहीं तो······।'

"नहीं तो क्या ?" शिवानन्द पूछ बैठा।

"मैं ही जानती हूँ मेरी क्या दुर्दशा होती। बिना आदमी के सहारे पुलिस वाले भी खा जाने को तैयार रहते हैं। बड़ी मुश्किल से गहना मिला। उसमें से तीन गहने तो उन्होंने रख ही लिए। कमल मेरी तरफ से न लड़ता तो क्या कुछ भी मुझे मिलता ?"

"तुम्हारे पति ?"

"पति निकम्मा है, नपुंसक है। बुज़दिल है। वह मुझसे कई बार कह चुका था कि मैं उसका पीछा छोड़कर कहीं चली जाऊँ, कहीं भाग जाऊँ। वह मुझे ऋषिकेश इसीलिए लाया था जिससे वह बदनामी से बच जाय और जाकर कह दे कि यशोदा ऋषिकेश में मर गई। उसी ने शायद उस आदमी को फुसलाया। वह चाहता था गहने के बहाने आदमी मुझे कहीं ले जाकर मार डाले। दिन में बदरीनारायण चलने के लिए उसने मुझसे कहा था। और रात को यह हो गया। एक रात में ही कितनी दुनियाँ बदल गई! कल की रानी आज भिखारिन बन गई।"

"तुम्हारा पति आखिर तुम से इतना नाराज क्यों था ?"

"यह भी एक लम्बी कहानी है।" उसने आह भरी और चुप हो रही।

"तुमने खाया नहीं।"

"मुझे भूख नहीं थी। कमल, मुझे लगता है बहुत भला आदमी है। मैं इतना जानती हूँ कि इससे मुझे नुकसान नहीं पहुँच सकता।" कहकर वह कमल की तरफ देखने लगी। वह खाकर लेट गया था। उसकी आँखें बन्द थीं। वह उसके पास सरककर बैठ गई।

"मैं अभी आया." कहकर शिवानन्द बाहर चला गया।

यशोदा कमल के पास बैठी रही, जैसे बीमार की देखभाल कर रही हो। उसने उसका शरीर चादर से ढक दिया। फिर सरदी बढ़ रही थी। हवा के झोंके आ रहे थे। वह दरवाजा भिड़ाकर वहीं बैठ गई। थोड़ी देर में शिवानन्द दूध का कुल्हड़ और मिठाई लेकर आ गया।

"लो, भूखे रहना ठीक नहीं है।"

"अरे, यह क्या किया, मुझे क्या भूख थी ?" वह खिलखिलाकर हँसी।

"मैं जानता हूँ तुमने कुछ भी खाया नहीं है। तुम्हारे हिस्से का मैंने खा लिया था न ?"

यशोदा कुछ न बोली। थोड़ी देर बाद शिवानन्द बोला, "मैं जाता हूँ, सवेरे आऊँगा।" यशोदा को उसका कोई परिचय नहीं मिला था। वह नहीं जानती थी यह कौन है, कमल से इसकी कैसी जान-पहचान है। उसने वह सब कुछ नहीं पूछा। उसके जाने की बात कहने पर 'अच्छा' कह दिया।

सवेरे जब कमल उठकर बाहर जाने लगा तो यशोदा सामने आकर खड़ी हो गई।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"अब जाऊँ न।"

"मेरी एक बात मानोगे ?"

"क्या ?"

"खाने और सोने के वक्त यहाँ आ जाया करो। बस !"

"यह नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"मेरा कुछ भी ठीक नहीं है। कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ !"

यशोदा कुछ भी न बोली। चुपचाप खड़ी रही। कमल जैसे भीतर-ही-भीतर कुछ सोच रहा हो। उसने जैसे ही चलते हुए निगाह उठाकर देखा तो पाया कि यशोदा की आँखों से बड़ी बूँदों में आँसू बह रहे हैं। वह ठिठक गया और यशोदा की ओर देखता रहा। मुँह पर विवशता के चिन्ह। यशोदा को लग रहा था कि इस सारे संसार में वह अकेली है। कहीं भी उसका कोई नहीं है। पुलिस के शिकंजे से छूटने पर उसने सब जगह निगाह उठाकर देखा कि अब उसके लिए कहीं भी कोई दरवाजा खुला नहीं है। उसे कमल ही ऐसा व्यक्ति दिखाई पड़ा जहाँ उसकी चेतना एक सहारा पा सकती थी। वैसे इसी बीच ऐसे आदमी मिले जो उसका सब कुछ लूटने को तैयार थे, यौवन, धन सभी कुछ। कमल निस्पृह बेलौस आदमी मिला। जब कमल की ही सहायता से उसे यह घर मिला और उसने कुछ दिन ऋषिकेश में बिताने का इरादा किया तब भी यही एक व्यक्ति दिखाई दिया जो उसे सहारा दे सकता था। उसे अपने भीतर राग-रंग से घृणा थी। इसीलिए शुरू से ही हर आदमी उसे नर-पशु दिखाई देता था। कमल का व्यक्तित्व इससे अलग था। कमल ने एक बार भी किसी और निगाह से उसे नहीं देखा। यशोदा भी यही चाहती थी। उसने समझ लिया कमल के पास वह सुरक्षित है। किन्तु परवशता, आत्मीयता, एक ऐसा भाव जो स्त्री के जी में सदा जागता है उसी के वश होकर वह चाहने लगी कि वह उसकी होकर रहे। वही उसका सहारा बने। वह रोज खाना बनाकर कमल की प्रतीक्षा करती। जब वह न आता तो उसे ढूँढ़ने जाती और पकड़कर ले आती। उसे खाना खिलाती। बस, इतना ही चाहती थी वह।

यशोदा के पास कुछ रुपया-गहना था। वह उसने लकड़ी के ढेर के नीचे ज़मीन में गाढ़ दिया। रात में उसने सोचा सवेरे कमल के लिये कम्बल खरीद लावेगी। रात भी वह जाड़े में ठिठुरता रहा है। रजाई की बात भी उसके दिमाग में थी। उसके पास एक ही कम्बल था, जब आधी रात को यशोदा कमल को

सोता देखने आई तो उसने न जाने क्यों अपना कम्बल उसके ऊपर डाल दिया और वह कई धोतियाँ मिलाकर ओढ़े पड़ी रही। सबेरे कमल ने देखा, तो उठकर चुपचाप कम्बल यशोदा के कमरे में रख आया। उसके हृदय में यशोदा के प्रति कोई भाव नहीं था। न उसने कुछ सोचा न सोचना चाहा। उसे लग रहा था, यशोदा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। चलते-चलते जो व्यक्ति किसी के साथ सहज भाव से उपकार कर सकता है, वही उसने किया है। उसने यशोदा के सौन्दर्य, उसके यौवन पर भी ध्यान नहीं दिया था। और कोई समय होता तो शायद वह सोचता, किन्तु इन पिछले दिनों साधुओं के प्रश्न के कारण उसकी मानसिक स्थिति बिगड़ गई थी। वह पागल-सा भहराया फिरता। हर साधु को देखकर उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता। वह बौखला उठता। उसकी उग्र इच्छा होती यदि उसका बश चले तो वह इन साधुओं का क्षेत्रों में खाना बन्द कर दे, उन्हें फिर से समाज का आवश्यक अंग बना दे। वह दिन में दस बजे के लगभग हजारों मलंग साधुओं को रोटी, दाल, साग वगैरह कमंडलु में भरकर ले जाते देखता। उन साधुओं में बहुत से मूर्ख, जाहिल, अपढ़ होते। ईश्वर का ध्यान, जप-तप जैसे उनके लिए दिखावा था। वह देखता, लम्बे-चौड़े बलिष्ठ, जटाधारी, मुँडे हुए इन साधुओं को न कोई चिन्ता है न काम। हँसते, बातें करते, गाली देते साधु आते और क्षेत्रों से रोटी ले जाते हुए यदि किसी यात्री को रास्ते में देखते तो मिठाई की दुकान से मिठाई, दही दिलवाने की बात कहते। फिर वे बेफिक्री से हाथी की तरह चलते ओझल हो जाते। यही वह देखता। कभी-कभी वह जब कुछ न कर पाता तो झुँझला उठता।

एकाध बार उसने सोचा कि उसे इतना बेचैन होने की क्या जरूरत है, वह पागल है, वही कौन अच्छा है, उसने ही क्या कर लिया, कौनसा जीवन का लक्ष्य उसने पा लिया। क्या है वह, एक मूर्ख, दरिद्र, असहाय व्यक्ति! यही सब कहकर अपने को समझाता। थोड़ी देर बाद उसे फिर वही धुन सवार हो जाती।

एक बार एक बड़े व्यक्ति से उसने यह बात की तो वह बोला, "हमारे पास इन सब की फुरसत नहीं है। बहुत से साधु हमारे मित्र हैं। फिर तुम्हारी बात ठीक होते हुए भी यह क्षेत्र हमारा नहीं है। साधु न हों तो ऋषिकेश में क्या

धरा है। हमारी तीन दुकानें हैं, कैसे चलें। आज मेरे पास चार मकान हैं, तीन दुकानें हैं। एक कपड़े की, एक बर्तनों की और एक आढ़त की। साधुओं की बदौलत ही न।"

"मैं यह कब कहता हूँ कि सब खराब हैं।"

"अरे भाई, अच्छे बुरे सभी जगह हैं। हमारे समाज में गृहस्थ ही कौन अच्छे हैं।"

"पर यह तो समाज के भार हैं।"

"भार हैं तो रहें। और भी तो भार हैं। साधुओं का काम साधु जाने।" इसी तरह की बातें कहकर उसने कमल को टाल दिया।

इसके बाद से उसका मन और भी कटु हो गया। उसने धर्मशाला के यात्रियों के सामने ये बातें रखीं तो बहुत देर तक कमल की तरफ देखने के बाद एक ताने से बोला, "इन्हें न दें तो क्या तुम भिखारियों को दें ?"

"मैं कब माँगता हूँ। मैं तो कहता हूँ आप लोग कितना बेकार खर्च करते हैं इनके लिए; इससे इस गरीब देश को क्या लाभ है ? यही रुपया और काम में आ सकता है।"

"सो तो ठीक है। पर हमें कहाँ फुरसत कि हम भला-बुरा देखते फिरें। फिर सब रुपया दूसरे कामों में खर्च भी तो नहीं किया जा सके है। दस लाख कमाया, पाँच हजार दे दिया। पुन्न का पुन्न, नाम का नाम। जाओ काम देखो अपना।" धर्मशाला के मुनीम ने सुना तो उसने गाली देकर उसे बाहर कर दिया। अब वह यही सोचता रहता। भीतर-ही-भीतर अनमना बेचैन रहता।

यशोदा को उस हालत में देखकर जैसे उसका खोया मन चोट खाकर लौटा। वह पास जाकर बोला, "क्या बात है, क्यों रोती है ?"

यशोदा चुप थी। आँसू अब भी बह रहे थे। कमल ने बिना बिचारे उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

"रोने की क्या बात है, रो मत।"

अब आँसुओं का प्रवाह और भी उमड़ पड़ा। उस समय निरन्तर देखने पर उसे लगा, यशोदा को सचमुच कोई दुख है। वह क्या चाहती है ? फिर वह दे

भी क्या सकता है ? इसी का दिया तो वह खा लेता है । उसे अपने ऊपर ग्लानि हुई । वह चाहने लगा क्या वह इसका दुख दूर कर सकता है ? आखिर यह क्यों ठीक समय पर खाना खाने और रात को सोने की बात कहती है ? मैं कौन हूँ इसका ? चेतना का धुँधलापन कुछ साफ हुआ । सनक या पागलपन कुछ देर के लिए दबे । कंधे से हाथ हटाकर वह यशोदा को देखने लगा। उसे लगा, वह किसी तरह भी बुरी नहीं है । बड़ी-बड़ी आँखों में मद-रस झिर रहा है । गेहुँआ रंग होते हुए भी नक्श काफी तीखे और बेधक हैं । उसे कान्ता की याद आई । उसने पाया कान्ता गोरी है, पर इतनी मोहक नहीं है । उसका आकर्षण यौवन से गदराया हुआ था । जब कि यह स्वभाव से सुन्दर है । वह देर तक आँखें गड़ाए यशोदा को देखता रहा ।

फिर कुछ सोचकर बोला, "अच्छा" और चल दिया ।

"आओगे ?"

"हाँ ।"

जैसे ही वह घर से निकला तो शिवानन्द मिल गया । उसने बताया वह उस यात्री को स्वामीजी के आश्रम में ले जा रहा है । शाम को यहीं पास के एक महात्मा के पास चलेंगे ।

"मैं नहीं जाता कहीं भी । बहुत देख लिए साधु-महात्मा ।"

"अरे चल तो, मिलेगा तो प्रसन्न होगा । वे सचमुच साधु हैं । इसी जगह मिलना । भला ।"

कमल ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह घूमता रहा । गंगा के किनारे घाट पर पण्डों और भिखारियों को देखा तो समझा, साधुओं की तरह पण्डे भी निकम्मे हैं । इन्हें भी कोई काम नहीं है । ये गृहस्थ साधु हैं जो कोई काम नहीं करते । इनका भी माँगना-खाना काम है । यात्रियों को बहका-कर उनकी जेब कतरना, झूठ-सच बोलकर पैसे ऐंठना । ओह, देश का कितना अंग बेकार और निकम्मा है । ईश्वर के नाम पर क्या-क्या होता है । तो क्या सचमुच ईश्वर यह सब देखता है ? वह उसी पुरानी उधेड़-बुन में पड़ गया । उसी समय उसने पास ही एक पण्डे को अनाप-सनाप हिन्दी में टूटा-फूटा संकल्प

पढ़कर यात्री से दक्षिणा के लिए झगड़ते सुना। कई लोग यात्री को गंगा-स्नान का महत्त्व, गंगा पर दिये गए दान की महिमा बता रहे थे। जब उसने एक बार थोड़ी दक्षिणा के बाद और कुछ नहीं दिया तो वे दूर हटकर उसे गाली देने लगे। फिर आपस में लड़ने लगे। इसी समय और यात्री आ गए तो वे सब मिल गए, जैसे कुछ भी न हुआ हो। अब गिद्धों और चीलों की तरह वे सब यात्रियों पर टूट रहे थे। कोई कन्धे खींचकर अपनी बात कह रहा था। दूसरा उसके सामने चिल्लाकर बोल रहा था। तीसरा धोती का पल्ला पकड़े उसे धर्म का उपदेश दे रहा था।

इसी समय पास ही बिचरता साधुओं का एक गिरोह आ गया। पण्डों से बचने के बाद साधु कमण्डल में पड़े पैसे हिला-हिलाकर उसकी आत्मा को धर्म का प्रबोधन दे रहे थे, तीर्थ का महत्त्व, साधुओं के तप की बातें कर रहे थे। एक जटाधारी मस्त कह रहा था, "दाता सेठ, खाली हाथ नहीं जाना। महात्मा खड़े हैं इन्हें दे पहले। इधर डाल दे। सरदी लगती है महात्मा को, एक कम्बल का प्रश्न है बाबा। हाँ दाता सेठ, बोल क्या कहता है, भला हो तेरा। देख, गंगाजी पर खाली हाथ नहीं जाना। महात्मा किसी से नहीं माँगते। तुझे देना है वचन पूरा कर, हाँ, दाता सेठ।"

दूसरा कह रहा था, "हाँ, बाबा दे दे साधु को, परमहंस हैं, परमहंस बाबा। ले इधर डाल दे।" उसने पीतल का कमण्डल बढ़ा दिया।

तीसरा कहने लगा, "हाँ हरिश्चन्द्रजी, इधर भी एक संन्यासी खड़े हैं। इनको नहीं भूलना बच्चा। ला, वचन बोलेगे पूरा होगा बच्चा। क्या देखता है डाल दे झोली में।"

इनके पास कपड़े की झोली थी। ऊपर से नीचे तक अल्फी पहने कनफटे जोगी का रूप।

कुछ छीनने-झपटने वाले भी आ गए। एक कह रहा था, "चाय पीनी है, दो आने दे। बड़ा दानी है। देख तेरी परतीच्छा में साधु आये हैं।"

"बाबा, बीड़ी लेनी है। कल से नहीं पी। चाय तो एक धर्मात्मा ने पिला दी।"

"इस महात्मा की तरफ भी ध्यान देना। ये भोजन नहीं करते। अन्न नहीं

खाते। आज बारह साल हो गए हैं। दूध पीना है। केवल यही वचन है।"

"देख, जा मत, देकर जा। बाबा महात्मा-परमहंस साधु हैं, बाबा। बड़ा दानी है। गंगा पर आया है तो दे। ला।"

"एक पैसा! यह क्या, अरे आधा सेर दूध दिला दे। दूध की इच्छा है बाबा। वह सामने दुकान है।"

वह चला तो बहुत दूर तक परमहंस, साधु, महात्मा, संन्यासी कहलाने वाले उसके पीछे हो लिये। जिन्हें नहीं मिला वे कुछ पीछे खड़े कोस रहे थे, "मूंजी है साला।"

"यह क्या देगा, नंगा भूखा।"

'देखो, वह और एक यात्री आ रहा है, कई हैं।"

वही क्रम, वही माँगने के निराले ढंग। कमल देखता रहा। जब सब चले गए तो कुछ वहीं पास बैठकर बीड़ी पीते, चिलम फूंकते कमाई गिनने लगे। एक गंगाजी में पैसे ढूंढ़ रहा था। होते-होते उसे एक अठन्नी मिली तो वह मस्त होकर गंगाजी की जय मनाने लगा। उसे देखकर और भी पानी में घुस गए। इसी समय दो साधु तुरही बजाते हुए आए और उनके पीछे-पीछे साधुओं का एक दल गंगा स्नान को आया। महन्तजी चाँदी की खड़ाऊँ पहने थे। लक-दक गेरुए वेश-भूषा में, उनके पीछे कतार बाँधे साधु-मण्डल आ रहा था। सबके सिर पर जटाएँ। गाती ओढ़े। गले में रुद्राक्ष की मालाएँ। प्रायः सभी स्वस्थ। सेब से लाल। भव्य आकृति कुछ चश्मा लगाए भी थे। मालूम होता था प्रायः सभी पढ़े-लिखे हैं। कमल उत्सुकता से देखने लगा। सबने कपड़े उतारे और गंगा में वस्त्र धोकर स्नान किया। उस समय लगता था भय चिन्ता शायद इनके पास कभी नहीं आई।

निर्द्वन्द्व बढ़े हुए प्रलम्ब शरीर, चौड़ी छाती, विशाल मस्तक। जगत् को तुच्छ समझने वाली बड़ी आँखें। अपने ही शरीर की सेवा करने वाले लम्बे बाहु। हाथी की सूंड की तरह मोटी जाँघें। स्वादु-अन्न खाकर धरती का दलन करने वाले पैर। प्रायः सभी स्थूल दीर्घाकार थे। महंतजी स्नान करके निकले तो दो चेलों ने उनका शरीर पोंछा। एक ने चादर दी उन्होंने कौपीन बाँधकर

अधोवस्त्र कमर में लपेट लिया। चाँदी की खड़ाऊँ पहनकर वे गंगा की प्रार्थना में लग गए। गंगा में दूध का घड़ा चढ़ाया गया। कुछ तैरे, कुछ ने मामूली स्नान किया। कपड़े पहनकर जैसे आये थे वैसे ही थोड़ी देर बाद चले गए। अब तुरही बज रही थी। साधु लोग पीछे-पीछे विजयी की तरह जा रहे थे। कमल बैठा देखता रहा।

कमल ने पाया, इन साधुओं की कई श्रेणियाँ है। कुछ बाजार में यात्रियों से माँगते हैं, और दिन-भर कमाई करके मायाकुण्ड और वसुधारा के बीच मैदान में झोंपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। कुछ के पक्के मकान भी हैं। इनमें अधिकतर वैरागी, तथा ऐसे ही साधारण हैं। कुछ की गृहस्थी भी है। इनसे ऊपर के वर्ग के साधु दूर अखाड़ों, आश्रमों, कुटियो में रहते हैं। इनमें कुछ पढ़े-लिखे भी हैं। सुबह शाम अन्न क्षेत्रों से भोजन पाकर पड़े रहते हैं। इनके कमरे सजे हुए हैं, कपड़े साफ़। तेल चुपड़े कमंडलु-सी चमकती चाँद, शरीर से स्वच्छ, विचारों से अपने-अपने सिद्धान्तों के कट्टर प्रचारक, कट्टर पंथी हैं। जहाँ पाठशालाएँ हैं वहाँ शास्त्रार्थ द्वारा ईश्वर के समर्थन में दिन-रात लगे साधु वेदान्त की चर्चा करते हैं। यात्रियों को संसार की अनित्यता का उपदेश देकर आश्रम के कमरों, अन्न क्षेत्र की व्यवस्था करना और इसी प्रकार की योजना में इनका समय बीतता है।

साधुओं की एक तीसरी श्रेणी है। दूसरे से अधिक सभ्यतापूर्वक व्यवहार करके लोगों को भक्त बनाना, ज्ञान का उपदेश देना इनका काम है। एक तरह से यह ईश्वर-ज्ञान के, संसार की अनित्यता के सिद्ध और चतुर वकील हैं। इन्हें भौतिक वादियों की युक्तियों का भी ज्ञान है और मार्क्स जैसे विचारकों की बातें भी ये लोग अपने ढंग से अपनी प्रवाह शैली में खण्डित कर सकते हैं। स्वामी रामतीर्थ, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस तथा अन्य पहुँचे हुए सिद्ध महात्माओं के तर्क इन्हें याद हैं। उनकी पंक्ति पर पंक्तियाँ, संस्कृत के श्लोक, शंकर के वाक्य, अंग्रेजी के कोटेशन इन्हें याद हैं। व्याख्यान में रस उत्पन्न करना, लोगों को मुग्ध बनाए रखना इनका कौशल है। इनमें कुछ इतने विद्वान हैं कि बात-चीत में उनके शास्त्र ज्ञान, चिन्तन का पता लगता है। अपने विषय के

चतुर, मर्मग्राही, पारदर्शी पण्डित।

धूप ऊपर आती जा रही थी। वह फिर भी बाहर से बेसुध-सा अपने में लीन था। लोग नहा-धोकर चले गए थे। घाट पर बैठने वाले घाटिये तख्तों पर से अपनी चटाइयाँ समेट रहे थे। कुछ चलने की तैयारी में बीड़ी पी रहे थे। साधु-भिखारियों की संख्या कम हो गई थी। कमल को जैसे कुछ ख्याल आया। वह उठा और चल दिया। बाज़ार में दो साँड लड़ रहे थे। कमल फिर भी बिना बचे जा रहा था, जैसे अपने में खोया हो। लोग दुकानों के ऊपर चढ़े तमाशा देख रहे थे कि वे दोनों साँड झपाटे से पीछे हटे, बिलकुल पास आकर टकराने के पहले ही दुकान पर खड़े एक व्यक्ति ने कमल को ऊपर घसीट लिया। वह बाल-बाल बच गया।

"अभी मर जाता।" एक बोला।

"हैं हैं"। कहकर कमल पीछे हट गया।

तब उसे मालूम हुआ सचमुच आज वह मर ही जाता। बचाने पर भी एक लड़की उस लपेट में आ गई। वह बुरी तरह से कुचल गई और हस्पताल ले जाते हुए रास्ते में ही मर गई। जब वह यशोदा के घर पहुँचा तो दिन के तीन बज चुके थे। यशोदा आटा लिए प्रतीक्षा में बैठी थी।

"आ गया कमल। कब से इन्तजार कर रही हूँ।"

"आज एक लड़की दो साँडों की लड़ाई में दबकर मर गई। उसी के साथ श्मशान तक गया था।"

"कोई जान-पहचान थी ?"

"जान-पहचान, वह तो नहीं थी।"

"फिर ?"

"ऐसे ही चला गया। लोग रो रहे थे, मुझ से नहीं देखा गया। बड़ा दुख था बिचारों को।"

"खाना खा," कहकर यशोदा ने रोटियाँ सेकीं और परोस दीं। कमल खाने लगा। उस समय वह बहुत भूखा था, शायद एक-दो छोड़कर सभी खा गया।

"अब जरा आराम कर।"

"अच्छा !"

वह भीतर कमरे में जा लेटा तो थोड़ी देर में खुर्राटे भरने लगा। शाम को साढ़े पाँच बजे शिवानन्द ने जगाया तो उठा।

यशोदा ने कमल के अल्हड़पन की बात सुनाई तो वह बोला, "यह आजकल अपने में नहीं है यशोदा। न जाने इसे क्या हो गया है, था तो पहले भी ऐसा ही, पर अब तो जैसे खो-सा गया है।"

"मुझे इसका यही रूप अच्छा लगता है शिवानन्द।"

"पागल का ?"

"नहीं, ऐसा नहीं," कहकर यशोदा ने बात पलट दी। उसके मन में आया, एक बार कमल का इतिहास शिवानन्द से पूछें लेकिन वह चुप रह गई।

शिवानन्द बोला, "सदा से विद्रोही रहा है कमल, हर बात को गहराई से जानना चाहता है। स्वामीजी ने ईश्वर को जानने का रास्ता बताया और पढ़ने को पुस्तकें दीं तो सब पढ़ गया। अब दिन-रात उसी में लग गया, न ठीक से खाना न किसी से बोलना। फिर स्वामीजी से प्रश्न-पर-प्रश्न करने लगा। अंत में उन्होंने नास्तिक कहकर एक दिन निकाल दिया।"

"तो क्या कमल पहले साधु था ?" यशोदा ने उत्सुकता से आँखें फाड़कर पूछा।

"नहीं, साधु तो नहीं, ब्रह्मचारी था, जैसा मैं हूँ। स्वामीजी जल्दी किसी को साधु नहीं बनाते।"

"कौन स्वामी ?"

"स्वामी हरिहरानन्द। उनके आश्रम में ही मैं रहता हूँ।"

"कहाँ है वह ?"

"पार।"

"तो यह वहाँ कैसे पहुँच गया ?"

"लम्बी कहानी है, फिर किसी समय बताऊँगा। कमल से ही पूछो न ? वह तो यहीं रहता है।"

"वह बहुत कम बोलता है। मेरे सामने जैसे उसकी जबान बन्द हो

जाती है ।"

"डरता है क्या ?"

"न जाने क्या है !"

"यह सदा से कम बोलने वाला है। लेकिन बोलने पर आवे तो खूब बोलता है। न जाने कहाँ से इतनी बातें आ जाती हैं। जानता भी तो बहुत है।"

"सोचता रहता है।"

"सोचने वाला कम बोलता है।"

"जो बोलता है वह गहरा होता है।"

"बच्चे की तरह है। मैंने खाना खाने के बाद कहा, सो जा कमल, आराम कर ले, तो सो गया। मैं कहती हूँ नहा ले, कपड़े पहन ले, तो नहाएगा, कपड़े पहनेगा। कभी खाना खाते समय पूछती हूँ और लेगा तो कहता है दे दो। जब बहुत खा चुकेगा तो मैं कहूँगी बस, अब मत खा तो कह देगा, अच्छा। अजीब आदमी है।"

"भोला है।"

"हाँ कभी-कभी मुझे झुँझलाहट होती है। ऐसा भी क्या आदमी, पर जब इसकी शकल देखती हूँ तो दया आती है। मैं चाहती हूँ······"

"क्या ?"

"कुछ नहीं।" वह कहते-कहते रुक गई। न जाने क्या सोचने लगी।

शिवानन्द ने देखा, यशोदा का मन कमल के प्रति उत्फुल्ल है। वैसे भी कमल देखने में काफी सुन्दर है। बाहर से भोला, पर तीखा। मोटी-मोटी गहराई तक जाने वाली आँखें। नुकीली नाक। पतले ओंठ। रंग बिलकुल गोरा। सुघड़ अवयव। विशाल कंधे। घुँघराले बाल। लापरवाह तबीयत। कमल बाहर हाथ धोने लगा तो आध घंटे तक मुँह ही धोता रहा। यशोदा ने कहा, "क्या बहुत मैल है मुँह पर, आधे घंटे से धो रहा है ?"

तभी उसे ध्यान आया, "नहीं, कुछ सोच रहा था।"

"क्या ?" यशोदा ने शिवानन्द के पास बैठे कमरे से ही पूछा।

"वह लड़की मर गई न, वही सोच रहा था।"

"मर गई तो मर गई वह कौन तेरी रिश्तेदार थी।"

हाथ-मुंह धोकर आते हुए कमल ने जवाब दिया, "सारा संसार कुटुम्ब है यशोदा।"

"मैं उसमें आती हूँ क्या ?"

"तू जहाँ है वहाँ और कोई आ सकता है क्या ? यही मैं कभी-कभी सोचता हूँ। मुझे लगता है मैं एक जाल में फँस गया हूँ।"

यशोदा को खुशी हुई लेकिन उसकी मजबूरी को देखकर लगा जैसे यह विवशता से मुझे स्वीकार करता है भीतर से नहीं। वह चुप हो गई। शिवानन्द बोला, "तो क्या यशोदा को भाभी कहना होगा ?"

"नहीं," उसने दृढ़ता से कहा, "वह समय शायद ही कभी आवे।"

"शायद कहकर बचाव का ठिकाना तुमने कर लिया है कमल। कोई बात नहीं। यह भी बुरा नहीं है।"

"यशोदा मेरी संरक्षिका है। बस, इतना ही मैं मानना चाहता हूँ।"

"मानने और करने में बहुत अन्तर है। हाथ काफी लम्बा होता है, जब कि मस्तक उससे कहीं छोटा।" हँसकर शिवानन्द ने कहा।

"ज्ञानी हो गया है।"

"मेरा ज्ञान हाथ से दूर है कमल ?"

वह उसी कम्बल पर बैठ गया। यशोदा जरा पीछे सरक गई।

"चल चलें, शिवानन्द ने कहा।" मैं उनसे मिल लिया हूँ वे तुझसे भी मिलना चाहते हैं। कह रहे थे मिलाना कभी मैं ऐसे को देखना चाहता हूँ।"

'क्या करूँगा जाकर ?"

'नहीं चल भी।" शिवानन्द ने हाथ पकड़कर उठाया। दोनों चल पड़े तो यशोदा कुछ भी नहीं बोली। न उन दोनों ने उससे कुछ कहा ही। अपरिचित की तरह उन दोनों को जाते देखकर उसका मन बेचैन हो उठा। उसे लगा जैसे वह जीवन में अकेली है, बिलकुल अकेली। यह कमल नाम का व्यक्ति, जो उसके निकट आया है, कौन जाने कब छोड़कर चल दे। फिर, वह उसका कौन है ? वह उसे समझ भी नहीं पाती। एक ही पेड़ की डाल पर दो अलग पत्तियों की

तरह अपने में खोये रहने वाले इस व्यक्ति से वह आशा भी क्या कर सकती है। लोग कहते हैं आग के पास घी गरम हो जाता है लेकिन यह तो घी भी नहीं है। न जाने क्या है ? क्यों मैं इसे चाहने लगी हूँ। क्यों चाहती हूँ यह मेरे पास रहे, मेरी आँखों के सामने रहे। मैं इसकी सेवा करूँ, यह मेरा हो जाय। मैं इसमें समा जाऊँ। इसको हृदय के रस से सराबोर कर दूँ। नहीं, यह मेरा कोई नहीं है। पास का, दूर का कोई भी सम्बन्ध तो नहीं है। ओः कितना दुख है मुझे। एक आग सी जला करती है अन्तर में। एक लावा सा फूटा करता है भीतर। कितना कष्ट है, कितनी जलन है, मेरा जीवन कितना निकम्मा है। मेरा कोई नहीं है। मैं किसी की नहीं हूँ। वह बिना मुझसे कुछ भी कहे चला गया। जैसे मैं इसकी कोई नहीं हूँ। यह नहीं जानती मैं क्या चाहती हूँ, कितना प्यार करती हूँ।

उसे बीते जीवन की स्मृति हो आई – गरीब माँ-बाप ने मालदार समझकर बूढ़े खूसट से शादी कर दी, पचपन साल के बुड्ढे से; जिसके पास रुपया था लेकिन शक्ति नहीं थी। उसने केवल नाम के लिए शादी की। उसकी प्रेयसी एक वेश्या थी, प्रौढ़ चवालीस साल की वेश्या। पति चाहता था। वह नाज-नखरे के साथ उससे मिले, उसे खुश करे। उसकी नाज़ बरदारी उठावे। वह वैसा नहीं कर सकी तो उसने उसे अपने जी से उतार दिया। फिर वह चाहने लगा वह किसी से भी उसके लिए एक बच्चा पैदा कर दे। वह वैसा नहीं कर सकी। ओह, अपने जी की भड़कती आग को उसने दबाकर रखना सीखा। वह ऐसे ही संस्कारों में पली थी। पति की बहन शत्रु बन गई। उसने तरह-तरह से कष्ट देना शुरू कर दिये। मोटा-झोटा खाना मिलता। फटे कपड़े पहनती, जमीन पर सोती। और ऊपर से उसकी (पति की) बहन मारती। उसके दुखों का कोई अन्त न था। बाँझ कहकर बाहर की औरतों के सामने उसे चिढ़ाया जाता, गालियाँ दी जातीं। उसके माँ-बाप को कोसा जाता। उसे नहीं मालूम माँ-बाप अभी जिन्दा हैं या नहीं। दो बार लेने आने पर भी बाप को लौटा दिया गया। हाय, वह उनकी शक्ल भी नहीं देख सकी। उसके बाद........

उसके सामने ऋषिकेश का चित्र उपस्थित हो गया। साधु की शक्ल उसके

सामने आ गई। वह एकदम जैसे भयभीत हो उठी।

साँझ का समय हो रहा था। घर में अँधेरा भरने लगा। इससे उसका डर और भी घना हो उठा। उसे लगा जैसे वह बाबाजी उसके सामने खड़ा हँस रहा है। उसे डरा रहा है। वह अकेली है निपट अकेली। कोई भी उसके पास नहीं है। उसने अपने को सँभाला। हिम्मत बाँधकर उठी, लालटेन जलायी। फिर भी उसका मन भारी हो रहा था। उसके मन में आया भरत मन्दिर में आरती के लिये चली जाय या गंगा के किनारे जाकर मन बहलावे। लेकिन उसका मन बेचैन था। वह खिन्न मन से उठी और कम्बल पर जा लेटी कुछ न सूझने पर वह फफक-फफककर रोने लगी।

जिस समय कमल और शिवानन्द स्वामी ब्रह्मानन्द के आश्रम में पहुँचे उस समय झुटपुटा हो रहा था। कुटिया के बाहर स्वामीजी चबूतरे पर पालथी मारे बैठे थे। नंगे शरीर लँगोट बाँधे। कन्धे पर खद्दर का गेरुआ अँगोछा। दाढ़ी, सिर के बाल बढ़े हुए। शान्त मुद्रा, प्रसन्न, चित्त-भेदक आँखें, विशाल रेखा भरा मस्तक। अपने ही ढंग से देखने वाली करुण दृष्टि, गौर वर्ण। इकहरा शरीर। लगता था स्वामीजी की आयु पैंसठ के आस-पास है। दोनों ने प्रणाम किया और नीचे पड़ी चटाई पर बैठ गये।

"यही है कमल महाराज।"

"अच्छा, अच्छा यह है। इसी ने हरिहरानन्द स्वामी का आश्रम छोड़ा है?"

"नहीं महाराज, स्वामीजी ने मुझे निकाल दिया।" कमल बीच में ही बोल पड़ा।

"यह स्वाभाविक है। विद्रोह को सहने की सामर्थ्य बड़ी कठिन होती है। बिना विद्रोह के नया निर्माण भी नहीं होता।" थोड़ी देर चुप रहने के बाद स्वामीजी ने पूछा—"तू क्या चाहता था कमल? कमल ही है न तेरा नाम?"

"जी", कमल थोड़ी देर के लिये रुका फिर कहने लगा, "मेरे मन में यह शंका बराबर बनी रही कि यदि ईश्वर एक है तो उसको पाने के मार्ग भिन्न

क्यों हैं, इतने धर्मों, इतने सम्प्रदायों की क्या जरूरत थी। फिर जिन्होंने ग्रन्थ लिखे हैं क्या उन्होंने उसे पा लिया था। निश्चय ही बहुत सी अटकलबाजियाँ हैं। इसी प्रकार मैं सोचा करता था। इसके बाद मुझे साधुओं की दशा देखकर बड़ा दुख हुआ। मुझे लगा ये साधु हमारे समाज के निरर्थक अंग हैं। इनसे कोई लाभ नहीं है। केवल वे व्यक्ति जो मन, वाणी और कर्म से साधु हैं, उनके अलावा हजारों लाखों इन साधुओं से हमारे देश को क्या लाभ है?" उसने बताया आज उसे ईश्वर के सम्बन्ध में जानने की कोई चिन्ता नहीं है। धर्म के सम्बन्ध में कोई जिज्ञासा नहीं है।

"ठहरो ठहरो, तुमने एक ही बात में कई बातें मिला दी हैं। ईश्वर का प्रश्न व्यक्ति की सामर्थ्य और निरन्तर अनुष्ठान से सम्बन्ध रखता है। वह अनुभूति का विषय है क्योंकि वह सब्जेक्टिव है अनुभवजन्य है। उसे तो कोई भी नहीं बता सकता। तर्क भी नहीं, विवेचन भी नहीं। क्या मैं नमक का स्वाद, गुड़ की मिठास कहकर बता सकता हूँ? फिर जब हम उसे सर्वव्यापक मानते हैं तो वह उपासक को हर जगह मिल सकता है, पत्थर में भी, कब्र में भी। जीवित में, मुर्दे में भी। खोजने की आँख, पाने का मन चाहिए। वह साधारण ज्ञानी रैदास को भी मिला और तत्वज्ञानी शंकर को भी। वह हर जगह है हर रूप में।"

"नास्तिक को वह दिखाई नहीं देता, तो क्या वह नहीं है?" कमल ने प्रश्न किया।

"क्योंकि वह उसे देखना नहीं चाहता। मैं यदि तुमसे मिलना नहीं चाहता तो तुम मुझे क्यों मिलोगे? उन्होंने विज्ञान के नेत्रों से उसे देखना चाहा, तर्क से जानना चाहा। अनुभव के नेत्रों से देखो, मिलेगा। मोटे चश्मे से बारीक अक्षर नहीं पढ़े जा सकते भाई। धर्म के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बात है। जब वह सामाजिक रूप स्वीकार कर लेता है तो उसमें आध्यात्मिकता कम, व्यवहार अधिक प्रौढ़ हो उठता है। इसी कारण हम उसका बाह्य रूप स्वीकार करते हैं। स्वीकृति मात्र से वह धर्म नहीं है। वहाँ जीवन सापेक्ष हो जाता है, यानी व्यवहारगत। तब हम उसे सामाजिक धर्म मान लेते हैं। यदि मैं संन्यास लेना चाहता हूँ तो मैं उसका बाह्य रूप ही तो स्वीकार करता हूँ। वह साधन है।

साध्य का सम्बन्ध आत्मा से है।

"आप संन्यास क्यों लेते हैं?"

"छोटे को त्यागने और बड़े को पाने के लिये।"

"क्या ईश्वर इस प्रकार के कपड़ों के पहने बिना नहीं मिल सकता? एक गृहस्थ भी उसे पा सकता है फिर हमें वैसा क्यों करना चहिये?"

"इस प्रकार के कपड़े केवल संसार के प्रति वीतरागिता के चिन्ह हैं। यह भी एक साधन है साध्य का। जब मनुष्य गेरुए कपड़े पहनता है तब उसे विपरीत काम करते लज्जा आती है। इसका केवल इतना ही उद्देश्य है। वैसे ईश्वर ने यह कहीं नहीं कहा कि मैं ऐसे कपड़े पहनने पर ही मिलता हूँ या अमुक भाषा में याद करने पर। यह सब बाहरी बातें हैं। ईश्वर की भाषा हृदय की सार्वभौम भाषा है। उसका मूक चिन्तन, उसके प्रति लगन है, उसको पाने की उत्कट जिज्ञासा ही मुख्य है।"

स्वामीजी धाराप्रवाह गहराई में उतर रहे थे तो कमल ने पूछा, "आज-कल के साधुओं के विषय में आपका क्या मत है?"

स्वामीजी विषय बदल जाने से एक दम रुके, कुछ सोचते हुए बोले, "मैं समझता हूँ, आज के साधु और गृहस्थ में कोई भेद नहीं है। बल्कि उद्देश्यहीन होने के कारण जैसा तुम कहते हो इनका जीवन उतना उपयोगी नहीं है।

कमल का मन गद्‌गद् हो उठा। वह यही चाहता था। उसे लगा स्वामी जी सचमुच क्रान्तिदर्शी हैं। सर्दी के साथ इस समय अँधेरा बढ़ रहा था। स्वामी जी फिर भी अचल बैठे थे। शिवानन्द ने कहा, "रात हो रही है महाराज, कुटिया में चलें।"

"तो मुझे क्या कुछ पढ़ना है शिवानन्द, जितना प्रकृति के पास रहोगे उतना सुख मिलेगा। इस प्रकृति में अनन्त आनन्द है, अखण्ड रस। ये सूर्य, चन्द्र तो इसके अंश मात्र हैं ज्योति-पुंज। क्या नहीं है इसमें। सभी तो है। अन्धकार में भी आनन्द है, प्रकाश में भी। गरमी में भी आनन्द है, वर्षा में भी। इस शीत में भी आनन्द बह रहा है इसको पाने की क्षमता चाहिये। अभ्यासेनतु कौन्तेय।"

"आप वर्तमान साधु समाज के सम्बन्ध में कुछ कह रहे थे।" कमल ने

दुहराया।

"स्वामीजी बोले, "बिना कारण कोई वस्तु नहीं होती। आवश्यकता से ही इस साधु समाज की सृष्टि हुई है। सदा से ही मनुष्य के भीतर एक इच्छा रही है कि वह संसार के अनित्य सुख को नित्य बना सके, ऐसा कोई स्रोत ढूंढ़ ले जिसमें उसे स्थायी सुख मिल सके, वह स्थायी सुख कहाँ है, किस जगह है, इसी प्रश्न की खोज में संसार के तत्वज्ञानी सदा से रहते आये हैं। यह मौलिक प्रश्न बाहर से नहीं भीतर से सम्बन्ध रखता है, पहले भी था और आज भी है। शान्ति और सुख की खोज ही संन्यास धर्म की मूल प्रेरणा है। जैन और बुद्ध धर्म से पहले इस देश में तत्त्व-दर्शी ऋषि, मुनि थे किन्तु भगवान बुद्ध के बाद जब इस देश में अध्यात्म और प्रव्रज्या के नाम पर पापाचार होने लगे, तब भगवान् शंकर ने संन्यास धर्म की स्थापना की। यह मैं नहीं कहता कि जैन और बुद्ध धर्म के प्रचारक महात्मा नहीं थे, बल्कि मैं यह कहता हूँ कि उनके बहुत दिनों बाद आज के संन्यास धर्म की तरह उनका भी रूप बिगड़ गया था। शंकर स्वामी ने वैदिक धर्म के अनुसार इस संन्यास आश्रम के महत्त्व को प्रचारित किया। इससे पूर्व पाशुपत और कापालिक ढँग के लोग थे जो दूसरे धर्मों की समता में वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा अपनी शक्ति के अनुरूप करते रहते थे। ये लोग मन्दिरों में रहते थे और जंगलों में भी।"

"ये पाशुपत और कापालिक कौन थे?"

"कापालिक नासिक जिले में रहते थे। कदाचित् ईसा की दूसरी सदी में। पुलिकेशन द्वितीय के समय के एक ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि वर्तमान इगतपुरी के पास इनका कहीं स्थान था। ये दोनों शैव सम्प्रदाय के अनुयायी थे। बहुत दिनों तक कापालिकों का इस देश में जोर रहा है। संन्यास आश्रम इसके बाद ही प्रचलित हुआ।"

"संन्यास आश्रम की क्या आवश्यकता थी?"

"संन्यास आश्रम का प्रवर्तन इसलिये मालूम होता है कि कापालिक और पाशुपत लोग लक्ष्य-भ्रष्ट हो गये थे, अधिकार और शक्ति के लिये परस्पर लड़ने लगे थे। उनका प्रभाव भी क्षीण हो रहा था। तब शंकराचार्य ने इस धर्म

की स्थापना की। स्वाभाविक है एक विचार के जीर्ण हो जाने पर दूसरा विचार दूसरी क्रिया को मनुष्य जन्म देता है। नवीन का जन्म ही जीवन को तेजोमय गतिमान् बनाता है। धर्मों के मूल में भी यह शक्ति काम करती है। शैव धर्म में समता की भावना थी। ऊँच-नीच का भेदभाव न था। शंकर स्वामी ने यही देखा। वस्तुतः यह धर्म महायोगी शिव के उपासकों का है। दशनामी, दण्डी, परमहंस और ब्रह्मचारी ये चार भेद होते हुए भी दशनामी संन्यासी मुख्य हैं। दण्डी लोग केवल दण्ड धारण करके रहते थे। परमहंस भी संन्यासियों का एक रूप है और दण्डी भी। एक तरह से यों कहना चाहिए कि शंकर स्वामी ने इसमें सुधार किया। उन्होंने भारतवर्ष के चार कोनों में चार मठ बनाये। उत्तर में बद्रीनाथ, पश्चिम में द्वारका, दक्षिण में शृंगेरी और पूर्व में जगन्नाथपुरी। इन्हें ही ज्योतिर्मठ, शारदा मठ, शृंगेरी, गोवर्धन मठ के नाम से पुकारा जाता रहा है।"

"इन मठों के बनाने में शंकराचार्य का क्या उद्देश्य रहा होगा?"

"वैदिक धर्म की धवल कीर्ति का प्रसार। एक तरह से उस समय धर्मों में खूब संघर्ष था। सब लोग अपने धर्म की उत्कृष्टता सिद्ध कर रहे थे। उस समय यह आवश्यक भी था।"

स्वामीजी थोड़ी देर के लिये मौन हो गये। फिर बोले, "शंकराचार्य ने अरण्य, आश्रम, भारती, गिरि, पर्वत, पुरी, सरस्वती, सागर, तीर्थ और वन के नाम से दस श्रेणियों में संन्यास धर्म को बाँटा। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक दीक्षित संन्यासी के नाम के अन्त में ये शब्द आने लगे। जैसे विद्यारण्य स्वामी, आनन्दतीर्थ, दयानन्द सरस्वती।

"इससे सिद्ध होता है, कि ये लोग प्रायः जंगलों में रहते थे?" कमल ने पूछा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं। इन सब का एक मात्र उद्देश्य धर्म-प्रचार था। इसी कारण एक समय ऐसा आया कि बौद्ध धर्म भारत से निःशेष हो गया और इसके बाद तेरहवीं सदी में वैष्णव धर्म का उदय हुआ। माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्द, राघवानन्द, निवृत्तिनाथ, गोरखनाथ, ज्ञानेश्वर आदि सभी ने इस देश में धर्म का ही प्रचार किया। इन सब महात्माओं ने अपने-

अपने सिद्धान्त के अनुसार भाष्य, टीकाएँ और ग्रन्थ लिखे। दूसरे के मतों का खण्डन और अपने मत की स्थापना की। इस प्रकार का साहित्य जिसमें धर्म सम्बन्धी इतनी चर्चा हो कदाचित् विश्व के साहित्य में और कहीं नहीं मिलेगा। तुम्हें आश्चर्य होगा कि इन साधुओं और संन्यासियों ने केवल धर्म का ही प्रचार नहीं किया आक्रान्ता विदेशियों से लोहा भी लिया है।

"वह कब महाराज ? यह तो बिलकुल नई बात है।"

जब इस देश पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ। पीर और फकीरों ने जबरदस्ती लोगों को मुसलमान बनाना प्रारम्भ किया। लोहे को लोहा काटता है इस नियम के अनुसार संन्यासी और बैरागियों ने तलवारें उठाईं, मोर्चे बनाये और अत्याचारियों से युद्ध किया। विजय प्राप्त की।

उस समय पूर्व की ओर से वक्राकार चन्द्रमा उग रहा था। कहीं-कहीं कोई पक्षी पंख फड़फड़ाकर उड़ता सुनाई देता, सब ओर शान्ति थी। कुटी के नीचे गंगा मानो स्वामीजी की बातें सुनती बह रही थी। चन्द्रमा की हलकी कान्ति उनके मुख पर पड़ रही थी। उस धुँधलके में भी उनका मुख प्रज्ज्वलित हो रहा था। वाणी में ओज और वाक्यों की स्पष्टता से लग रहा था जैसे इस व्यक्ति का मस्तिष्क विगत सदियों की घटनाओं में घूम रहा है। कमल अपने आपको भूल गया। शिवानन्द तन्मय होकर सुन रहा था। स्वामीजी ने आगे कहना शुरू किया।

"जिन संन्यासी और साधुओं ने राजनीति में भाग लेकर राज्यों की स्थापना की उनमें माधवविद्यारण्य एक साधु थे, इन्होंने संगमवंश को विजयनगर की गद्दी पर बैठाया। ये शृंगेरी मठ के शंकराचार्य थे। शृंगेरी मठ ने उस समय पतित राजा को हटाया और नये राजा का अभिषेक किया। विद्यारण्य राजा यदुगिरि विरूपन्ना के गुरू थे, यह आश्चर्य की बात है कि एक ही जगह नहीं बल्कि सारे देश में साधुओं ने परिवर्तन किये। १५वीं सदी के बीच में 'बखरचिरिया' नाम के एक साधु ने राठौड़ राजपूतों के वंशज जोधा को जोधपुर बसाने का आदेश दिया। बखरचिरिया गोरखनाथ सम्प्रदाय का एक जोगी था। राजपूतों में हरबूजी संखल एक साधु हो चुका है, जोधा ने इसकी शरण ली और

मांडोर पर विजय प्राप्त की। प्रारम्भनाथ ने छत्रसाल को बलवान् बनाकर सारे बुन्देलखण्ड पर शासन करने का आदेश दिया। छत्रसाल ने उस समय के मुसलमानों से डटकर मुकाबला किया और हिन्दू धर्म की रक्षा की। मधुसूदन-सरस्वती, जो कदाचित् १५४० में हुए, संस्कृत के बड़े विद्वान् थे; बहुत बड़े राज-नीतिज्ञ और सेनानायक भी हुए हैं, उन्होंने मुसलमान फकीरों के मुकाबिले में साधुओं की सेना खड़ी की और उनसे युद्ध किया, विजय पाई।"

"ये मधुसूदन सरस्वती वे ही तो नहीं, जिन्होंने 'अद्वैतसिद्धि' वेदान्त की एक पुस्तक लिखी है ? शिवानन्द ने पूछा।

"हाँ, ये वैष्णव बंगाली थे, बनारस में रहते थे।"

"ये 'बखरचिरिया' क्या नाम है ?"

"बखरचिरिया का अर्थ है पक्षी का घोंसला।' राजपूत इतिहास में इनका यही नाम प्रसिद्ध है शायद असली नाम कुछ और हो। ये मांडोर से चार मील दूर एक गुफा में रहा करते थे, जैसे पक्षी घोंसले में रहता है, इसी तरह। आज भी 'बखर' का अर्थ घर या घोंसला राजस्थान में प्रसिद्ध है। १७वीं सदी में समर्थ गुरू रामदास का नाम तो तुमने सुना ही होगा।"

"जी। जिन्होंने शिवा को शिवाजी बनाया, वे ही न ?"

"हाँ। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि शिवाजी ने समर्थ को एक पत्र लिखा जिसके उत्तर में रामदास ने शिवाजी के पास मुट्ठी भर मिट्टी, कंकड़ और घोड़े की लीद भेजी। शिवाजी उस समय अपनी माँ जीजाबाई के पास बैठे थे। समर्थ की यह सौगात देखकर जीजाबाई को बहुत बुरा लगा। बोली, 'समर्थ ने यह क्या किया, क्या यह किसी भले आदमी के पास भेजने की चीज़ है ?' शिवाजी थोड़ी देर सोचकर बोले, 'माँ तुम नहीं जानतीं, ये कंकड़ और मिट्टी का अर्थ है, कि मैं किले बनाऊँ और घोड़े की लीद का अर्थ है कि मेरी घुड़-सवार सेना मजबूत हो।" इसके बाद शिवाजी ने जो कुछ किया वह किसी से छिपा नहीं है। यह समर्थ गुरु रामदास का ही प्रताप था कि शिवा शिवाजी बने। समर्थ ने आजीवन वीतराग होकर भगवान का भजन किया और वहाँ के निर्बल हिन्दुओं को सबल बनाया। धर्म की प्रतिष्ठा की।"

"सचमुच गुरु रामदास का कार्य अद्वितीय है।"

ब्रह्मानन्द स्वामी भी महाराष्ट्र में हो चुके हैं। उन्हीं की कृपा से चिम्माजी अप्पा ने पुर्तगालियों से बसई जीता। बंगाल में आनन्दनाथ नाम के एक स्वामी ने जिनका जिक्र 'आनन्द मठ' के नाम से बंकिमचन्द्र ने किया है, अपने शिष्यों की सेना के द्वारा मुसलमानों पर आक्रमण किया और उन्हें हराया।

उस समय सर्दी अपने पूरे जोर पर थी। स्वामीजी फिर भी बिना वस्त्र के अचल बैठे थे। शिवानन्द और कमल ठिठुर रहे थे। देर हो रही थी, शिवानन्द उठना चाहता था कमल फिर भी बैठा रहा। उत्साह में भरकर उसने पूछा—"तो क्या ये संन्यासी लोग आपस में भी लड़ते थे?"

"हाँ। कभी-कभी ऐसी घटनायें भी हो जाती थीं। 'प्रभुता पाहि, काहि मद नाहीं।' भाई प्रभुता का मद, शक्ति की चाह, नाश की जड़ है। फिर सांसारिक साधु भी क्यों न लड़ेंगे।" स्वामीजी खिलखिलाकर हँस पड़े। उनकी मुखाकृति उस समय और भी भव्य हो उठी। जैसे भोले मुख पर ज्ञान की लहरें अपनी अपूर्व आभा से नाच उठी हों। वे कुछ देर रुके, फिर कहने लगे, "एक बार जब अकबर स्थानेश्वर के पास कुरुक्षेत्र में कैम्प डाले पड़ा था उन दिनों दान लेने के अधिकार पर पुरी और गिरि नाम के संन्यासियों के दो दलों में लड़ाई हुई। दोनों दलों के मुखिया अकबर के पास पहुँचे और कहा—हममें से कौन दान का अधिकारी है, आप इसका फैसला करें। अकबर ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब उन्होंने फिर प्रार्थना की कि अच्छा आप हमें आपस में लड़कर फैसला करने का अधिकार दें। अकबर ने अपनी कूटनीति से उनको उत्साहित किया और बोला, 'हाँ ठीक है लड़ो।'

"दोनों दलों में लड़ाई हुई। पुरी हारे। अकबर ने इशारे से अपने आदमी पुरियों के साथ कर दिए। नतीजा यह हुआ कि पुरी जीत गए। असल में उनमें से जीता कोई नहीं। दोनों दल आपस में कटकर मर गए। इसी प्रकार की एक लड़ाई नागा, संन्यासियों की बैरागियों के साथ हरिद्वार में हुई। तभी से नागा, संन्यासियों के अखाड़े बने।"

"'अखाड़े' का क्या अर्थ है ?"

हँसकर स्वामीजी ने कहा, "अखाड़ा कुश्ती लड़ने की जगह। लेकिन यहाँ कुश्ती नहीं लड़ी जाती थी, नागाओं की सेना तैयार होती थी। इनके छः अखाड़े अभी तक प्रसिद्ध हैं। ये एक प्रकार से भैरव की उपासना करते हैं। शैव सम्प्रदाय के लोग हैं। दत्तात्रेय को देवता मानते हैं। इन्हें 'अवधूत' भी कहते हैं। सबसे पहले प्रयाग में एक अखाड़ा बना। फिर हरिद्वार, उज्जैन, त्र्यंबक आदि स्थानों पर। एक अखाड़ा निरंजनी अखाड़ा भी है। इसकी स्थापना ईसा की १०वीं सदी में कच्छ के मांडवी गाँव में हुई थी। इस अखाड़े के लोग स्वामी कार्तिकेय को अपना देवता मानते हैं। इसकी शाखाएँ प्रयाग, नासिक, ओंकार, मांधाता, उज्जैन, बनारस, हरिद्वार और उदयपुर में हैं। एक महो-निर्वाणी अखाड़ा भी है, जो कुंडागढ़ में छोटा नागपुर के पास स्थापित हुआ। कहा जाता है, इस अखाड़े के लोगों ने बनारस में औरंगजेब की सेनाओं को हराया था। एक और प्रकार का अखाड़ा भी किसी समय प्रसिद्ध था। इसके देवता गणपति थे। ये सभी अखाड़े अपनी फौजें रखते थे। जयपुर के एक अखाड़े के नागा लोग आवश्यकता पड़ने पर राजा की सेना के साथ लड़ते थे। इन नागाओं की सेना सात हजार के लगभग थी। रायपुर के पास देवपुर में गोसाइयों का अखाड़ा था। इसमें भी काफी संख्या में सेना रहती थी। तुमने देखा साधुओं ने कम देश-सेवा नहीं की है ? फिर परमहंस रामकृष्ण, विवेकानंद, दयानन्द सरस्वती तो अभी हो चुके हैं। इनको कौन भूल सकता है।"

"हाँ महाराज, आज यह सब सुनकर मेरी आँखें खुल गईं।"

"चलो भीतर चलें।" कहकर स्वामीजी उठे और कुटिया में जाकर दिया जलाया और बिछे हुए कंबल पर बैठ गए। उन्होंने मोटी सूती चादर ओढ़ ली। कुटिया में और कुछ नहीं था, कुछ पुस्तकें, एक कमण्डल, एक लँगोटी और चादर बस, यही सामान था। गोबर से पुती हुई साफ़ फूँस की कुटिया में दोनों जाकर बैठ गए।

"आज्ञा दीजिये।" कमल ने थोड़ी देर बाद कहा। वह पुराने साधुओं के जीवन का स्वप्न देख रहा था। शिवानन्द ऊँघने लगा था।

"जाओगे । अच्छा । साधुओं का काम ठीक लगा ?"

"जी ।"

प्रणाम करके दोनों उठे तो उस समय काफी रात बीत गई थी । शिवानन्द बोला, "मैं तो आश्रम जाऊँगा ।"

"इतनी रात को, बिना नाव के ?"

"बस, लक्ष्मण झूले से निकल जाऊँगा । कल शाम को मिलूँगा ।" कहकर चला गया ।

कमल धुँधले प्रकाश में स्वामीजी की बातों में खोया चला जा रहा था । जैसे उसे नया ज्ञान मिला हो । वह सोच रहा था, क्या ही अच्छा होता आज के साधु भी नया जीवन देश में फूँक सकते । पर आज तो इनके जीवन की, इनके कर्तव्य की, इनके विचारों की उपयोगिता ही समाप्त हो गई है । आज यह लोग उस फटे कपड़े के समान हैं जो काफी दिनों तक पहना जाने के बाद निस्सार हो गया है, उसमें दम नहीं रहा है । व्यक्ति की उपयोगिता समाज के लिए है । बाग का एक फूल सबके साथ मिलकर बाग की शोभा बढ़ाता है । पानी का एक कण जब समुद्र में अपने को मिला देता है तभी पूनों के दिन सागर की लहरें आकाश को चूम पाती हैं । क्या एक धूल का कण कभी पर्वत बन सकता है ? महान् व्यक्ति का व्यक्तित्व भी तभी चमकता है जब वह समाज को अपने विचारों से उत्फुल्ल कर देता है । बुद्ध ने अपनी दया, करुणा का स्रोत लोगों के लिए बहाया । उन्हें अपने ऊँचे संदेशों से आप्लावित कर दिया, तभी बुद्ध का बुद्धत्व कायम रह पाया । महावीर क्या अपने लिये जिये ? अपने लिए जीने वाला 'आत्मघाती' है । पापी है । अपने आप खाने वाला 'केवलाघ पापी' होता है । यह उसने कहीं पढ़ा था वही ध्यान में आ गया । इसी प्रकार के विचारों में खोया वह उस अँधेरे सुनसान रास्ते पर चला जा रहा था । सड़क के एक ओर कुछ गायें बैठी जुगाली कर रही थीं । उसने सोचा ये पशु भी तो दूसरे के लिए जीते हैं । हमें दूध देकर अपनी उपयोगिता बनाये रखते हैं । और सबसे निकम्मा कुत्ता भी मालिक के घर की रखवाली करके अपने अस्तित्व की खबर देता रहता है । ये सूअर जो जंगलों में घूमकर मल खाते हैं भले ही वे यह न जानते

हों पर एक तरह से भूभाग को साफ रखते हैं। सभी कुछ न कुछ करते हैं मनुष्य के लिए, और मनुष्य···? मनुष्य दूसरों के लिये क्या करता है कितना स्वार्थी है यह ?

उसके उपचेतन के संस्कारों ने उसे यशोदा के घर के दरवाजे पर ले जाकर खड़ा कर दिया। जैसे वही उसका घर हो। नीची निगाह किये दरवाजा खटकाया, एक बार, दो बार, फिर जोर से, किन्तु दरवाजा नहीं खुला। बहुत देर बाद जरा चेतन होकर उसने ऊपर देखा तो ताला बन्द था।

"अच्छा, कहाँ गई यशोदा। चली गई क्या ? ताला बन्द है ? बारह का समय होगा। इस समय और दिन तो कहीं नहीं जाती थी ?" चादर ओढ़े हुए भी वह सर्दी और हवा के झोंके से ठिठुर रहा था। उसके पैर ठण्डे बर्फ की तरह कड़े हो रहे थे। उसे लग रहा था जैसे उनमें खून जम रहा है। मुट्ठियाँ बाँधे रहने पर भी उनमें जड़ता थी। हवा तीर की तरह सारी देह को फोड़े दे रही थी। वह भीतर से थर-थर काँप रहा था। कभी-कभी ऐसा लगता जैसे सारा शरीर उछल रहा हो। वह यह सब होते हुए भी यशोदा के सम्बन्ध में सोचने को मजबूर हो गया। "कहाँ गई होगी, किसी के पास ·····।" उसकी नसें तन गईं। आवेश से उसका शरीर गर्मी से भर गया। उसे लगा जैसे उसकी कोई चीज पराई हो गई। "तो क्या, यशोदा उसकी है, यह उसने कैसे मान लिया, कि वह उसकी है, उसका उस पर कोई अधिकार है।" वह हँसा, "कितनी मूर्खता है। "मैं उसका कौन हूँ ? जब कोई भी नहीं हूँ तो यहाँ आया ही क्यों ? क्यों चला आया इधर ?" उसके जी में एक बार आया वह चला जाय। कहीं भी जाकर सो रहे। "लेकिन, ऐसी बर्फीली सर्दी में वह कहीं जाकर सो सकेगा ? रात भर में मर न जायगा ? उसका कम्बल भी तो पास नहीं है ? कहाँ जाय, यशोदा को उसने अपना कैसे समझ लिया ? कभी भी तो ऐसा ध्यान उसे नहीं हुआ, फिर वह चला कैसे आया ?" उसे लगा जैसे कुछ न होते हुए भी एक लगाव उसके भीतर यशोदा के लिए है। यशोदा जैसे उसके अंतरंग के सूत्रों से बँध गई है। वह सूत्र अपने आप बिना सोचे उभर आये हैं। उसकी आँखों के सामने यशोदा का रूप उतर आया। उसकी आकृति, चेष्टा, बात-चीत, हँसने का ढंग निखर

उठा। "पूछना पड़ेगा, कहाँ गई थी।" कमल ने दृढ़ता से मन ही मन कहा।

जैसे वह स्वप्न में हो। सर्दी से बेचैन होकर वहीं दरवाजे पर बने छोटे चबूतरे पर बैठ गया, जैसे धरना दे दिया हो। सिर उसने चादर से ढँक लिया। फिर भी पैर ठण्डे हो रहे थे। हवा चादर के भीतर छनकर घन की तरह देह तोड़े दे रही थी। न जाने कब तक वह बैठा रहा। नींद के झोंके आने पर भी सर्दी उसे बेचैन कर रही थी। इसी समय तेज आवाज उसने सुनी।

"कौन, कौन बैठा है ?" यह यशोदा की आवाज थी।

"मैं।"

"मैं कौन ?" उसकी आवाज और भी कर्कश हो गई।

"हाँ।"

यशोदा ने कोई जवाब नहीं दिया और ताला खोलकर अन्दर चली गई। दरवाजा खुला तो कमल उठा और जैसे ही आँगन में पहुँचा तो यशोदा ने कड़ककर कहा, "क्या है यहाँ, मेरा-तेरा क्या सम्बन्ध, जा, रास्ता नाप। ले जा, अपना कम्बल।"

यह कहकर कमरे से कम्बल लाकर यशोदा ने उसके सामने पटक दिया। कमल सर्दी से काँप रहा था। उसके दाँत बज रहे थे। उसने कोई उत्तर न देकर कम्बल ओढ़ लिया। खड़ा वह फिर भी रहा। दाँत कटकटाते हुए वह अस्पष्ट स्वर में बोला। "हाँ, यशोदा मेरी भूल थी।"

मालूम होता था दालान में सब साफ है। खाना भी नहीं बना। वह खड़ा रहा।

"क्यों खड़ा है ?"

"सोच रहा हूँ कहाँ जाऊँ ?"

"तो सोच ले। मेरे यहाँ जगह नहीं है। मैं अपने आप ही दुखी हूँ।"

"मेरी ओर से तुझे जो दुख हुआ हो उसके लिए क्षमा माँगता हूँ।" कह कर वह मुड़ा और दरवाजे के पास जाकर बोला, "अब तुझे कोई कष्ट नहीं दूंगा।"

यशोदा ने देखा कि वह जा रहा है, चला ही जायगा तो पास आकर खड़ी

हो गई । सर्दी से कमल थर-थर कांप रहा था । दांत बज रहे थे ।

"सुन ।"

कमल ने वहीं से पीछे फिरकर देखा, और चुप रहा।

"अन्दर आकर अपनी सब चीजें ले जा ।"

कमल को याद नहीं आ रहा था । कम्बल के सिवा उसकी और भी कोई चीज है । वह ठिठका, लेकिन यशोदा की कड़कती आवाज में आज्ञा का स्वर था । वह दरवाजे से भीतर आँगन में आ गया ।

"यह सब ले जा ।"

कमल ने अन्दर जाकर देखा, एक रजाई, एक गद्दा रखा है, नया बना ।

वह चुप होकर देखने लगा ।

"यह दो कुरते, और दो धोती भी । ले जा, उठा ।"

वह चुप हो गई । उसकी आँखों में तेज था । दया, स्नेह और क्रोध का मिश्रण । कमल ने देखा तो वह हैरान रह गया । एक अजीब प्रकार के भावावेश से भर उठा । "क्या यह सब मेरे लिए है यशोदा ? क्या मैं इस योग्य हूँ ?"

"मैं क्या जानूँ तेरा ही तो है ।" उसकी आवाज में वही तेजी थी । यशोदा मानिनी की तरह खड़ी थी । अचल, अडिग किन्तु उसका भीतर काँप रहा था । जैसे वह झुकना चाहती हुई भी सूखी लकड़ी के समान कड़ी हो रही थी । हृदय के आवेग को बरबस रोके खड़ी रही । कमल का हृदय अप्रत्याशित फूट पड़ने वाले सोते की तरह धीरे-धीरे रिसने लगा, एक द्वन्द्व से अभिभूत-सा । नीची निगाह किये वह झुका खड़ा था । उसके भीतर अन्तर्द्वन्द्व का तूफान था । वह समझ नहीं पा रहा था क्या करे । एक वेग की तरह उसने कम्बल फेंक दिया और रोता हुआ यशोदा से लिपट गया । "यशोदा" इसके आगे वह कुछ न कह सका ।

यशोदा चुप खड़ी थी । खड़ी रही । उसने अपनी तरफ से कोई प्रयत्न नहीं किया । बाहर दरवाजे की ओर देखकर बोली, हट, और दरवाजा बन्द करके जैसे ही लौटी तो देखा—कमल बेहद कांप रहा है ।

"क्या है ?" उसने कोई जवाब नहीं दिया। सर्दी उसकी देह तोड़े दे रही थी। यशोदा ने गद्दे पर लिटाकर रजाई डाल दी। रजाई बाहर से ऐसे हिल रही थी जैसे उसके भीतर कोई लड़ रहा हो। उसने देखा तो कम्बल और रजाई से पूरी तरह ढक दिया और पास बैठ गई। सर्दी उसे फिर भी लग रही थी। वह काँप रहा था। वह समझ गई बुखार आने वाला है। यह उसी का लक्षण है। शरीर गरम हो रहा था। थोड़ी देर में ही उसका शरीर बुखार से जलने लगा।

सबेरा होने पर यशोदा ने देखा तो काफी बुखार था। कमल का चेहरा तमतमा रहा था। उसने माथे पर हाथ फेरते हुए पूछा, "कैसा जी है ?"

"ठीक है।"

"बुखार है ?"

कमल कुछ भी न बोला, थोड़ी देर बाद आँखें खोलकर यशोदा को देखते हुए उसने पूछा—"रात कहाँ गई थी ?"

यशोदा ताड़ गई। चुप रहकर बोली, "तू क्या समझता है कहाँ गई होऊँगी।"

कमल को जैसे स्वयं उत्तर सूझा वह मुसकराकर कहने लगा—"समझ आया।"

"क्या ?"

"कुछ नहीं।" वह चुप हो रहा।

"बता न ?" वह झुककर कमल के सिर पर हाथ फेरने लगी।

"मैं कितना मूर्ख हूँ मैंने तुझे अभी तक नहीं पहचाना।"

"अब पहचान लिया न।" लेकिन उसे काँखते सुनकर वह बेचैन भी काफी थी। दिन भर उससे लगी बैठी रही। कमल के बार-बार कहने पर भी न उसने कुछ बनाया न खाया ही। वह चाहती थी किसी डाक्टर को दिखा दे। लेकिन कमल कह रहा था, बुखार है शाम तक उतर जायगा। वह रह-रहकर उसके हाथ अपने हाथों से मसलता चुप पड़ा रहा।

शाम को शिवानन्द आया तो हँसकर बोला।

"जो काम यशोदा कोशिश करके भी न कर सकी वही काम बुखार ने इसके लिये कर दिया।" लापरवाही से देह छूकर बोला—"बुखार है उतर जायगा। अरे लगता है आज खाना भी नहीं बना। मैं तो भूखा हूँ।"

"यशोदा के भण्डार से क्या कोई भूखा जा सकता है ?" कमल ने बीच में कह दिया।

"मैं जा कहाँ रहा हूँ।" शिवानन्द ने उसी स्वर में जवाब दिया। "आज सबेरे स्वामीजी ने पूछा था रात कहाँ रहा, मैंने सब बता दिया, तो तेरा हाल पूछने लगे। मैंने जवाब दिया अभी यहीं है कमल।"

"फिर क्या बोले स्वामीजी ?"

"काफी देर चुप रहने के बाद बोले, 'उसमें श्रद्धा का अभाव है।' मैंने कहा, 'वह दिन-रात यही सोचता रहता है।' 'सोचने से क्या होता है। वह कर भी क्या सकता है।' फिर बोले, 'शिवानन्द तू संन्यास ले ले।' इससे पहले जब मैंने संन्यास लेने की बात कही तब उन्होंने कहा था, 'प्रतीक्षा कर।' आज एकदम कैसे कह दिया। शायद तेरी संगति के कारण कहा होगा।"

"हो सकता है।" कमल बोला, फिर पूछा, "तूने क्या निश्चय किया ?"

"मैंने कोई जवाब नहीं दिया। वैसे भी मेरे कोई नहीं है। न लूँ तो कहाँ जाऊँ। बहुत पढ़ा भी नहीं हूँ। स्वामीजी ने ही कुछ पढ़ाया है।"

"बनी बनाई गद्दी है। मुफ्त का खाना, जनम भर की मौज।"

शिवानन्द चुप होकर सोचने लगा। बोला, "मुझे स्वामीजी अपने साथ बदरीनाथ की यात्रा से लौटते ले आये थे। वहाँ मैं आवारा फिरता था। माँ-बाप मर गये थे। एक चाचा पालते थे। चाची मुझे नहीं चाहती थी। उसके भी बच्चे थे।"

"कितनी उमर होगी उस समय तेरी ?"

"दस या बारह बरस की।"

"अब क्या करेगा ?"

"कोई भी काम कर लूँगा पर सोचता हूँ संन्यास नहीं लूँगा। मुझे यह अच्छा नहीं लगता। यह बूढ़ों का काम है, जवानों का नहीं।" फिर कहने

लगा।

"सोचता हूँ कोई दुकान कर लूँ...... ।"

"फिर ब्याह ।" यशोदा बोली ।

"ब्याह भी जरूरी है यशोदा ।"

"क्या काम करेगा ?"

"कोई भी काम, पर रुपया चाहिये, वह मेरे पास नहीं है ।" फिर कुछ देर सोच कर बोला—"नौकरी कर लूँगा पर संन्यास नहीं लूँगा । संन्यास लेने पर मन भीतर ही भीतर बड़ा दुःखी रहता है ।"

"बिना संयम और वैराग्य के संन्यास अच्छा नहीं ।" कमल ने कहा ।

"ठहर, काली मिर्च और तुलसी की पत्ती घोंटकर पीने से बुखार उतर जाता है । कहीं से तुलसी की पत्तियाँ लाता हूँ ।" वह उठा ।

"मैं खाना बनाती हूँ ।"

शिवानन्द चला गया । यशोदा ने चूल्हा जलाया । कभी-कभी वह सोचने लगती हम तीन आदमी तीन दिशाओं से आकर इकट्ठे हो गये हैं । कोई भी किसी के नहीं है । अजीब बात है । कल का उसका क्षोभ रात में ही समाप्त हो गया था । उसे लगने लगा, कमल अब उसका है। इसने उसे पहचान लिया है । यह भी बिना सहारे के नहीं रह सकता । फिर वह सोचने लगी, रात को वह चला जाता और इस तरह सर्दी लगती बुखार आ जाता तो अब तक......।

इसी समय बर्तन उतारते एक कटोरी झन्न से नीचे गिरी । उसे सन्तोष हुआ । फिर वह शिवानन्द के सम्बन्ध में सोचने लगी । उसे लगा कमल शिवानन्द से अधिक ऊँचा है, अधिक गहरा है, अधिक समझदार भी । जब कि वह बिलकुल गृहस्थ के लायक है । शादी भी करना चाहता है, इसके भीतर सूना है । यह उस सैनिक के समान है जो कमाण्डर की आज्ञा पाकर चलता है । वह दोनों को मन ही मन परखने लगी । उसे लगा कमल शिवानन्द से ज्यादा भयंकर भी है । वह किसी समय कितना भी बड़ा काम कर सकता है । जबकि शिवानन्द केवल अनुगत रह सकता है ।

चूल्हा जलाकर उसने दाल चढ़ाई और आटा गूँथने लगी। इसी समय शिवानन्द पत्ते, काली मिर्च और दवा की कुछ गोलियाँ ले आया। उसने पीस कर दवा पिलाई।

खाना खाने के बाद दोनों कमल के पास आकर बैठ गये। वह नींद में था या बेहोशी में अचानक घबराकर बोल उठा—"यशोदा, मैं कहाँ हूँ? यशोदा! मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है। मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा। बोल न, कान्ता, ओ कान्ता तू भी गई। यशोदा भी गई। मुझे गंगा में फेंक दिया, मैं बह रहा हूँ। मैं डूब रहा हूँ। मैं डूबा, मुझे कोई बचाओ! बचाओ मुझे! बचाओ ···!" वह जोर से चिल्लाकर चुप हो गया। फिर थोड़ी देर बाद होश में आ गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। दोनों एकदम चौकन्ने होकर एक दूसरे को देखने लगे। यशोदा ने सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा—"कमल, कमल क्या है? क्या कह रहा है?"

"नींद में बोल रहा था शायद।" शिवानन्द ने कहा।

"नहीं बेहोशी। मालूम होता है बुखार एकदम उतर रहा है। पसीना भी आ रहा है।" कहकर वह पसीना पोंछने लगी।

"डाक्टर को लाऊँ?"

"रात ऊपर से आ रही है। कहीं तबियत और न खराब हो जाय। ले आ। शिवानन्द।"

"मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।"

"फीस मैं दूँगी। तू जा।"

"कैसा जी है, डाक्टर को बुलाऊँ?" कमल को देखकर यशोदा ने पूछा।

"ठीक हूँ।" डाक्टर की कोई जरूरत नहीं है।"

"बड़बड़ा रहा था, क्या सपना देखा?"

"नहीं तो, क्यों मैं कुछ कह रहा था?"

"कान्ता को याद कर रहा था, वह कौन है?"

"कान्ता?"

"कौन है यह?"

"कोई नहीं एक सपना था। यशोदा, सपना था।" कमल चुप हो गया।

उस समय शिवानन्द ने कान्ता के सम्बन्ध में जो सुना था बता दिया।

"अब वह कहाँ है?"

"न जाने।" शिवानन्द ने जवाब दिया।

कमल करवट लेकर सो गया। यशोदा कान्ता और कमल के सम्बन्ध में सोचने लगी। शिवानन्द सोच रहा था—'यदि कमल मर जाय तो यशोदा उसकी हो सकती है। कितनी अच्छी है यह, कितनी सुन्दर, तो क्या रुपया भी इसके पास है? फिर मैं एक दुकान कर लूँ। दोनों आराम से रहें। कितना मजा आवे। मैं कमाऊँ यह खाय। हम एक बार फिर गढ़वाल की सैर कर आवें। नहीं, एक बार बम्बई, कलकत्ता जायें। खूब घूमें, खूब दुनिया देखें। उस हालत में मेरे बच्चे हों। चाची की मुझे पर्वाह नहीं है। चाचा भी मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं अपने हिस्से की जमीन बेच दूं। उस रुपये को भी दुकान में लगा दूँ। भला, किस चीज की दुकान करूँगा? कपड़े की। कपड़े की दुकान में आदमी साफ-सुथरा रहता है। इज्जत भी बढ़ती है। मैं थोड़े ही दिनों में यशोदा को सोने से पीली कर दूँ। एक मकान तो मेरा होगा ही। बढ़िया सा मकान। यशोदा और मैं। यशोदा के हाथ कितने मुलायम हैं। मुँह कितना चिकना। अहा, कितनी सुन्दर है यह। फिर मैं क्या इसे बर्तन माँजने दूंगा? नौकरानी काम करेगी। एक नौकर दुकान पर रहेगा। वही रोज घर साग-भाजी लेकर जाया करेगा। मैं रात को इसके लिये मिठाई लेकर आया करूँगा। मैं इसके मुँह में दूँगा यह मेरे। कितना अच्छा होगा उस समय। लेकिन यह कमल?' यहाँ आकर वह फिर अटक गया। जैसे उसके सपनों का महल कमल के ऊपर ही बन रहा हो—'यह यशोदा कितनी बुरी है। कमल को क्यों चाहती है, मैं कमल से गोरा हूँ, मजबूत हूँ। सुन्दर हूँ। एक बार भी तो मेरी ओर नहीं देखती। देखेगी, जब कमल नहीं रहेगा तभी मेरी ओर देखेगी। इसके और है ही कौन? न जाने यह कौन है, यहाँ कैसे आ गई। तो क्या उस साधु ने······साधु तो अब भाग गया उसे जेल हो गई। अब इसका और कौन हो सकता है?' शिवानन्द प्रतिक्षण देख रहा था कि कमल की तबीय खराब हो रही है। सम्भव है आज ही रात को······फिर मैं अमुक-अमुक

को बुलाकर दस बजे तक सब क्रिया-कर्म कर डालूँगा। निश्चिन्त होकर यशोदा से कहूँगा, 'यशोदा, अब मैं तेरा हूँ। यशोदा उस समय मान लेगी। फिर तो मौज ही मौज है।.......'

इधर यशोदा चुपचाप कमल की हालत देख रही थी। कान्ता के सम्बन्ध में पूरी तरह न जानने पर भी वह सोच रही थी। जब कमल ठीक हो जायगा तब इससे पूछूँगी यह कान्ता कौन है ? बोल, तू कान्ता को चाहता है या मुझे ? निश्चय ही अब कान्ता नहीं रही होगी। होगी भी तो क्या, कमल मेरा है; मैं इसे नहीं छोड़ सकती। उस समय रात को देखा तो था। कितना अधीर होकर मुझसे लिपट गया था। जैसे इस संसार में मैं ही इसकी थी, थी क्या हूँ ही। अब इसका है ही कौन ? न जाने इसने क्या कर दिया, जब से इसे देखा है तभी से लगता है जैसे हम दोनों कोई पूरब जनम के प्राणी फिर आ मिले हों। इसका एक-एक अंग, एक-एक आकृति, इसकी एक-एक चेष्टा, हँसना, बोलना जाना-पहचाना लगता है। अब मुझे वह बूढ़ा पति कभी याद भी नहीं आता। सिनेमा की तसवीर की तरह आया और चला गया। वैसे उससे मन कभी नहीं मिला। कभी मुझे ऐसा नहीं लगा कि वह मेरा है। उस औरत (पति की बहन) की दढेल तेल की तरह काली, चिकनी शकल याद करके मुझे उबकाई आती है। कितनी मोटी, कितनी थल-थल, कितनी फटी-सी आँखें, कितनी छोटी नलके की तरह नाक, हल्की रोयेंदार मूँछों से भरे मोटे होठ, जैसे फूंस की पिटारी। मुँह ऐसा चौड़ा और गोल जैसे तबला हो। बाली बुंदों से लदे मुलायम तनेवाले झुके पेड़ की तरह, कान, जैसे किसी ने हमेशा के लिए उन्हें उमेठ दिया है। झोलियों की तरह थल-थल लटकते स्तन। ड्रम की तरह पेट। ओह, कितनी बुरी थी वह। राँड होती हुई भी सुहागिन की तरह रहती। वह रसोइया जो मैला-कुचैला, बदबू भरा रहता था उससे बोलती थी, ऐसे जैसे वही उसका खसम हो। कितनी दुष्टा थी। कितनी मुँहजोर, कितनी बात-बात पर झूठ बोलने वाली। और वह बूढ़ा (पति) खूसट, लकड़ी-सी देह, जैसे श्मशान का कंकाल। आँखें धँसी हुई, मुँह पिचका, गाल तो थे ही नहीं। हड्डियों के कंकाल पर मकड़ी के जाले की तरह मांस। रात को सोता तो लार बहती। नाक बजती

जैसे नफीरी बोल रही हो। हाथ पकड़ता तो लगता मुर्दा जी उठा है। हँसता तो लगता जैसे मौत हँस रही है। ओः कितने बुरे दिन थे।

इसी समय शिवानन्द बोला, "नींद आ गई है।"

"हाँ।"

"क्या जरूरी है जाना शिवानन्द। कमल कहीं फिर बड़बड़ा उठा तो···"

"तो रह जाऊँ। स्वामीजी पूछेंगे····· तो····· जाना जरूरी है। सोचता हूँ कहूँ संन्यास लेने से पहले घर हो आऊँ फिर संन्यास लूँगा। तब मैं लौटकर वहीं जाऊँगा।"

"क्या डर लगता है स्वामीजी से ?"

"और कोई ठिकाना भी तो नहीं है यशोदा।"

यशोदा ने निस्पृह भाव से उसकी ओर देखा तो पाया उसकी आँखों में नशा छा रहा है। वह अपने आपे से बाहर हो रहा है। "रात को रह जाऊँ कपड़े·····।"

"सबेरे आ जायगा ?"

"कठिन है। सबेरे पूजा होती है और भी आश्रम के काम हैं। स्वामीजी आने नहीं देंगे। वे नहीं चाहते मैं बेकाम बाहर घूमूँ। कहते हैं, इससे चित्त स्खलित होता है।"

"क्या मतलब ?"

"साधु का मन ठिकाने नहीं रहता। वह बिगड़ जाता है लेकिन मैं साधू नहीं बनूँगा। कोई दुकान कर लूँगा। कोई काम कर लूँगा।"

"फिर ब्याह क्यों ?"

जैसे उसे धक्का लगा। वह सोचने लगा, यशोदा मजाक कर रही है। उसे एक झुँझलाहट हुई, वह बोल उठा, "तेरी कृपा होगी तो वह भी होगा यशोदा।"

"मेरी !"

"हाँ, और क्या ?"

वह चुप हो गई जैसे कड़ुआ घूँट पिया हो, "तो दुकान ब्याह के लिए करेगा,

क्यों ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया और यशोदा की तरफ देखने लगा। उसे लगा जो वह सोच रहा था वैसा होना काफी मुश्किल है। उसकी तरफ इसकी आँखों में जरा भी मुलामियत नहीं है। उसे कमल के प्रति ईर्ष्या हुई। ऐसा क्या है कमल में, क्या है ? उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया। घृणा से उसने मुट्ठी भींच ली। उसे लगा उसके भविष्य में जैसे सबसे बड़ी बाधा यह कमल है जिसे वह अपना मित्र समझता रहा है। उसे यशोदा पर भी गुस्सा आया। वह चाहने लगा बलात् उसे दबोच ले। कितनी सुन्दर है यह, कितनी कठोर। उसके शरीर में आवेश लहराने लगा लेकिन इसके लिये जो साहस चाहिये उसका अभाव था। वह सीखा भी नहीं था। बिलकुल अनघड़ प्रेम की कला से हीन शिवानन्द कुछ भी न सोच सका कि क्या करने से यशोदा को वह पा सकेगा। कमल सो रहा था। उसे निश्चय हो रहा था यह ठीक हो जायगा। यशोदा झुकी हुई कमल को देख रही थी। जैसे वही उसकी एक मात्र आशा हो। थोड़ी देर बाद उसने करवट बदली, आँखें खोलीं। "शिवानन्द है क्या ?"

"मैं यह हूँ, क्या है ?"

"कुछ नहीं। यशोदा, इसने खाना खाया ?"

किसी ने कोई जवाब न दिया। "यशोदा इसे मेरा कम्बल दे दे। कहीं सर्दी न लग जाय। मैं तो इसे देखने आश्रम जा भी नहीं सकता।" वह उठकर बैठ गया। बोला, "यशोदा, शिवानन्द मेरा निश्छल, भोला मित्र है। मुझे इसी का सहारा है।" उसने हँसकर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"कोई सपना देखा क्या ?" यशोदा पूछ बैठी।

"हाँ, जैसे मैं मर गया हूँ और यह मेरे पास बैठा रो रहा है। रोता ही जा रहा है। मैं चुप करा रहा हूँ पर चुप ही नहीं होता। और तू कह रही है कि शिवानन्द ने ही कमल को मारा है। "न जाने क्या सपना था ?" वह हँसने लगा।

शिवानन्द का अन्तर जैसे कमल ने छू दिया हो। उसे लगा शायद कमल ने उसका मन पढ़ लिया है।

वह भयभीत सा हो गया। बोला कुछ भी नहीं।

"मरना देखना अच्छा है कमल। चल ठीक हो गया।"

रात हो रही थी। मना करने पर भी कमल ने अपना कम्बल शिवानन्द को दे दिया। वह चला गया। यशोदा ने कहा, "तेरा सपना गलत नहीं है। मुझे ऐसा लग रहा था जैसे यह मेरे लिए तुझसे ईर्ष्या करता है, मुझे घूर-घूर कर देखता था।"

"स्वाभाविक है यशोदा, तू क्या कम सुन्दर है। हर आदमी चाहेगा कि तेरी कृपा उस पर हो।"

"और तू।"

"मैं, मैं तो हूँ ही तेरा, तेरा।" कहकर कमल ने यशोदा का हाथ चूम लिया। उसे लग रहा था जैसे वह यशोदा को खुश करने का दिखावा कर रहा हो। उसके हृदय के किसी भी कोर में यशोदा के प्रति आबद्ध भाव नहीं है। एक तन्तु है जिसमें निश्छल स्नेह है। उसकी दया, ममता के प्रति आभार, आश्वासन, बस, इतना ही।

इन दो दिनों में यशोदा को लग रहा था जैसे उसने कमल का हृदय जीत लिया है। अब वह उसी का है। बुखार उतर गया था। यशोदा ने उसके कपड़े उतारे, धोये। दाढ़ी बढ़ रही थी। कमल ने दाढ़ी बनाई। यशोदा ने गरम पानी से उसकी देह पोंछ दी। हल्का खाना खिलाया। पास बैठकर सिर थप-थपाने लगी। कमल आज्ञाकारी की तरह लेटा था। अब वह स्वस्थ था। पर मन में अंतःसंघर्ष चल रहा था। जैसे जबर्दस्ती कोई प्रकाश झाँक उठता हो। उसे यशोदा प्रिय थी। एक बार उसके जी में आया, कह दे, यशोदा, तू मुझे बहन सी प्यारी है।" लेकिन यशोदा न जाने क्या समझे, किस रूप में उसकी बात को ले। उधर यशोदा तन्मयता से उसकी सेवा कर रही थी। बार-बार आवेश में आकर उसका माथा मुँह चूम लेती, उसकी देह पर हाथ फेरती। कमल सोच रहा था, यह सब क्या बहन बनने के लक्षण हैं। वह जान रहा था, वह जाल में फँस रहा है, सौन्दर्य के जाल में। यह न उसके लिये हितकर है न यशोदा के लिए। वह यशोदा को पत्नी नहीं मान सकता। क्यों, इसका उत्तर वह खुद नहीं दे पाता

था। उसके भीतर कोई रह-रहकर तड़प उठता था। स्वामीजी की बातें सुन कर वह सोचने लगा था, वह एक महान् त्यागी, महात्मा बनेगा। उसे कुछ करना है, कुछ बनना है, क्या बनना है कैसे बनना है यह वह नहीं जानता था। इन पिछले दिनों उसके मन का प्रवाह एक ही ओर था कि यों ही मर जाने के लिए वह नहीं आया है। इसी समय यशोदा हथेली पर सिर रखकर उसके साथ लेट गई और सिर पर हाथ फेरने लगी। कमल की रजाई उसने अपने ऊपर डाल ली। कमल फिर भी निश्चेष्ट पड़ा रहा। थोड़ी देर बाद उसने करवट बदल ली। उसे लगा जैसे यशोदा उसी अवस्था में सो गई है। कितनी विवश है यह नारी? और मैं कितना मूढ़। क्या करूँ? वह उठ बैठा, और यशोदा को देखने लगा। एक आवेग उसके भीतर जागा। उसने यशोदा को ठीक तरह से लिटा दिया। उसके मुँह पर हाथ फेरकर उसने उसका मुँह चूम लिया। वह अपने से युद्ध कर रहा था। भयंकर युद्ध। एक बार जी में आया मानसिक संघर्ष को ढीला छोड़कर वह इस नारी को आत्म समर्पण कर दे। अपने को न्योछावर कर दे। इसके लिए ही उसने यशोदा के मुँह पर हाथ फेरा। किन्तु······किन्तु ······वह आगे न बढ़ सका। एकदम उसे अपने पर ग्लानि हुई। उसका अन्तर उसे धिक्कारने लगा। वह उठकर बैठ गया। रजाई उसने यशोदा पर डाल दी। एक तीव्र विरक्ति उसके भीतर जागी।

वह उठा और धीरे से दरवाजा भिड़ाकर बाहर निकल गया। दौड़ता हुआ वह स्वामीजी के आश्रम में पहुँचा। स्वामीजी को उसने सारी कहानी सुनाई तो वे काफी देर चुप रहने के बाद बोले, "तू ही सच्चा संन्यासी है कमल।". उनसे रहा न गया। उसकी पीठ थपथपाकर बोले, "मैं ऐसे ही संन्यासी की खोज में था।" वे कमल की ओर देखते रहे जैसे उसे पढ़ रहे हों। कमल भी जैसे एक ग्रन्थ है, एक पुस्तक है, जिसमें शैशव, यौवन के दो परिच्छेद पूरे हो गये हैं। उनमें कई-कई अध्याय हैं, हर अध्याय में उत्थान-पतन, रस, रूप, उत्साह, निराशा-आशा की कहानियाँ हैं, रोचक कहानियाँ। कहीं विश्वास गिरे हुए को उठा रहा है, कहीं सौन्दर्य विश्वास के शिखर पर चढ़े कमल को नीचे ढकेल देता है। वह फिर उठता है, फिर गिरता है। फिर चलता है, फिर रुकता

है । स्वामीजी बहुत देर तक उसके अन्तरंग को पढ़ते रहे । वह नीची निगाह किये अपने में खोया सा बैठा था । उसने स्वामीजी की ओर देखा तो लगा जैसे यह व्यक्ति उसके भविष्य का दर्शन कर रहा है । उसकी (कमल की) आँखों में विजय की एक चमक थी जैसे कोई विजय पाकर लौटा हो। स्वामीजी ने सूर्य की रोशनी में उसकी आँखों के मार्ग से सब कुछ पढ़ डाला । बोले,

"त्याग सबसे महान् प्राप्ति है कमल । तुमने त्याग को समझा किन्तु वह अभी प्रारम्भ है 'प्राप्ति' इसके बाद मिलेगी ।"

"तो फिर।"

"चिन्तन करो ।"

"किसका ?"

"अपना । अपनी शक्ति का, अपनी आत्मा का, वहीं से तुम्हें प्रकाश मिलेगा । इससे अधिक मैं कुछ नहीं बता सकता । मैं स्वयं अँधेरे में हूँ। चलना तुम्हें स्वयं पड़ेगा । राममोहनराय, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द ने स्वयं अपना मार्ग खोजा। उन्हें उनकी आत्मा ने मार्ग दिखाया । भीतर मार्ग ढूँढो । तुम्हें शान्ति मिलेगी, ज्योति मिलेगी । कोई भी महान् कार्य बिना भीतर के प्रकाश के नहीं होता । जाओ मार्ग ढूंढो ।

कमल स्थिर होकर बैठा रहा । उसके भीतर स्थिरता थी । अन्तरंग में व्याप्त चेतना के प्रकाश से वह भर उठा । आनन्द प्राप्ति की चेष्टा उसमें जागरूक हो गई। उस समय उसे न शिवानन्द का खयाल था न यशोदा का। अपने भीतर ही जैसे रमने लगा । वह उठकर खड़ा हो गया। बहुत देर निस्तब्ध खड़ा रहा । अन्त में बोला—

"जाता हूँ।"

"हाँ, तुम्हारा मार्ग शुभ हो। जाओ।"

कमल मंद-मंद गति से चला। स्वामीजी लक्ष्मण झूले के मार्ग तक पहुँचाकर रुके । वे उसकी गति देख रहे थे । किन्तु वह बिना इधर-उधर देखे अपने में लीन चला जा रहा था । पक्षियों ने चहचहाकर उसका स्वागत किया । सूर्य उसके सामने प्रकाश बिखेरता चल रहा था । थोड़ी देर में ही वह आँखों से ओझल

हो गया। उसके पैरों के निशानों की धूल को पिछले इतिहास की तरह हवा ने एक कर दिया। कहीं भी अब उनका निशान न था।

कमल स्वामीजी से आशीर्वाद पाकर लक्ष्मण झूले की तरफ अपने में खोया चला जा रहा था। जैसे वह अपने भीतर से ही कुछ पाना चाहता हो। चलते-चलते उसने पुल पार किया और दक्षिण के किनारे बने मन्दिरों में एक मन्दिर के पास बड़ के पेड़ के नीचे जा बैठा। पास ही एक पतला-दुबला सफेद-पोश आदमी जमीन पर लेटा अफीम पी रहा था। नौकर सामान जुटा रहा था। वह व्यक्ति अफीम पीने के बाद थोड़ी देर तक नशे में झूमता फिर लेटकर पीने लगता। बीच-बीच में नौकर के द्वारा दूध या मलाई ले लेता। कमल यह सब देखता रहा। यह पहला ही मौका था कि उसने इस तरह आग जलाकर किसी को अफीम पीते देखा। वह बहुत देर तक देखता रहा। उसने अनुभव किया अपने को भूल जाने का यह सुलभ तरीका है। व्यक्ति की आँखें लाल हो रही थीं। पिचका, कान्तिहीन मुख, ठठरी-सी देह जैसे हड्डियों के ढाँचे को किसी ने सफेद कपड़ों में सजा दिया हो। नौकर बर्तन में से मिठाई, दूध, मलाई निकालकर देता और वह व्यक्ति खा लेता। बन्दर पेड़ों पर बैठे जैसे यही सब देख रहे थे। और एक बार मौका पाकर वे मिठाई, जो उसके सामने पत्तों में रखी थी झपट कर ले गये। पास ही कुछ साधु धूनी रमाये भक्तों से ज्ञान चर्चा कर रहे थे। बीच-बीच में गाँझे, सुल्फे का दम लग रहा था। एक आदमी जरा दूर बैठा गीता पाठ कर रहा था। कुछ लोग मन्दिर में रामचरितमानस ऊँचे स्वर से गा रहे थे। कमल के लिये यह कुछ भी नया न था। वह उठा और ऊपर की ओर गंगा के किनारे-किनारे चल दिया। पहाड़ों के बीच गंगा के ऊपर बनी पगडण्डियों को पार करता वह फूल चट्टी, फिर मोहन चट्टी पहुँच गया। कहीं गंगा की धारा पतली कहीं चौड़ी होकर बह रही थी। किनारे-किनारे बनी पगडण्डियों के एक ओर नीचे खाई में गंगा और दूसरी ओर झाड़ियों-लताओं से लदे पहाड़ गर्व की तरह ऊँचे खड़े थे। पहाड़ों के बीच

मैदान में यह स्थान था। दस-बारह बिखरे घर, दो-तीन दुकानें, एक छोटी-सी धर्मशाला। साल, आम, पीपड़, बड़ के पेड़, झरबेरी, करौंदे की झाड़ियाँ चारों ओर मालिक की तरह अपनी-अपनी जमीन पर कब्जा किये थे। जगह-जगह गाय-बैलों का गोबर पड़ा था। कमल गंगा के किनारे एक मन्दिर में गया।

उस समय शाम हो गई थी। पहाड़ों की घाटियों में रात जल्दी हो जाती है। दिन रहते भी ऐसा लगता है मानों सूर्य देवता अपनी सुसराल आये हों। वह बड़े नखरे से आते और जल्दी ही चले जाते। जमाई के आने पर जैसे सुसराल में चहल-पहल हो जाती है इसी तरह उसके जाने पर चैन की साँस की तरह सारा गाँव शान्त पड़ा था। केवल मन्दिरों में सूर्य के जाने के बाद आराम के घण्टे बज रहे थे। होते-होते पहाड़ों ने सारे गाँव पर काली चादर डाल दी जैसे लोगों को ओढकर सोने का आदेश दे रहे हों।

घरों में बीमार आदमी की क्षीण आशा की तरह हल्के मुर्दने दिये जलने लगे। लोगों का चलना-फिरना कम हो गया। दुकानदार ऊँघने लगे। लोग कपड़ों में लिपटे ऐसे बैठे थे जैसे बूढ़े आदमी को कुछ भी संसार में करना बाकी नहीं रहा हो। पेड़ों पर बन्दरों की चींचीं सुनाई दे जाती। गायें अब भी कहीं-कहीं विचर रही थीं। कुछ पेड़ों के नीचे या मकान-दुकान की छाया में विश्राम करने की तैयारी में जुगाली करती जगह खोज रही थीं। कभी बच्चों या बूढ़ों की पुकार सुनाई दे जाती। इस शान्ति में गंगा का स्वर और भी ऊँचा हो गया था जैसे वह ज्यादा नाराज हो गई है और लोग चुपचाप अपराधी की तरह उसका गर्जन-तर्जन सुन रहे हों। मन्दिरों के ठाकुरजी आरती के बाद खड़े-खड़े सोने की तैयारी कर चुके थे। पट बन्द हो रहे थे। पुजारी इधर-उधर खिसक गये थे। कमल अब भी बैठा था। भूख उसे लग रही थी। कभी कभी वह सोचता, वह कहाँ जा रहा है। क्या है इधर। लेकिन एक शान्ति थी। सर्वत्र विराजमान शान्ति। वह शान्ति की खोज में जा रहा है। मन की शान्ति की खोज में, आत्मा की शान्ति की खोज में। इसी समय मन्दिर से दर्शन करके लौटते एक आदमी ने उसे देखा तो पूछा, "कौन है?"

"एक यात्री ।"

"अकेला है ?"

"हाँ ।"

व्यक्ति ने गौर से पास आकर देखा तो बोला, "साधु है ?" उसने कोई उत्तर नहीं दिया । "कुछ खाया है ?"

"नहीं ।"

"भोजन करेगा ?"

"कर लूँगा ।"

"तो चल ।"

वह उसे धर्मशाला में ले गया । कमल ने खाया और वहीं एक कोने में बैठ गया । वह निरन्तर सोच रहा था वह क्या करने जा रहा है ? कहाँ जा रहा है ? कभी उसे लगता यही जगह हैं जहाँ लोगों ने तप करके ज्ञान पाया है, आत्म-प्रकाश पाया है । शायद उसे भी कुछ मिले, वह भी कुछ जान सके । उसके भीतर अन्तरमंथन हो रहा था । वह निरन्तर ऊपर ही ऊपर बढ़ता जा रहा था । व्यास घाट, देव प्रयाग, श्रीनगर, ढंढ प्रयाग, गुलाब चट्टी, नन्द प्रयाग, कर्ण प्रयाग, पीपल चट्टी, चमोली, पीपल कोटी, जोशीमठ और फिर बदरीनारायण तक पहुँच गया । विरक्त साधु की तरह वह दिन भर घूमता । और कोई अच्छा स्थान पाकर रात बिता देता । आस-पास के बनों, पहाड़ों और गंगा के तट पर दिन-दिन भर बैठा रहता । बदरीनारायण से ऊपर वसुधारा तक घूमते हुए उसे सभी तरह के लोग मिले । सभी को उसने देखा । बदरीनारायण के साधुओं के आश्रमों में भी वह गया । उसने देखा प्रायः सभी साधु आत्मरत हैं । उन्होंने इतने दिन यहाँ पर रहकर क्या पाया है, जब वह उनसे पूछता तो कुछ भी न जान पाता । वहीं एक खाली गुफा में उसने डेरा डाला । बीच में अलकनंदा बह रही थी । एकान्त और निर्जन प्रदेश । सब ओर शान्ति । उसका मन रमा । भूख लगने पर वह औरों की तरह माँगकर खा लेता । सारा प्रदेश नये प्रकार की बन-सुगन्धि से महकता रहता । बन फूल और रंग-बिरंगी हरियाली के कपड़े पहने पर्वत सेनापति की तरह ऊँची गर्दन किये

दिखाई देते । कुछ दूर के पहाड़ निर्वस्त्र साधु की तरह तप करते लगते । भूरे रंग की मिट्टी में चमकती सूर्य की किरणें ऐसी लगतीं जैसे राशि-राशि अभ्रक या इसी प्रकार के रज-कणों के मुकुट पहना रही हों। विरक्त साधु के हृदय की तरह स्फटिक-सा जल दूध से होड़ करता था ।

सामने कतार में खड़े पहाड़ बर्फ की झालरदार पोशाक पहने खड़े दिखाई देते । किन्नर और गंधर्वों के उस प्रदेश में हवा थिरककर गाती-नाचती दिखाई देती । जल की लहरियाँ ताल देतीं । वनराजि झूमकर प्रशंसा करतीं । वंश वृक्षों से नफीरी बजती । एक विस्तृत आनन्द चारों ओर लहराता । जंगली पशुओं के स्वतन्त्र विचरण से लगता जैसे प्रकृति ने रोयेंदार मोटे कपड़े पहनाकर चिन्ता-मुक्त कर दिया है । चमरी मृगों, मस्त और मन्द चाल से चलने वाली बकरियों, गायों से वह प्रदेश ऐसा लगता जैसे प्रकृति के अलावा और किसी का बोलना यहाँ मना है । बर्फीले पहाड़ों पर सूर्य की किरणें उतरकर अठखेलियों में कई इन्द्र धनुष बनातीं और मिटा देतीं । लगता जैसे कई प्रकार के रंगीले कपड़े पहनाने पर भी उनका जी नहीं भर रहा है । ऊपर जाने पर तालाबों में बर्फ के तौदे घाटों का निर्माण करते । सारे पानी पर जैसे सफेद चादर किसी ने बिछा दी है । इतना सौन्दर्य, इतनी शान्ति, इतनी निर्जनता, इतनी नीरवता देखकर कमल का मन प्रफुल्ल हो उठा । उसने कल्पना में देखा जैसे यहीं स्वर्ग लोक है । कितना शान्त, कितना मनोरम, कितना रमणीय । वह माणा के किनारे बैठा धूप-छाया का खेल देखता । कभी-कभी ध्यानस्थ हो जाता । निश्चल मन में जागरण की तरंगें उठतीं । उसके भीतर एक प्रकाश-सा फैल जाता । वहीं दूर एक साधु मिले, वृद्ध साधु । दाढ़ी, जटा बढ़ी हुई, छाल लपेटे वे रहते थे । आँखों में शान्ति, अचल मूर्ति की तरह वे अपने स्थान पर बैठे थे । न वे किसी से बोलते, न कुछ माँगते । गम्भीर मनस्वी की तरह आत्मलीन उस साधु को देख कर कमल उनके पास जा बैठा । बहुत देर चुप रहने के बाद उन्होंने कमल से कहा—

"यहाँ आये हो ।"

"जी । बड़ी शान्ति है ।"

"हाँ, शान्ति तो है। नीचे कैसा है ?"

"नीचे ?"

"मैदान में, देश कैसा है ? अभी अंग्रेजी राज ही है ?"

"हाँ।"

"अभी गये नहीं ?"

"सारा देश अंग्रेजी दासता की सुरा पीकर मस्त है।"

"अच्छा ?"

"जी।"

साधु चुप हो गये। फिर थोड़ी देर बाद बोले, "तुम क्या करते हो ?"

"कुछ नहीं।"

"तो कुछ करो।"

"क्या करूँ ?"

साधु हँसे, लेकिन उनके मन में जैसे एक पीड़ा हो रही हो। एक दर्द-सा उठ रहा हो। मन के भावों को दबाकर बोले, "एक मुर्दा जलाने के लिए दस मन लकड़ी चाहिए। एक लकड़ी से कुछ नहीं होता।"

कमल को लगा जैसे इस साधु के भीतर बहुत सा गोप्य है। उस बुढ़ापे में भी उनके शरीर के पुट्ठे काफी कड़े और मजबूत थे। नाक के पास तक बालों से उनका मुँह भरा हुआ था।

"जाना तो पड़ेगा। देर लगेगी।"

कमल ने कुछ नहीं समझा पूछ बैठा—"क्या महाराज, किसे जाना पड़ेगा ?" साधु ने आकाश में देखा जैसे कुछ पढ़ रहे हों।

"परिस्थिति उन्हें भेजेगी। फिर भी प्रयत्न तो करना चाहिए।"

कमल चुप रहा। उसने ध्यान से देखा कि साधु के माथे पर कटा हुआ निशान है। भौंहें भी बीच से कट गई हैं। इसी समय पास रखा एक कंद का टुकड़ा देकर बोले—

"ले खा ले।"

"अभी तो भूख नहीं है। रख लेता हूँ।"

कन्द भुना हुआ था। सुगन्धि उठ रही थी। उसकी इच्छा हुई खाले। साधु चुप हो गये। धीरे-धीरे जैसे समाधि में बैठ गये हों। कमल को साधु की सारी बातें याद आईं। वह "परिस्थिति उन्हें भेजेगी।" इस वाक्य पर आकर अटक गया। तो क्या अंग्रेज अपने आप चले जायेंगे? यह क्या कहा इन्होंने? उसे लगा—'पहुँचे हुए साधु हैं। न जाने कब से यहाँ है?" वह बहुत देर उन्हें देखता रहा, लेकिन वे जो मौन हुए तो फिर आँख ही नहीं खोली। कमल लौट आया। साधु की बातें सोचता रहा।

कभी-कभी उस निर्जन शान्ति में उनका मन ऊब जाता। वह किसी से बोलने को बेचैन हो उठता। पर वहाँ कौन था। जो दो-एक साधु थे। उनमें एक मौनी थे। दूसरे योगी। वे भी बहुत कम बोलते। ये साधु कभी कभी-बात करते, फिर चुप हो जाते। माणा के नीचे तराई में काफी घने जंगल में भी कुछ साधु थे। कभी कोई यात्री आता तो घूम-धाम कर जल्दी ही लौट जाता। कमल के मन में बार-बार एक ही प्रश्न उठता कि वह क्या करे। निरन्तर सोचते रहने पर भी कोई उत्तर उसे नहीं मिल पा रहा था।

एक दिन अचानक वह साधु बाबा की कुटी में गया। कमल को देखा तो बोले।

"अभ्यास तो चलता है न?"

"मन में शान्ति नहीं है।"

"तो नीचे जाओ।"

"क्या करूँ?"

"कुछ भी करो। वही बहुत है।"

उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया।

"नहीं समझे?" साधु ने पूछा।

"जी नहीं।"

"यह योग और ध्यान सबके लिए नहीं है, समझे?"

"मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा है।"

"तुम्हारा यह काम नहीं है। देश की सेवा करो। देश से विदेशियों को

बाहर निकालो। देखते हो मेरे केवल एक ही पैर है।"

"देखता हूँ।" उसने ध्यान से देखा सचमुच उनके एक पैर है।

"देश का काम सबसे बड़ा काम है।"

"आपकी टाँग······।"

"हाँ, इनको भगाते मेरी एक टाँग जाती रही। बारह घाव मुँह पर लगे। बच गया।" कमल की जैसे आँख खुली। वह सोचने लगा—'तो क्या यह कोई क्रान्तिकारी हैं?' अब उसे स्पष्ट हो गया।

"आप·····।"

"बनारस के विद्रोह का एक व्यक्ति।"

"आपका नाम·····।"

"नाम कुछ भी नहीं। कुछ कर नहीं सका न?"

"फिर भी। यदि आपत्ति न हो तो कहिये।"

कमल की समझ में आया। निश्चय ही यह चेतसिंह या उनके साथी होंगे।

तुम्हें मालूम है राजा चेतसिंह अंग्रेजों से हारकर मरे नहीं थे। उस लड़ाई में मेरी अवस्था पच्चीस वर्ष की थी।

साधु चुप थे। वे कमल के मुँह पर उठने वाले भाव पढ़ रहे थे। वह एक तरह से अपने में खो गया। उसने हिसाब लगाया निश्चय ही इनकी उमर डेढ़ सौ से ऊपर ही होगी। १७८०-८५ में चेतसिंह ने विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था।

वृद्ध साधु मौन हो गये। जैसे उस समय का सारा दृश्य उनकी आँखों में घूम रहा हो। आँखों में शान्ति थी। दाढ़ी के बाल हवा से हिल रहे थे। सर्दी से शरीर का चमड़ा और भी कड़ा हो गया था। छाल लपेटे रहने पर भी ऊपर शरीर का भाग खुला। सारा शरीर झुर्रियों से भरा होने पर भी सशक्त। हाथ, पैर, छाती, पीठ, सफेद बालों से भरी थी। थोड़ी देर बाद उन्होंने आँखें उठाईं और कमल को देखने लगे। कमल चुप था फिर भी वह उन्हें जब-तब देखकर जानना चाहता था कि वह कौन है, चेतसिंह के विद्रोह से उनका क्या सम्बन्ध है? अन्त में उसने पूछ ही तो दिया—

"यदि आपत्ति न हो तो बताइये आप कौन हैं ?"

साधु थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "क्या बताऊँ, कुछ कर सका होता तो बताता भी।" मूँछों भरे मुँह से उनके शब्द स्पष्ट नहीं थे। लगता था जैसे दाँत भी नहीं हैं। अस्पष्ट शब्द मूँछों से बाहर होने पर और भी अस्पष्ट हो जाते। चेतसिंह ने मेरा कहना नहीं माना। हेस्टिंग बनारस में चारों तरफ से घिर गया था, मैंने राजा से कहा,—"यह अवसर है हमला कर दो, इतना बड़ा अँग्रेज़ मर जायगा तो और लोग भाग जायेंगे, पर वह कमजोर था। गौनहर का लड़का था न ?"

"गौनहर कौन ?"

"गौनहर एक जाति है जिसकी औरतें नाचती-गाती हैं। काशी नरेश ने एक सुन्दर स्त्री देखकर उसे महल में डाल लिया था। चेतसिंह उसी का लड़का था। राजा के मरने पर उसने गद्दी हथिया ली। वह चाहता था राज्य उसे मिल जाय। उसने अवध के नवाब और अँग्रेज़ों से यह बात मनवानी चाही। वह कोई लड़ता थोड़े ही। हमीं लोग चाहते थे वह अँग्रेज़ों से लड़े। पर वह लड़ भी तो नहीं सका। उसने काशी का और अपनी सेना का नाश करा दिया।"

"आप कौन थे उसकी सेना में ?"

"जगतसिंह।"

"जगतसिंह सेनानायक" कमल ने पूछा। तो क्या यह जगतसिंह है ? उसने पढ़ा था जगतसिंह चेतसिंह को छोड़कर काशी नरेश की लड़की की सन्तान से मिलकर अँग्रेज़ों से लड़ना चाहते थे। वहाँ भी उन्हें पूरी सफलता नहीं मिली थी। फिर भी वे बहादुर थे। वीर थे।

"क्या आप समझते थे चेतसिंह लड़ता तो अँग्रेज़ों की फौज को हरा देता ?"

"एक बार तो निश्चय ही।"

"फिर क्या होता।"

"वीर आदमी वर्तमान को देखता है, उसी से उसका भविष्य बनता है। अगर सब लड़ते तो अँग्रेज़ आते ही क्यों। उस समय हमारा देश नपुंसकों का

देश था। एकला तो थी ही नहीं। सब स्वार्थी थे। सब खुशामदी, अवसर से लाभ उठाने वाले।

"तब आपको क्या पड़ी थी जो लड़ते ?"

साधु बाबा कुछ सोचते हुए बोले—"तुम नहीं जानते जब समाज नपुंसक हो तो क्या व्यक्ति को भी नपुंसक हो जाना चाहिए ? वही तो समाज को बदल सकता है। उस समय अँग्रेजों के अत्याचार से देश की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। गाँव के गाँव जला देते। स्त्रियों, बच्चों को बर्छी की नौकों पर उछालकर मार डालते। घरों में घुसकर स्त्रियों पर अत्याचार करते। शराब के नशे में धुत्त वे लोग उनसे व्यभिचार करते, फिर मार डालते। मेरी बहन, के साथ, जो गर्भिणी थी और गाँव में रहती थी, अँग्रेज़ सेना ने जो अत्याचार किया वह जब याद करता हूँ तो······जाने दो, क्या कहूँ। मेरे देखते-देखते मेरे गाँव के परिवार को मार डाला। घर में आग लगा दी, और बाहर खड़े-खड़े हँसने लगे। सेना के लोग पकड़कर लोगों को लाते और उन्हें आग में झोंक देते।"

"उस समय आप कहाँ थे ?"

"मैं एक पेड़ पर छिपा देख रहा था। हमारी सेना के प्रायः सारे लोग मारे गये थे, कुछ भाग गये थे। सैकड़ों की फौज में मैं अकेला। जब मुझसे न रहा गया तो मैं अँग्रेज सेना के अफसर पर पेड़ से कूद पड़ा और तलवार से उसका गला काट दिया। उस समय मैंने कम से कम बीस अँग्रेज़ मारे होंगे। न जाने मुझ में उस समय कितना बल आ गया था। अकेला था कहाँ तक मारता। मैं मारता-मारता भाग रहा था। अचानक लोग पीछे दौड़े। मैं भाग रहा था। पास ही झाड़ियों में घुस गया। कँटीली झाड़ियाँ थीं। मेरा सारा शरीर छिल गया। उस समय रात थी। मैं झाड़ियों से जैसे ही निकला कि दो अँग्रेज़ उधर आते दिखाई दिये। शायद वे गाँव जा रहे थे। उन्होंने मुझे देखकर ललकारा, मैंने उनमें से एक को मार दिया दूसरे को घायल कर दिया तभी मेरी टाँग कट गई। मैं गिर पड़ा, फिर भी मैं तलवार के सहारे चलता पास के एक गाँव में पहुँचा। रातों-रात अपने एक साथी को लेकर चुनार के पहाड़ों में जा छिपा। अब बहुत याद नहीं है। बहुत कुछ भुला दिया है, कुछ भूल भी गया

हूँ। क्या ही अच्छा होता······कि हम······ ।"

बात करते साधु बाबा की आँखें चमकने लगीं। वे चुप हो गये। जैसे बोलते-बोलते थक गये हों।

गुफा के बाहर पत्थर समतल करके चबूतरा बना लिया गया था। बाबा वहीं पूर्व की तरफ मुँह किये मोटे वल्कल के एक टुकड़े पर बैठे थे। पहनी हुई वल्कल की लँगोटी घुटने से ऊपर होने पर भी चुरमुरा गई थी।

उस समय सूर्य का प्रकाश भर दिखाई देता था, बाकी धूप ऊपर पहाड़ पर चमक रही थी। पास ही सोते का जल कल-कल नाद करता वह रहा था। बन की सुगन्धि ठण्डी होकर हवा में जम गई थी। उत्तर की तरफ सामने की चोटियों पर बर्फ के नये रंग बन-बिगड़ रहे थे। कभी-कभी जंगलों से कुछ खड़-खड़ की आवाज आती। बन पक्षी पंख फड़फड़ाकर उड़ते तो एक खलभली-सी मच जाती। बाकी सब ओर शान्ति थी, अखण्ड शान्ति। बाबा अचल, मौन थे, जैसे उन्हें अब कुछ भी कहना शेष नहीं है। उनके जीवन की निराशा ने मजबूर होकर उनकी शक्ति को दबा दिया है। बहुत देर बैठने के बाद कमल बोला—

"तो आप यहाँ कैसे आ गये, कब से हैं ?"

"वर्ष मास याद नहीं है। मेरे पास क्या पंचांग है ?"

"फिर भी ?"

"सौ वर्ष से ऊपर तो हुआ होगा।"

"सौ वर्ष से।"

"अधिक भी हो सकता है।"

"आपकी उम्र तो फिर डेढ़ सौ से भी ऊपर होगी।"

"हो सकती है। बहुत समय तक तो मौन ही रहा। पहले दो बार भोजन किया फिर एक बार। पचास-साठ वर्ष से वह भी छोड़ दिया। अब कभी-कभी कन्द भूनकर खा लेता हूँ। कन्द से एक सप्ताह तक भूख नहीं लगती। कुछ कन्द मास में एक बार खा लेने पर भूख नहीं लगती।"

"अब आपकी क्या इच्छा है ?"

"कोई नहीं, अब क्या इच्छा होती। भगवान इच्छा करते हैं। मैं कुछ नहीं

करता।" बाबा मौन हो गये। आँखें बन्द कर लीं।

कमल बहुत देर तक बैठकर लौट आया। उसकी जगह वहाँ से दो फर्लांग होगी। मार्ग में एक मौनी बाबा थे। कमल वहाँ भी कभी जाता था। आज वह बाबा की कहानी सुनकर सीधा अपनी जगह लौट गया।

उत्तर की तरफ बसे माणा गाँव में उनका काम होता है। तिब्बत से व्यापारी उधर उतरकर ऊन लाते हैं और आवश्यक सामान ले जाते हैं। माणा से आगे सरस्वती अलकनन्दा का संगम है। उसे लोग केशव प्रयाग कहते हैं। वह बहुत रमणीक स्थान है। कमल कभी-कभी उसके किनारे जा बैठता।

बाबा जगतसिंह का इतिहास सुनकर उसे लगा जैसे बहुत से साधु जीवन से निराश होकर यहाँ आ बसे हैं। जैसे अब उन्हें कुछ भी करने को शेष नहीं रह गया है। तो क्या आत्मचिन्तन, आत्मज्ञान विवशता है? एक तरफ मनुष्य की बुद्धि के विस्तार के साथ जीवन की उपयोगिता बढ़ रही है। रेल, तार, हवाई जहाज ऊँचे-ऊँचे भव्य विशाल मकानों पुलों का विस्तार हो रहा है। मनुष्य ने दिनों को घण्टों, घड़ियों, में समेटकर रख दिया है। समुद्र छान डाले हैं। पहाड़ों की ऊँचाई को मुट्ठियों में बाँध लिया है। कौनसा काम है जो उससे, उसकी शक्ति से अशक्य है, फिर भी लगता है जैसे सन्तोष उसे नहीं है। ताकतवर जातियाँ अब भी कमजोरों को रौंधे, पीसे जा रही हैं। भिन्न-भिन्न साधनों, सुखों के होते हुए भी उसकी तृष्णा का अन्त नहीं है। जैसे पुराना शराबी शराब के गिलास पर गिलास पीने पर भी तृप्ति नहीं पाता। सुख पाने की लालसा में संसार का कोई कोना कोई जगह नहीं है जिसे मनुष्य ने छान न डाला हो फिर भी सन्तोष, मनुष्य की एक सीमा नहीं बन पा रहा है। यह सब एक तरफ है। दूसरी ओर यह साधु जीवन है। निश्चय ही पहले की अपेक्षा दूसरे में सन्तोष है, शान्ति है, सुख है; लेकिन यह सुख, शान्ति व्यक्तिगत है, समाजगत नहीं।

वह इसी प्रकार सोचता रहा। बाबा का जीवन निराशा का जीवन है। हार का, पलायन का। हो सकता है अब वे निराशा का अनुभव न करते हों। मानते हों वास्तविक सुख, शान्ति उन्होंने पा ली है। निश्चय ही शान्ति तो है, नहीं तो सौ-डेढ़ सौ साल तक कोई भी इस तरह बैठा नहीं रह सकता।

साधु बाबा अपनी गुफा से बहुत कम बाहर निकलते। वहीं वे मौन रहकर आत्मचिन्तन करते रहते। दूसरे दिन दोपहर जब वह उनकी तरफ गया तो देखकर डर गया। भूरे रंग के रीछों ने उन्हें चारों ओर से घेर रखा था। वे उनके शरीर से सटकर बैठे थे। उनमें कभी कोई उन्हें सूँघता। कमल ने दूर से देखा तो ठिठक गया। इच्छा हुई लौट जाय लेकिन डर था कहीं वे हमला न कर दें। रीछों ने कमल को देखा वे वैसे ही बैठे रहे। जानवरों में रीछ सबसे अधिक जड़ पशु है, उसमें कुत्ते, घोड़े या और पशुओं की तरह समझ नहीं होती। कमल ने बाबा को इस तरह घिरे देखा तो वह स्तब्ध-सा रह गया। उसे लगा बाबा सचमुच वीतराग हैं। यही कारण है पशु भी इनसे इतना प्रेम करते हैं। उसमें साहस भरा और वह आगे बढ़ा। रीछ अब भी वैसे ही बैठे थे। एक रीछ का बच्चा चबूतरे पर घूम रहा था। उसने कमल को देखा तो चौकन्ना हो गया। कमल पास गया तो बाबा ने आँखें खोलीं। वे बोले,

"यही मेरापरिवार है। आओ।" वे रीछों से बोले, "जाओ खेलो, खाओ।" रीछों के शरीर पर उनके हाथ फेरते ही वे उठे और बाबा को सूँघकर चबूतरे से उतर गये। जैसे आज्ञाकारी पुत्र हों। कमल ने उनके पैरों पर सिर झुका कर प्रणाम किया और बैठ गया।

"मैं तो डर गया महाराज।"

पशु भी हृदय देखते हैं। तुम्हारे मन में उनके लिए खोट न हो तो वे कुछ नहीं कहते। कभी-कभी और भी जानवर आ जाते हैं। मैं उनको सन्तोष का पाठ पढ़ाता हूँ। वे चुपचाप चले जाते हैं। नीचे के बन के सभी पशु मुझसे मित्रता का भाव रखते हैं। बहुत दिन हुए सरस्वती नदी में स्नान करके निकला तो चढ़ते हुए पैर फिसल गया। एक पैर ही तो है। नीचे गिर पड़ा। चोट लग गई। बेहोश हो गया। इसी समय देखता हूँ किसी ने मुझे उठा लिया और कंधे पर लादकर गुफा के सामने लाकर लिटा दिया। वह यही बड़ा रीछ था।"

"क्या आपको जानता है?"

"हाँ, बहुत दिनों से मिलता रहता है। जब मिलता है तब मैं मुसकराकर हाल-चाल पूछता हूँ। शरीर पर हाथ फेरता हूँ। यह मुँह उठाकर जैसे मुझे

नमस्कार करता है । इसके बच्चे मुझसे लिपट जाते है । यही मेरा परिवार है। एक बार मैं बीमार हो गया तो ये कई दिन-रात मेरे पास बैठे रहे ।"

बाबा के मुख पर उस समय अपूर्व शान्ति थी ।

"क्या यहाँ और भी जानवर हैं ?"

"बहुत दिन हुए यहाँ नीचे से हाथियों का झुण्ड आ गया। कुछ दिनों बाद चला गया । वे भी कभी-कभी इस गुफा को पवित्र करते थे । एक बार आकर उन्होंने सारे पेड़ तोड़ दिये । मैंने कहा, जाओ पेड़ों को मत तोड़ो । नीचे जाओ ; तो चले गये ।"

"विचित्र बात है ।"

"विचित्र कुछ भी नहीं । प्रकृति ने सभी के हृदय में अटूट स्नेह दिया है। सभी उसके भूखे हैं । तुम स्नेह दो तुम्हें स्नेह मिलेगा । सिंह भी स्नेह का भूखा है, हाथी भी । सभी पशु स्नेह को पहचानते हैं । मेरे गुरु के पास जंगली गाय, बकरी, चमरी मृग, शेर, चीते सभी जाते थे । सभी उनको प्यार करते थे । मैंने देखा है उनकी एक मुस्कराहट पाने के लिए एक सिंह उनके मुँह की तरफ देखा करता था । गुरुदेव कभी-कभी उससे खेलते थे । उसके मुँह में हाथ डाल देते थे । जब कभी उसे कंद खिलाते तो वह अपने को धन्य मानता ।"

बोलते-बोलते साधु बाबा तन्मय हो गये । कमल को लगा जैसे सचमुच वे स्नेह की मूर्ति हैं । कोई कलुष, कोई द्वेष, कोई घृणा उनके भीतर नहीं है । वह सारा वातावरण स्नेहमय हो गया है । शान्त निश्छल मूर्ति, उनकी आँखों में अपार स्नेह सागर लहराने लगा है । कमल ने पाया जैसे उसके ऊपर एक नशा सा छा रहा है । उसके मन के विकार धुल रहे हैं । आज उसे और दिन की अपेक्षा अधिक शान्ति मिल रही थी । उसका मन सुस्थिर हो रहा था । थोड़ी देर बाद बाबा बोले तुम्हारा मन स्वच्छ हो तो ये वृक्ष भी तुम्हें प्यार करेंगे । काँटेदार झाड़ियों में जाने पर काँटे नहीं लगेंगे । पिछले कई वर्षों से मेरे पैर में एक भी काँटा नहीं लगा है। सभी में स्नेह बहता है न ।"

साधु बाबा हँसने लगे तो कमल को लगा जैसे स्नेह की किरणों का प्रकाश चारों तरफ फूट उठा है । देखते ही देखते बहुत से वन-पक्षी आकर उस चबूतरे

पर फुदकने लगे। गिलहरी की तरह के कई जानवर उनके शरीर पर विचरने लगे और वे सभी के ऊपर हाथ फेर रहे हैं।

"जाओ कूदो, खेलो।"

सब फुर्र से उड़ गये। कमल स्तब्ध निश्चल जड़ की तरह यह सब देखता रहा। उसे लगा साधु बाबा ने उसे दिखाने के लिए ही यह सब किया है।

बाबा ध्यानस्थ हो गये। थोड़ी देर बाद वे अपने आप हँसे। फिर अपने आप कहने लगे, कितना विचित्र है तू सोऽहम्। कौन तुझे जान सका है। कौन जानेगा। मैं देखता हूँ तुझे। तूने ही तो देखने की आँखें दी हैं। अहा, कितना आनन्द है! भरपूर आनन्द।' बहुत देर तक वे अपने से बातें करते रहे। फिर जैसे जाग गये हों। मुझे सामने बैठा देखकर बोले,

"तू अभी बैठा है।"

"जी महाराज, आपके आनन्द की बातें सुन रहा हूँ।"

"मेरा आनन्द, मेरा अपना क्या है सब उसी का तो है। वह दिखाता है मैं देखता हूँ। तू समझता है यह पत्थर, यह पेड़, यह नदी-झरने जड़ हैं? उसी का खेल है। सब वही तो है। वही परम चैतन्य। परम चैतन्य। आनन्द का सागर लहरा रहा है सब में।" कहते-कहते वे अपने में खो गये।

फिर थोड़ी देर बाद बोले।

"इस पाषाण में भी आत्मा है। इस नदी में भी। कहे तो बुलाऊँ। बोलेंगे सब! पर इनकी वाणी वे ही समझते हैं जिनकी बाहर की वाणी मूक हो जाती है। भीतर की एक नई ज्ञान-दृष्टि जाग जाती है। यही योनि है, ब्रह्म योनि, जीव योनि। इसकी आँखें ही असली आँखें हैं। जो तुझे देख पाती हैं। इसकी इन्द्रियाँ ही समर्थ हैं। मनुष्य की शक्ति कितनी अपार है, कितना सक्षम है उसका आत्म-बल। कदाचित् इसीलिये वह महान् है, इसीलिये वह श्रेष्ठ भी है। यह एक नई दुनियाँ है, जिसकी ओर से सांसारिक मनुष्य अब तक बेखबर रहा है। यदि मनुष्य के इस रूप का विकास हो जाय तो न कभी युद्ध हों, न कलह, न अशान्ति हो, न कोई बेचैनी जान सके।" इसी तरह की बातें बाबा कह रहे थे। बाबा जैसे उत्फुल्ल हों। एकदम तेजोमय। आज से पहले कई बार

आने पर भी उसने उन्हें इस रूप में नहीं देखा था। उसकी पिछली धारणा कि साधु-जीवन पलायन है एक दम नष्ट हो गई। अब वह आत्म-विभोर हो उठा। न जाने कब तक बैठा रहा इसका उसे ध्यान भी न रहा। बेसुध-सा, बेमन-सा कमल अपने को भूल गया।

उसे लगा जैसे वह सोकर उठा है। उसने आँखें खोलीं तो वह अपने स्थान के बाहर था।

न वहाँ बाबा थे न वह स्थान।

"यह क्या हुआ ? यहाँ कैसे आ गया, यह कैसा चमत्कार है।" उसे लगा वह सपना देख रहा है। बिलकुल नया सपना। वह बहुत देर तक अपने में खोया बैठा रहा। उस समय शाम हो रही थी। आकाश से झर-झर बर्फ गिरने लगी जैसे ऊपर से सफेद रुई की वर्षा हो रही हो। उसका सारा शरीर रुई के गालों जैसी बर्फ से भर गया। उपर-नीचे आस-पास बर्फ गिर रही थी। देखते ही देखते सब श्वेत हो गया। वह फिर भी अचल, निस्पंद बैठा रहा। पिछला स्वप्न उसकी आँखों में घूम रहा था। न जाने कब तक बैठा वह प्रकृति के अपूर्व सौन्दर्य में स्नान करता रहा। वह उठा और गुफा में चला गया। वहाँ वह कन्द, जो बाबा ने दिया था, रखा था। भूख लगने पर उसने वही खा लिया और लेट गया।

दूसरे दिन बहुत खोजने पर भी बाबा का वह स्थान नहीं मिला। एक बात हुई कि कन्द खा लेने या न जाने किस कारण से भूख उसे नहीं लग रही थी। शरीर में अथक बल आ गया था। उसने आस-पास दूर तक सारा प्रदेश छान डाला किन्तु बाबा का वहाँ कोई पता नहीं लगा। सरस्वती के किनारे न गुफा का कोई चिन्ह था न बाबा ही थे। वह भहराया सा दिन भर घूमता रहा। अपने स्थान से निशान लगाकर बाबा की गुफा की ओर चलता पर आगे बढ़ने पर भी उसे वह स्थान न मिलता। बेचैनी, दुख से वह पागल हो गया। उसे लगता इतने महान् साधु को पाकर भी उसने कुछ न पाया कुछ न लिया। लोगों से पूछने पर भी कुछ पता न लगा।

इस तरह कई दिन बीत गये। कमल सबेरे उठकर साधु बाबा की खोज

में निकलता और कहीं का कहीं जा पहुँचता। ऊपर बसुधारा पर भी घूम आया, नीचे भी ऊबड़-खाबड़ बनों में घूमता रहता। थकने पर वह माणा से हटकर बहने वाली सरस्वती नदी पर पड़े पत्थर के पुल पर या किनारे जा बैठता। वह सोचता यह क्या हो गया। क्या सचमुच कोई बाबा उसे नहीं मिले। क्या इतने दिनों तक नींद में सपना ही देखता रहा है ? यह होश-हवाश में तो है ? क्षण भर के लिये उसे अपने पर विश्वास होता, दूसरे क्षण लगता जैसे उसे कुछ भी मालूम नहीं है। वह पागल हो गया है। वह सब झूठा है। जगतसिंह का मिलना भी स्वप्न है। वह जितना ही अपनी स्मृति पर जोर डालता उतना ही अपने में खो जाता। एक बार उसके जी में आया वह नीचे ऋषिकेश चला जाय। इसी आशा-निराशा, स्मृति-विस्मृति के द्वन्द्व में वह चलता-चलता व्यास गुफा के निकट पहुँच गया। वहाँ उसे दिखाई दिया जैसे कोई प्राणी भीतर है। वह गया। वहाँ एक व्यक्ति बैठा था। संन्यासी था वह। गेरुए कपड़े पहने प्रौढ़, भरपूर शरीर, तेजस्वी चेहरा। वह कुछ पढ़ रहा था। कमल झिझकता उन्हीं के पास जा पहुँचा। हाथ जोड़कर बैठ गया। कुछ देर बाद संन्यासी ने निगाह उठाकर देखा,

"यात्री हो ?"

"जैसा भी समझें। मैं विचित्र परिस्थिति में पड़ गया हूँ।"

"हूँ।" संन्यासी मुसकराये। बोले—"क्या ?"

उसने आदि से अन्त तक साधु बाबा की कथा सुना दी और बोला—"मैं एक बार उनके दर्शन करना चाहता हूँ। कहीं भी उनके दर्शन नहीं हो रहे हैं।"

संन्यासी ने पुस्तक एक ओर सरका दी। और बोले—"तुम भाग्यवान् हो। वे बड़े विचित्र मौजी महात्मा हैं। भक्तों से इसी प्रकार का खेल खेलते हैं।"

"पिछले कई दिनों से उनकी गुफा ही नहीं मिलती। ढूँढ-ढूँढकर थक गया। अपने स्थान से स्मृति पर ज़ोर डालकर निशान बनाकर चलता हूँ किन्तु उसके आस-पास पहुँचने पर न जाने क्या हो जाता है। स्थान ही नहीं मिलता। आस-पास, दूर-निकट सभी जगह घूमा पर न जाने मुझे क्या हो जाता है। इससे

पूर्व कभी मुझे ऐसा भ्रम नहीं हुआ।"

संन्यासी ने सुना तो और भी हँसे।

उसने फिर कहा—"वे चेतसिंह की लड़ाई में भी थे। उनका नाम जगतसिंह है।"

"चेतसिंह। कौन चेतसिंह?"

"अंग्रेजों से उसकी लड़ाई हुई थी बनारस में।"

"अच्छा, ठीक।"

"तुम उनसे क्यों मिलना चाहते हो?"

"मुझे लगता है वे बहुत ही महान् हैं। उनके संपर्क में पशु-पक्षी सभी अहिंसक हो जाते हैं, मैंने रीछों को उनसे लिपटकर प्यार करते देखा है। वन-पक्षियों को उनके शरीर पर फुदकते, आनन्द मानते देखा है।"

"मेरी इस गुफा में एक साँप रहता है। देखोगे?"

इससे पूर्व मैं उत्तर दूँ उन्होंने सिसकारा तो न जाने कहाँ से एक सफेद रंग का मोटा साँप फन फैलाये उनके पास आकर बैठ गया। उन्होंने उसके मस्तक पर हाथ फेरा तो वह उनके शरीर पर चढ़कर गले से लिपट गया। वह बार-बार मुँह फाड़कर अपनी जीभ निकाल रहा था। पतली जीभ दो टुकड़ों में बँटी थी। संन्यासी स्नेह से उसके ऊपर हाथ फेर रहे थे। वह और भी सिमटकर उनकी दाढ़ी-मूँछ और माथे से अपना मुँह रगड़ने लगा। कमल के शरीर से पसीना छूटने लगा। वह भय से काँपने लगा। उसे लगा जैसे महाकाल आकर उसके सामने खड़ा हो गया है। किसी भी समय यह काल रूपी साँप उसे डस सकता है। संन्यासी ने देखा तो बोले, "जाओ।"

वह उतरा और जिस दिशा से आया था उसी ओर लहराता चला गया। कमल ने संन्यासी के पैरों में सिर रख दिया। गद्गद् होकर बोलना चाहा तो कुछ भी न बोल सका। हाथ जोड़े वह बैठा रहा।

संन्यासी के चेहरे पर अपूर्व मुस्कराहट थी।

"देखा तुमने, यह सर्प यहाँ बहुत पुराना है। कीड़े न खाकर हिम खंड खाता है। कोई पूर्व-जन्म का महात्मा है।"

"आपसे कैसे मित्रता हो गई ?"

"जैसे तुमसे। रात को मेरे पास रहता है।"

कमल चुप था। उसे लगा जैसे साक्षात् शिव के दर्शन हुए हों। वह एक बार फिर गद्‌गद् हो उठा। बोला, "मेरा मन बहुत अस्थिर है। मैं अपने सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जान पाता, क्या करूँ ?"

"तुम्हारे मन में दृढ़ता का अभाव है, उद्देश्य कोई नहीं है।"

"जी, कदाचित् ऐसा ही हो।"

उन्होंने बहुत देर तक कमल की ओर देखा और बोले, "नीचे चले जाओ। तुम्हारे संस्कार वर्णसंकर हैं।"

"अर्थात्......"

"आत्म-ज्ञान संस्कारों की शुद्धता पर निर्भर करता है। संस्कार-शुद्धि जन्म-जन्मान्तर की चरित्र-शुद्धि पर। अनेक जन्म संसिद्धिस्ततोयाति परांगतिम्।"

कमल मूक हो गया।

"क्या उपाय करूँ ?"

"किसी भले काम में जीवन की आहुति दे दो। अन्त समय के वे विचार तुम्हारी आत्मा को शुद्ध कर देंगे। मन के भीतर जब तक विकारी विचार रहते हैं तब तक आत्म-साक्षात् कठिन है। हाँ, असम्भव नहीं है।

कमल कुछ भी न समझा। वह बैठा रहा। उसे लगा यह दूसरा अवसर भी हाथ से जा रहा है। कदाचित् ये महात्मा भी अभी अन्तर्ध्यान हो जायँगे। कमल की दशा उस व्यक्ति के समान थी जिसके पास टिकट न हो और वह रेल का हैण्डल थामे खड़ा हो। गाड़ी ने सीटी दे दी हो। उसे एक-एक क्षण भारी लगने लगा। अन्त में बोला, "क्या मैं बाबा के दर्शन कर सकता हूँ ?"

"वे सिद्ध महात्मा न जाने किस जगह विचर रहे हों। मिल भी सकते हैं।"

"अच्छा।"

इसका अर्थ था जाओ। कमल प्रणाम करके उठा और बाहर चला आया। वह भारी मन से बाहर आकर खड़ा हो गया। गुफा का द्वार अब भी खुला था।

उसकी एक बार इच्छा हुई वह उनके चरणों में जाकर गिर पड़े, उनसे कहे—'महाराज, अब आपके हाथ में ही मेरा उद्धार है। मैं बहुत दुखी हूँ।' इन शब्दों के साथ ही उसके मन में यशोदा की मूर्ति आ गई। उसे लगा जैसे यशोदा कराहती हुई उसे दूर से पुकार रही है। वह जैसे-जैसे अपने मन से यशोदा की बात हटाता वैसे वह और भी उग्र हो रही थी, पुकार और भी तेज हो रही थी।

सुनसान में मन का अन्तर्द्वन्द्व और भी प्रखर हो उठता है। व्यास गुफा से दूर हटने पर उसका अन्तर्मंथन और भी उग्र हो गया। साधु बाबा और संन्यासी के अतिरिक्त अब यशोदा की मूर्ति उसकी आँखों में झाँकने लगी। वह मूर्ति बार-बार आकर उसे झकझोरने लगती। कभी उसे लगता उसने यशोदा के साथ अन्याय किया है। दोनों के द्वारा जवाब मिलने पर कि—'नीचे जाओ,' उसे लगने लगा कि सचमुच वह नीचे चला गया है। एक बार उसे ध्यान आया तपःशुद्धि से प्रभावित उसके मन के विकार नष्ट होने के लिए छटपटा रहे हैं, यदि वह इन्हें दबा सका तो उसे सिद्धि प्राप्त होगी। किन्तु एकान्त में बैठने पर उसका मन न जमता। चाहता था कोई गुरु मिल जाय पर गुरु जो मिले उन्होंने सहारा नहीं दिया। कदाचित् उन्होंने देख लिया होगा कि वह इस योग्य नहीं है दूसरे दिन जब वह व्यास गुफा में गया तो संन्यासी महात्मा ध्यान में बैठे थे। वह बैठा रहा। किन्तु उनकी तो जैसे अडिग समाधि थी। विनिर्मुक्त आत्म-प्रकाश से निश्चल उनका मुखमण्डल चेष्टा-विहीन लगता था। सांस भी बन्द थी। यह पहला ही अवसर था कि उसने किसी को समाधि में देखा।

सुनसान निश्चल प्रकृति के उस वातावरण में उसे साँस का चलना भी सुनाई दे रहा था। रात में वर्षा हो चुकी थी। नदी का जल भी जम गया था। बादल उन पहाड़ों का आलिंगन किये अब भी घाटियों में शिखरों पर लेटे थे। कुहरे से व्याप्त उस प्रदेश में सूर्य अँधेरे में दिये की रोशनी की तरह चमक रहा था। सर्दी बहुत नहीं थी फिर भी साँस जैसे जम रही थी। दूर सामने के पहाड़ों पर वर्षा हो रही थी। एक विचित्र स्थिति, एक विचित्र शान्ति थी। कमल को एकाएक लगा जैसे कल वाला साँप आ रहा है। उसके अतिरिक्त मन में एकाएक भय का संचार हुआ। वह चुपचाप उठा और बाहर चला आया। पीछे देखने

पर उसने पाया सचमुच वह साँप कुँडली मारकर संन्यासी के पास बैठा है।

वह आस-पास के सभी साधु-संन्यासियों के पास गया तो पाया सभी आत्म-चिन्तन में लीन हैं। किसी को भी अवकाश नहीं है जैसे उस प्रदेश में आत्म-साधन के अलावा किसी को भी कोई काम नहीं है। चलते-चलते भीम घाट के पास पुल की शिला पर जा बैठा। एक साधु वहाँ बैठे थे, कुहरे से सारा प्रदेश ढका हुआ था। पूछने पर मालूम हुआ वे वसुधारा से लौटे हैं, नीचे जा रहे हैं। काशी में रहते हैं।

"यह प्रदेश आपको कैसा लगा ?" कमल ने पूछा।

"महात्माओं के लिए स्वर्ग है। साधारण आदमी यहाँ रहकर क्या करेगा ?"

"आप भी तो संन्यासी हैं।"

"हम क्या इतने ऊँचे हैं जो दिन-रात आत्म-चिन्तन करें। साधु भी कई तरह के हैं। एक वे जो जीवन को उत्सर्ग कर चुके हैं; ऐसे महात्मा यहाँ रहते हैं। दूसरे वे जिनमें अभी वासनायें हैं; वे लोग गृहस्थों में रहकर दिन काटते हैं। महन्त हैं या और कोई हैं। वे गृहस्थ के समान साधु हैं। उनकी वासनायें संसारी हैं। मैं उन्हीं में से हूँ। वसुधारा से उतरते हुए मैंने सोचा क्या मैं यहाँ नहीं रह सकता तो मेरी चेतना ने मुझे बताया तू यहाँ एक दिन भी नहीं रह सकता। तेरा मन ही नहीं लगेगा। क्या करेगा यहाँ रहकर नारायण ? न भोजन है न विश्राम का आनन्द। हम लोग संसारवासी साधु हैं भाई।"

"तो आप नीचे जा रहे हैं ?"

"जाना ही पड़ेगा सो जा रहा हूँ।"

"आप काशी में क्या करते हैं ?"

"गरीबों को दवा बाँटता हूँ। पेट भरता हूँ। मेरा आश्रम है। यात्रियों को मकान बनाने को उत्साहित करता हूँ। अभी बिजली लगवाई है। बाग है, उसके फूलों का ठेका एक को दिया है। साठ-सत्तर हजार की सम्पत्ति है। वह मेरी ही कमाई है। गुरु महाराज के पास केवल कोरी जमीन थी मैंने उसमें छः कमरे, एक मंदिर बनवाया है। देखो तो मन प्रसन्न हो जाय।"

"केवल स्त्री नहीं है ?"

साधु ने घूरकर देखा तो क्रोध आ गया।

"तुम कौन हो ?"

"एक आवारा।"

वह चुप हो गया। फिर हँसा, "आवारा ? लगता तो आवारा ही है। चोर ?"

"नहीं चोरी नहीं की। एक बार एक साधु स्त्री के दो रुपये उठाये थे, भूखा था।"

"अब क्या मेरे सामान पर दृष्टि है ?"

"अभी तो नहीं है।"

"हो सकती है।"

कमल हँसी के मूड में था बोला, "और आपके धन का उपयोग भी क्या हो सकता है ?"

साधु चिल्लाकर बोला, "मैं काशी का हूँ, समझे।"

"तो मेरे पास जो कुछ है आप ले लीजिये।"

"गुरु लगता है।"

"अभी हूँ नहीं, कोशिश कर रहा हूँ।"

वह चुप हो गया। उसने कपड़े उतारे और जंगल में शौच के लिये चला गया।

"देखते रहना।"

"मैं ही तो अकेला हूँ।"

थोड़ी देर बाद साधु लौटकर आया तो कुल्ला करके अपना सामान बाँधा।

कुछ निकालकर खाने लगा तो बोला—"ले प्रसाद।"

"कैसा प्रसाद है ?"

साधु ने प्रसाद दिया। "यहाँ कहाँ ठहरा है ?"

"पास ही एक गुफा में।"

साधु खाते-खाते भरे मुँह से बोला—"कितने दिन से है ?"

"थोड़े दिन हुए।"

"कोई महात्मा मिले।"

"हाँ, बड़ा चमत्कार देखा। एक तो यहीं व्यास गुफा में हैं। एक साँप पहरा देता है।

"साँप ?"

"दर्शन कर लो।"

कमल उसे ले गया। स्वामीजी उसी अवस्था में बैठे थे। साँप नहीं था। दोनों गये तो देखते रहे। इसी बीच में कमल ने दिखाया कि नदी के किनारे से साँप मन्थर गति से चला आ रहा है। साधु ने देखा तो डरकर एक शिला-खण्ड पर चढ़ गया। चले जाने पर उतरते हुए बोला, "चलो।"

"क्यों ठहरो न ? शायद स्वामीजी समाधि से उठें।"

"नहीं। हो गये दर्शन, मुझे अभी बदरीनारायण जाना है। मेरा एक साथी बीमार है। उसे छोड़ आया हूँ। वहीं स्नान होंगे तप्तकुण्ड में।"

साधु ने कम्बल गोल करके उसके दोनों छोर लँगोट से बाँध लिये, झोला कन्धे पर लटका लिया। कण्टोप और गरम बण्डी पहनकर चलने के लिये तैयार हो गया। उम्र होगी पैंतालीस के आस-पास। मजबूत काठी। देखने में चलता-पुर्जा। उस समय कुहरा छट गया था। धूप भी निकल आई थी। दोनों चले तो नीचे माणा के पुल के पास साधु ने दुकान से कुछ चने लिये। कमल के मन में आया कि वह भी चल दे। अब उसे यहाँ काम भी क्या है ? उस एकान्त में उसका जी भी ऊब गया था। उसने निश्चय किया गुफा से अपना सामान उठा लावे, तव चले। साधु दुकान पर बैठकर चने चबाने लगा। कमल दक्षिण की ओर गुफा में जाने के लिये मुड़ा। कुछ दूर ही गया होगा कि उसने देखा साधु-बाबा लकड़ी के सहारे आगे जा रहे हैं। उसने कदम बढ़ाये और पास पहुँच गया। बाबा ने पीछे फिरकर देखा तो खड़े हो गये।

"अभी यहीं है ?"

"हाँ, महाराज······।"

"हम ऊपर गये थे।"

वह कुछ भी न समझा उसके जी में आया कह दें—मैं आपका स्थान ढूँढते-

ढूँढते थक गया स्थान ही नहीं मिला। पर कह न सका। साधु बाबा चलने लगे तो वह पैरों पर गिरकर बोला—"महाराज !"

"हाँ, क्या है, नीचे जा। सेवा कर।"

"सेवा।"

"वही ठीक है बच्चा। वही ठीक है। जा।"

कमल ठिठक गया। साधु बाबा आगे बढ़ रहे थे। कमल पीछे हाथ जोड़े खड़ा रहा। बाबा चलते-चलते ओझल हो गये। कमल थोड़ी देर बाद सामान लेने अपनी गुफा में चला गया।

जब कमल ऋषिकेश पहुँचा तो सीधा स्वामी हरिशरणाश्रम की कुटिया में पहुँचा। स्वामीजी कुटी के बाहर पत्थर के चबूतरे पर आसन बिछाये बैठे थे। एक आदमी पास ही नीचे बैठा था। कमल ने पहुँचकर प्रणाम किया तो आश्चर्य में पड़कर बोले, "अरे, आ गया बिना सिद्धि के ?"

कमल चुप रहा। उसे लग रहा था यह केवल औरों की तरह यात्रा हुई है। पाया उसने कुछ भी नहीं है। खाली हाथ लौटा है।

"भाग्य की बात है। फिर भी कैसा रहा सुना तो सही।"

कमल ने आदि से अन्त तक यात्रा का वर्णन सुनाने के बाद कहा, "बहुत प्रयत्न के बाद भी मैं अपने को उस तरह न रख सका जिस तरह के संयम की वहाँ आवश्यकता है। इन पिछले दिनों मेरा मन उड़ा-उड़ा फिरता रहा है। यह मेरा दुर्भाग्य है कि गंगा के तट पर जाकर भी प्यासा लौटा।"

स्वामी कुछ चुप रहने के बाद बोले, "सब अधिकारी नहीं होते। मैं क्या चाहने पर डाक्टर बन सकता हूँ। उसके लिये संस्कार, प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है, रुझान चाहिये उस ओर का मानस-विकास चाहिये। वहाँ तो केवल वे ही रह सकते हैं जो सब तरह से वीतराग हो गये हैं।"

"जी।"

"यह तो आत्म-विकास की सीढ़ियाँ हैं। वह अन्तिम है। वहाँ से क्या कोई

लौटता है ?" उन्होंने गीता का श्लोक पढ़ा जिसमें लिखा है, जहाँ से लौटता नहीं है (यद्गत्वान निवर्त्तन्ते)।

वह आदमी बोला—"उन लोगों को करने के लिये कुछ भी शेष नहीं रहता।"

"हाँ और क्या ?"

"वह जीवन मुक्त की दशा है।" वह आदमी फिर कहने लगा, "हम लोग संसारी हैं। हमारे लिये तो पहले यह संसार है बाद में दूसरा। चलना तो हमें इसी पर पैर रखकर है न ? तुम पुल पार करके उस पार जाना चाहो तो पहले पुल मजबूत होना चाहिये नहीं तो पार जाते-जाते बीच में डूब जाओगे।"

"हाँ, यह भी एक सोचने की दिशा है।" स्वामीजी ने कहा।

"यही सर्वसाधारण के लिये है स्वामीजी।" उसने जोर देकर कहा।

"दूसरे को पार उतारो अपने आप भी उतरो।"

कमल चुप बैठा था। दोनों बातें करते रहे। उसके जी में आया एक बार यशोदा को देख आवे। जैसे उसकी सारी दिशायें शून्य हो गई हैं। वह साधु जीवन के लायक नहीं रहा है। उसमें कोई रस भी नहीं है। वह कुछ करना चाहता है लेकिन क्या करे। यह क्या उसके बस की बात है। माणा के साधु बाबा पहले जगतसिंह थे। उन्होंने आजीवन विद्रोह किया। जब सफलता न मिली तो वे साधु हो गये। उसे ध्यान आया उन्होंने उपदेश देते हुए कहा था—'सेवा करो, देश-सेवा ?' तो क्या वह भी इसी काम में कूद पड़े। क्या अकेला वह कुछ कर सकेगा ? आग जलती रहनी चाहिए। 'कैसे आग जले।' इसी तरह की बातें वह सोच रहा था कि स्वामीजी ने कहा—

"इन्हें जानते हो ?"

कमल उस व्यक्ति की ओर देखने लगा। वह ऊन का टोपा और गरम कोट पहने चादर से अपने को ढके बैठा था। दाढ़ी-मूँछों से भरा चेहरा देखने में फुर्तीला। उमर भी बहुत नहीं, यही कोई पैंतीस-चालीस। शरीर से ज्यादा मोटे मजबूत हाथ। चेहरे पर दीप्ति, दृढ़ता के चिन्ह। आँखें भेदक। नाक सीधी नुकीली। कमल ने देखा फिर भी चुप रहा।

स्वामीजी ने कहना शुरू किया, "ये हैं चिदम्बरं स्वामी। स्वामी का मतलब संन्यासी नहीं है इनका नाम है यह हैं संन्यासी ही। यह नये ढंग के देश-सेवक हैं, लौह-पुरुष। जब तुम चले गये तब मुझे लगा मैंने तुम्हें ठीक दिशा नहीं बताई। अब तुम अपने आप लौट आये हो। चलो एक तरह से ठीक ही हुआ।"

"स्वामीजी ने जैसी प्रशंसा की है, मैं वैसा नहीं हूँ।" व्यक्ति ने कमल की तरफ देखकर कहा। "हम लोगों का एक मिशन है, एक उद्देश्य।"

"क्या ?" कमल पूछ बैठा।

व्यक्ति स्वामी की ओर देखने लगा। स्वामीजी बोले, "कमल परखा हुआ आदमी है। उस व्यक्ति की तरह जिसमें शक्ति भरी है पर निकास का मार्ग उसे मालूम नहीं है।"

चिदम्बरं बोला, "यह तो स्वाभाविक होता है स्वामीजी ? इसके लिए लोगों को तैयार नहीं किया जाता। न जाने इनमें वह है या नहीं।"

"मोड़ देने पर ज्ञात हो सकेगा।"

"घातक भी तो हो सकता है।"

"विश्वास तो करना ही पड़ेगा। फिर भी मैं आज देखूँगा। तुम इस समय जाओ।"

चिदम्बरं उठकर चला गया। कमल बैठा रहा। स्वामीजी बहुत देर तक चुप रहे।

"यशोदा कभी-कभी आती है। उसे तुम्हारे बिछोह का अब उतना दुख नहीं है जितना शुरू में था। मिल लो न।"

कमल को संकोच हुआ। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"क्या सोचते हो ?"

"हो आऊँ ?"

"हाँ, क्या हानि है।"

कमल उठा, कुछ दूर गया तो फिर लौट आया।

"क्यों ?"

"फिर देखा जायगा। अभी नहीं।"

"बुरा नहीं है। उस समय तुम जब मुझसे विदा लेने आये थे क्या वह क्षणिक आवेग था ?

"नहीं तो।"

"कभी-कभी कुछ आवेग क्षणिक होते हैं। यह कमजोरी का चिह्न है। आवेगों को स्वभाव बना लेने पर मनुष्य बलवान बनता है।"

"मैं कमजोर हूँ।"

"निश्चय। वह कुछ भी नहीं कर सकता जो कमजोर है। कमजोर मानना भी एक कमजोरी है समझे।"

"संन्यासी मैं बन ही नहीं सकता, मुझे ऐसा लगता है।"

"तो चिदम्बरं के साथ काम करो।"

"क्या।"

"क्या बताऊँ, न जाने तुम कैसा मानो।" कुछ सोचकर बोले, "तुम यशोदा के साथ रहो तो कैसा है ? विवाह कर लो। वह अच्छी स्त्री है।"

"क्या आप भी एसा कहते हैं ?"

"क्या बुरा है ? जीवन को चलाने के लिये एक दिशा तो चाहिए।"

"चिदम्बरं क्या करते हैं ?"

"मेरे प्रश्न का उत्तर दो।"

"वह मैं नहीं कर सकूँगा। मैं उसे चाहता हूँ लेकिन गृहस्थ नहीं बन सकता।"

"स्वामीजी तेज होकर बोले, तो क्या केवल व्यभिचार करना चाहते हो उसके साथ, उसे रखेली बनाकर ?"

"नहीं।" उसने उसी दृढ़ता से जवाब दिया। "यदि मुझे ऐसा करना होता तो कोई भी नहीं रोक सकता था।"

"नहीं, वह वैसा नहीं चाहती थी।"

कमल चुप हो गया। थोड़ी देर बाद बोला।

"वह क्या चाहती थी यह आपसे ज्यादा मैं जानता हूँ स्वामीजी। मैंने उसे अपनी बहन माना है। अब भी मैं उसे उसी रूप में...।"

"परीक्षा करके देखना होगा।"

कमल क्या उत्तर देता। उसे प्यास लगी वह सामान रखकर नीचे उतर गया। स्वामीजी वैसे ही बैठे रहे। करीब पन्द्रह-बीस मिनट बाद कमल लौटा तो बोले, "चाहो तो सामने आश्रम में कई कोठरियाँ खाली हैं वहाँ चले जाओ।"

"अच्छा, लेकिन करूँ क्या ?"

"चिदम्बरं वहीं ठहरा है मिलेगा। रात को आना। जाओ।" सामान उठा कर कमल चल दिया।

उसने आश्रम की एक कोठरी में डेरा डाला। वहाँ कई साधु थे। हर कोठरी के आगे एक तख्त पड़ा था। लोग कम्बल बिछाए उसी पर बैठे थे। कुछ पढ़ रहे थे। कुछ वैसे ही पद्मासन से बैठे थे। एक दो-धोकर लाये कपड़े अर्गनी पर सुखा रहे थे। कोठरी के पास एक लम्बे-चौड़े दीर्घाकार साधु काले कम्बल का चोगा पहने तकिये के सहारे कोहनी टेके लेटे थे। उनके पास एक वैसा ही साधु सिर पर खप्पर-सी काली चपनी रखे और उसकी लोहे की जंजीर टोप की तरह गले में डाले बातें कर रहा था। कपड़े सुखाने वाला साधु कुछ गा रहा था। कभी उसका स्वर तेज हो जाता, कभी धीमा। वह गाना नहीं जानता था। वेसुरे स्वर में हिलाते हुए अर्गनी के कपड़े हवा से हिलते जैसे ताल दे रहे थे। चिदम्बरं एक साधु के तख्त पर अधबैठा फर्राटे से अंग्रेजी में बात कर रहा था। जब कमल अपना सामान लेकर पहुँचा तो चिदम्बरं उठ कर उधर आया। वह भी गेरुए कपड़ों में तहमद पहने था। कमल के कपड़े सफेद थे। इससे उन साधुओं के दल में एक प्रकार की सनसनी फैली। कोहनी टेके लेटा हुआ साधु जरा उठा और कमल को देखने लगा। वह बोला—"यह स्थान साधुओं के लिये है तुम कैसे आ गये ?" चिम्दबरं जो उस समय कमल के पास आ गया था, बोला—"ही वुड बी ए साधु "(यह साधु होने वाला है)।" उस साधु की समझ में कुछ आया या नहीं पर वह चुप हो गया। कमल ने कमरे में नीचे बिस्तर बिछाया तो चिदम्बरं बोला, "भण्डारे से चटाई ले आओ। मैं ला देता हूँ, ठहरो।" वह थोड़ी देर में चटाई लेकर आ गया और कमल का बिस्तर उठाकर चटाई बिछा दी। दोनों बैठ गए।

"क्या प्रोग्राम है ?" चिदम्बरं ने पूछा।

"जो इन साधुओं का है वही।" कमल ने उत्तर दिया।

"दे आर रुइनिंग देअर लाइफ मिस्टर कमल।" (ये लोग अपना जीवन बर्बाद कर रहे हैं।) डू यू एग्री (क्या तुम सहमत हो) ?"

"इट सीम्स सो। (मुझे ऐसा ही लगता है।)"

"आई एम इनसर्च आफ सम ब्रेव मैन। (मैं कुछ बहादुरों की तलाश में हूँ।)"

"कैसे बहादुर।"

"आई मीन, जो अपना जीवन दे सकें।" वह अंग्रेजी में बोलने लगा। जिसका मतलब था ये साधु लोग बकरी के गले की तरह है जिसका कोई उपयोग नहीं है। इनको वास्तविक साधु बनाना होगा। कमल भी इसी तरह सोचता आ रहा था। उसकी उत्सुकता जागी। वह बोला,—"मैं मानता हूँ। मैं इस समय थका हुआ हूँ। कहिये तो सो लूं।"

चिदम्बरं ने अंग्रेजी में हामी भरी तो बाहर बैठा साधु बोल उठा। 'ऐ स्वामी, यहाँ अंग्रेजी फंगरेजी की गिट-पिट मत कर। यह साधुओं का आसरम है। सँस्किरत हिन्दी शिन्दी बोल, पंजाबी बोल।"

दीर्घाकार साधु पंजाबी था। भारी आवाज से बरामदा गूंज गया। इसी समय दूसरा साधु पास ही था बोल पड़ा, "बंगाली होगा या दक्षिणी, स्वामी अभेदानन्द।"

"कोई भी हो बंगाली हो जा फंगाली आसरम में आसरम की भाखा बोले तो ठीक। उस दिन एक साधु जाने क्या बोलने लगा। मैं सुणता रा सुणता रा। मैं किया सुण भाई साधु। गिटर-पिटर कीता तो बाहर फेंक देऊँगा। तू समझ्या की है। इस तराँ की बाताँ कर के हम भी समझें। पूच्छो, आ इंग्रेजी कोई जवाँण है। मेरे यार भौत से तो गीता भी इंग्रेजी में बाँच्वें।"

"स्वामीजी गीता का तो अंग्रेजी में भी अनुवाद हो गया है।"

"अरे होगा हम नीं जाणें क्या, पर हम कोई इंगरेज हैं। ह्याँ नी चलेगी थारी इंगरेजी फिगरेजी।" दिग्विजयी की तरह वह कहकर फिर लेट गया।

चिदम्बरं के मुँह से निकल गया, "स्टुपिड।" (मूर्ख)

"अरे केवड़ानन्द ओ केवड़ा।" दूर से उत्तर आया।

"क्या।"

"सुण तो यार, मेरा भाई।"

दूर से एक साधु आया तो उसी मोटे साधु ने कहा। "अरे वा सतोती हमें भी याद करादे यार। सब के सामणे सरम आवे है।'

"कौनसी स्वामीजी ?"

"अरे क्या नाम सौरा उसका ? नमामीसमी है न वा।

"ओः 'नमामीशमीशान निर्वाण रूपम्' वह शिवजी की स्तुति।"

"हाँ, हाँ, वाही, वाही।"

"पिछले दिनों तो याद कराई थी।"

"पर म्हारे याद ही नीं रहे है सुसरी।"

"मन्दिर में स्तुति के समय साथ-साथ बोला करो। याद हो जायगा।"

वह उठकर बैठ गया। "कोण सुसरा मन्दिर की आरती के बखत रहे है। भिच्छा के लिए नैपाली छेत्तर में जावें कि थारी आरती करें। पर वहाँ भी तो मेरे यार सुणे हैं। मैं किया, भाई साधु हैं चौकस, स्तोती फोती नीं जाणदें। सरम आगी सुसरी। क्या करते। सो सुण, जरा लगादे जोर हो जाय।"

"हाँ, हाँ, कल दोपहर को।"

"वह साधु लेटा-लेटा खकारने लगा। वहीं बाहर उठकर थूकने गया।" ओ स्वामी विरूपानन्द, यार तेरी याई बात खराब है ले, बस !

विरूपानन्द पास ही कोई पुस्तक पढ़ रहा था, पूछ बैठा, "क्या स्वामीजी।"

"अरे और क्या, थूकों तो बाहर उठ के। साधु हैं पड़े सो पड़े। भला हियाई थूक दिया तो क्या परलौ आ गई।"

"स्वास्थ्य की दृष्टि से मैंने कहा था। फिर महन्तजी की भी यही आज्ञा है।"

"हाँ बस, या कहले मेंहन्त णे कहा था, नी तो हम क्या तेरी बात माणतें। हियाँ, बीसों साड़े लँगोटे के निच्चे से निकाड़ दिये हैं।" साधु अपनी धुन में बोलता

जा रहा था। विरूपानन्द को पढ़ना कठिन हो गया। वह उठा और चुपके से जाकर महन्तजी से शिकायत की कि कमरा बदल दें।

"क्यों अभेदानन्द अभी तक ठीक नहीं हुआ ?"

"वहुत आयँ-बायँ बोलता रहता है। आपने कमरे में थूकने को मना कर दिया था तो मेरे ऊपर बिगड़ पड़ा। बोला,—"यहाँ ही थूक दिया तो क्या बिगड़ गया ?"

महन्त चुप रहकर बोला—"अभेदानन्द लक्कड़ साधु है। आश्रम में कभी-कभी ऐसे साधु की जरूरत पड़ती रहती है। पिछले दिनों इस अकेले ने विद्या-नन्द आश्रम के बीस साधुओं को भगा दिया। खैर, मैं समझा दूँगा। और कहीं कोठरी भी तो नहीं है एकान्त में, जो उसे दे देता।"

"अब आपसे क्या कहूँ, रात को सोता है तो नाक बजती है। लगता है जैसे कई बिल्लियाँ एक साथ लड़ रही हों, कई कुत्ते गुर्रा रहे हों। फिर इसी बीच कहीं अपान वायु का धड़ाका हुआ तो सचमुच गजब हो जाता है। सोते-सोते आँख खुल जाती है। लगता है कई गुब्बारे एक साथ फूट उठे हैं।"

महन्त हँसने लगा, "यह तुम मानोगे आदमी बेलौस है।"

"हमारा तो ध्यान भी नहीं रह पाता, न कुछ चिन्तन ही हो पाता है। बोलता है तो लगता है जैसे लड़ रहा है। सभ्यता तो छूकर नहीं गई। मुझे विद्रूपानन्द कहता है। कैसा संन्यासी है ?"

महन्त और भी हँसे। ज्ञानानन्द कह रहा था एक रात भंडारे में घी, गुड़ चुराकर खा रहा था। क्या किया जाय। वैसे आदमी दबंग है। सवेरे मैंने पूछा तो बोला, "स्वामीजी इच्छा हो गई।"

"हम लोग कोई चीज शान्ति से खा थोड़े ही सकते हैं ? फौरन माँग बैठेगा। न दो तो मुसीबत। वह खप्पर वाला साधु तो इसका भी गुरु है। क्या नाम है उसका ?"

"कौनसा ?"

"वह जो सुरमा लगाता है जिसकी खोपड़ी घुटी रहती है।"

"ओः वह स्वरूपानन्द।"

"हाँ, वही स्वरूपानन्द ! अभेदानन्द उसे 'सडोपानन्द' कहकर पुकारता है।"

"क्यों, क्या हुआ उसे ?"

"वह कहता है साधनी के बिना तपस्या नहीं हो सकती । किसी साधनी की खोज में हूँ । महन्त ने नाराज होकर कहा, निकाल दूँगा । समझा क्या है उसने ।"

"यात्री स्त्रियों को ऐसे घूरता है जैसे खा जायगा ।"

"अपढ़ है ।"

"आपने ऐसे गुण्डे क्यों रख छोड़े हैं ?"

"कभी-कभी यही काम आते हैं ।"

विरूपानन्द लौटा तो अभेदानन्द चने चबा रहा था । बोला, "विड्रूपानन्द, चणे खागा मेरे यार, ले एक मुट्ठी तू भी ले । एक जात्री बंदरों के लिए झोली भरे जारा था । मैं किया साधु को भी दे दे । तो दे गिया । अरे क्या बख्त होगा नेपाली छेत्तर का टेम हो गया दिक्खे । भूख लगरी है ।" कहने को उसने विरूपानन्द से चनों के लिए कहा लेकिन दिये नहीं । थोड़ी देर बाद उठकर चल दिया तो शान्ति छा गई । चिदम्बरं अपने कमरे में चला गया । कमल सो गया था । रात को आँख खुली तो लगा बम छूट रहे हैं । दरवाजा खोलकर बाहर आकर देखा तो कहीं कुछ भी नहीं था । उसने सामने कुए से पानी भरकर पिया तो सुना मोटे साधु की तरफ से आवाजें आ रही हैं । असलियत मालूम होने पर वह अपने आप खिलखिलाकर हँस उठा । रात भर नगाड़े पर चोट की तरह दालान में आवाजें आती रहीं, वह जैसे ही सोने का उपक्रम करता वैसे धूम-धड़ाका सुनकर जाग पड़ता । जब सबेरे पाँच के लगभग अभेदानन्द बाहर निकले तो वह सो सका ।

उस आश्रम में कुछ को छोड़कर बाकी साधुओं को बाहर क्षेत्रों में भोजन लेने जाना पड़ता था । इसलिए नौ बजते ही आश्रम में सन्नाटा छा जाता । दोपहर को लोग सोते । तीन बजे के लगभग फिर रौनक होती, फिर रात को ।

विरूपानन्द मरियल-सा साधु था । वह महन्तजी को सबके हाल-चाल से परिचित कराता रहता । एक तरह वह उनका गुप्तचर था । स्वरूपानन्द प्रति-

दिन दूसरे आश्रमों की खबर लाता। अभेदानन्द को लठैत के रूप में वहाँ रखा गया था। कुछ और साधु थे जो यात्रियों को अपने महन्त का गुणगान करके आने के लिए उत्साहित करते। एक साधु सचमुच विद्वान् थे। महन्तजी किसी पढ़े-लिखे के आ जाने पर उनका उपयोग करते। उपदेश भी उस समय वे ही देते।

महन्तजी जहाँ बैठते थे वहाँ पुस्तकों की एक सुन्दर लाइब्रेरी थी। कुछ पुस्तकें रेशमी कपड़ों में बँधी रखी थीं। आलमारियों में सजी, करीने से रखी पुस्तकों को देखकर किसी भी दर्शक पर काफी प्रभाव पड़ता। सुन्दर कालीन, दो-तीन गेरुए रंग के गाव तकिए चमचमाती आल्मारियाँ, बीच में मखमल का मेजपोश, उस पर वाल्मीकि रामायण खुली रखी रहती। एक ओर अगरबत्ती की सुगन्ध से कमरे का वातावरण मस्त रहता। महन्तजी रेशमी गेरुआ पगड़ी, वैसे ही कपड़े, गले में सोने जड़ी रुद्राक्ष की माला पहने रहते। कमरे के बाहर एक कोने में चाँदी मढ़ी खडाऊँ। कमरे में गुरुओं के चित्र। बीच में भगवान् शंकर का एक चित्र टँगा था। कमरे के साथ सटा हुआ एक और कमरा था जिसमें स्वामीजी का पलंग था। कुछ सन्दूक-आल्मारियाँ थीं। और भी सामान था। दोनों कमरों को रेशमी पर्दे से बाँट दिया गया था। सोने के कमरे के साथ स्नानागार था। महन्तजी के कमरे के बाहर बड़ा चबूतरा था, जहाँ कुछ कुसियाँ, तख्त बिछे थे। महन्तजी के बैठने के तख्त पर एक व्याघ्रचर्म पड़ा था, उसके साथ एक गाव तकिया। सामने फूलों की लतायें और कई तरह के फूलों के गमले। जो साधु उस आश्रम में थे उनमें दो भण्डारे का काम देखते। दो गौ की देखभाल करते। एक प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करते। आश्रम काफी बड़ा था। बहुत से फल-फूलों से लदा। बीच में बड़ा कुआ, उसके साथ स्नान का टैंक। सारा पानी बाग में जाता।

कमल रात को ठहरा तो सबेरे ही महन्तजी ने बुलाकर उसका परिचय पूछा। उसके कपड़े देखकर बोले—"तुम संन्यासी तो नहीं हो?"

उसने कहा—"स्वामी हरिशरणानन्दजी की आज्ञा से आया हूँ, उनका ब्रह्मचारी हूँ। कुछ दिन बाद चला जाऊँगा।" स्वामी हरिशरणानन्द को महन्त जी जानते थे। वह यह भी जानते थे वह वीतराग साधु हैं। महन्तजी ने कुछ

भी न कहा। उसी समय कमल ने देखा, ऐक चेला बादाम और दूध का बड़ा गिलास ले आया है। स्वामीजी ने पिया, गिलास चेले को देकर कहने लगे—'देख, आज एक सेठ बम्बईवाला आ रहा है। आश्रम की सफाई करा लेना। कहीं कूड़ा न रहे। सब साफ हो।' इसके साथ ही उन्होंने अपने सेक्रेटरी को बुलाकर हिदायतें दीं। स्वामी हरिशरणानन्द ने कमल को पिछली रात बुलाया था वह सो गया इससे नहीं जा सका। वह थोड़ी देर बैठकर स्वामीजी के पास चला गया। चिदम्बरं स्वामी वहीं बैठा बातें कर रहा था। कमल को आया जान वह चुप हो गया।

स्वामीजी ने पूछा—"क्या विचार है कमल ?" कमल ने कोई उत्तर नहीं दिया। स्वामीजी बोले—

"यह निश्चय है तुम संन्यासी नहीं हो सकते।"

"जी।"

"तुम देश-सेवा करो।"

"अवश्य, यह काम मैं कर सकूँगा। मैं कोई काम चाहता हूँ।"

"इन चिदम्बरं से मिले ?"

"मैं थका था सो गया।"

उन्होंने चिदम्बरं से कहा—"कमल विश्वसनीय है धोखा नहीं देगा और वह आश्रमवाला साधु।"

"वह तैयार है।" चिदम्बरं ने कहा।

"तो कमल से बात कर लो।"

"अच्छा।"

चिदम्बरं कमल को गंगातट पर ले गया। खुलकर बातें हुईं। उसने अपनी योजना बताई। वाद-विवाद हुआ। कमल राजी था। चिदम्बरं ने आकर स्वामीजी से कहा तो प्रसन्न होकर बोले—

"तुम से मैं यही आशा करता था कमल ? इस समय देश को ऐसे ही लोगों की जरूरत है।"

उन्होंने कई और साधुओं के नाम गिनाये, जिन्हें उन्होंने तैयार किया था।

चिदम्बरं शाम को मिलने का वायदा करके चला गया। कमल बैठा रहा। उसके मन में उत्साह और स्फूर्ति थी। उसे लग रहा था न जाने कब से स्वामीजी यह काम कर रहे हैं। उसने पूछा—"क्या हम को सफलता मिलेगी ?"

"न भी मिले तो क्या हमको कुछ करना ही नहीं चाहिये ? आज नहीं तो कल सफलता मिलेगी। फिर हमें तो निष्काम भाव से कर्म करना है। सफलता उसके (ईश्वर के) हाथ में है। क्या विद्यार्थी अनुत्तीर्ण होने के डर से पढ़ना छोड़ देता है ? चिदम्बरं मेरा साथी है। और भी साथी थे आज उनमें बहुत से नहीं हैं।"

कमल को लगा यह स्वामी हरिशरणानन्द सरल और सीधे साधु नहीं हैं। पिछले दिनों जब उन्होंने साधुओं के विचित्र कारनामे सुनाये थे तभी उसे लग रहा था यह असाधारण है।"

स्वामीजी ने आस-पास आश्रमों से साधुओं को बुलाने के लिये कमल को भेज दिया।

रात को दस बजे के लगभग चन्द्रभागा के पश्चिम की ओर दूर निर्जन बन में साधुओं की जमात बैठी। कमल, चिदम्बरं और स्वामी हरिशरणानन्द के अलावा छः आदमी थे। चिदम्बरं ने बताया—"ये सभी लोग जो यहाँ हैं केवल चार को छोड़कर पुरानेकार्यकर्त्ता हैं। आज माँ ने फिर पुकारा है। हमें अपना काम फिर प्रारम्भ कर देना चाहिए। हमें विश्वास है सफलता हमें अवश्य मिलेगी। अब हमारे गुरु स्वामीजी आपसे कुछ कहेंगे।"

स्वामी हरिशरणानन्द ने बैठे-बैठे कहना शुरू किया—"आज जो आपको यहाँ बुलाया गया है वह केवल इसलिये कि समय आ गया है कि हम अपना छोड़ा हुआ काम फिर शुरू कर दें। पिछले दिनों चिदम्बरं जगह-जगह घूमे हैं। उनका विश्वास है यही उपयुक्त अवसर है। मैं भी यह मानता हूँ। मेरे शरीर में अब सामर्थ्य नहीं है कि बहुत काम कर सकूँ। फिर भी मेरी आत्मा का आशीष आपके साथ है। वैसे मुझसे जो आप कहेंगे वह मैं सदा करने को तैयार हूँ। इस समय आप चिदम्बरं को अपना नेता समझें। वही संचालन करेंगे।

एक बात और, अब हमारा स्थान और जगह बन गया है। वह सब बातें

चिदम्बरं अलग-अलग आपसे कहेंगे।"

चिदम्बरं ने जगह-जगह जो काम किया उसके सम्बन्ध में बताया। इसके बाद प्रस्थान के लिये प्रातः ही चलने के लिये सबसे कह दिया। बातें इतनी गुप्त रूप से हुईं, भाषा इतनी अस्पष्ट थी कि कार्यकर्त्ताओं में भी एक दूसरे को पूरी तरह नहीं जान पाया। वैसे बहुत लोगों ने योजना के सम्बन्ध में चर्चा की। मालूम होता था विभिन्न आश्रमों में रहते हुए भी ये लोग कुछ न कुछ करते रहे हैं। सभी घुटे हुए सिर या दाढ़ी रखे गेरुए वस्त्रों में क्रान्ति के पुजारी थे और उनके मुखिया थे स्वामी हरिशरणानन्द। स्वामीजी ने ऋषिकेश के एकान्त में रहकर बहुत से लोगों को तैयार किया था। रात में सोते समय कमल को लगा यह व्यक्ति कितनी गहराई में जाकर लोगों को प्रोत्साहित करता है। उसे अपने सम्बन्ध में उनके व्यवहार की कुशलता का परिचय मिला। धीरे-धीरे वे प्रत्येक व्यक्ति को पढ़कर उसे खुली छूट देते हुए भी अपने शिकंजे में कसते हैं। क्या यह इनका चमत्कार नहीं है कि यशोदा को छोड़कर जब वह इनके पास आया तो इन्होंने आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये उसे उत्सुक देखकर भी उसे अपने ढंग से चलने और शान्ति पाने की छूट दे दी। उस समय भी कोई संकेत नहीं किया और अप्रत्यक्ष रूप से इतना बाँध लिया कि असफल होने पर कमल को एकमात्र सहारा हरिशरणानन्द ही दीखे। बिस्तर में पड़ा कमल यही सोचता रहा। उसके स्फूर्त मन में इस नई दिशा को पाकर अनन्त उल्लास था। उसे लग रहा था जैसे आज उसे सही रास्ता मिला है। नींद न आने पर उठकर टहलने लगा। और चार बजे से पहले ही निश्चिन्त होकर चिदम्बरं के साथ सांकेतिक स्थान की ओर चल दिया। मार्ग में चिदम्बरं ने पूछा—"क्या रात नींद नहीं आई?"

"हाँ, खुशी ही इतनी थी।"

"लेकिन मार्ग काफी कठोर है।"

"मैं ऐसे ही रास्ते की खोज में था।"

सबेरा होने से पहले पार्टी अज्ञात प्रदेश को रवाना हो गई। स्वामी हरिशरणानन्द अब भी अपने संन्यासी रूप में पूर्वाभिमुख बैठे बाहर से ईश्वर का चिन्तन कर रहे थे, भीतर से शायद वे यह सोच रहे थे अब वे कम से कम दस

कोस दूर निकल गये होंगे।

उन दिनों कई वर्षों से देश में ठीक वर्षा नहीं हुई थी। सारा देश भूख और प्यास से "त्राहि-त्राहि" कर उठा था। गाँवों में न कहीं अनाज का दाना था और न पानी। कुए सूख गये थे। तालावों में धूल उड़ रही थी। नदियाँ निर्जीव लाश की तरह फैली थीं। पत्थर मुण्डमाल की तरह इधर-उधर लुढ़क रहे थे। खेत वीरान थे, और वीरान झँखाड़ों से भरे। गाँवों की दुर्दशा का अन्त न था। सारा भूमि-भाग सूखा और निर्जल था। पेड़ों की पत्तियाँ सूख गईं थीं। जैसे मनुष्य के कंकाल से बन होड़ लगा रहे हों। पहाड़ निर्ग्रन्थ साधु की विरल दाढ़ी की तरह खुश्क थे। लोग पत्तियाँ, घास खा रहे थे, वह भी उन्हें मुश्किल से मिलता। भूखे भहराये पशु सूखी और गरम जमीन चाटते। जब उससे प्यास न बुझती तो असहाय डकराते सड़कों और पगडण्डियों पर गिरकर तड़पने लगते। बूढ़े, जवान अपना पेट भरने के लिये धर्म, मर्यादा, समाज की लज्जा और गौरव छोड़ बैठे थे। न औरत को मालिक की परवा थी न मालिक को औरत की। परिवार के लोग एक दूसरे से चुराकर, छीनकर, मारकर पेट भरना चाहते, भूख फिर भी नहीं शान्त हो रही थी। धूल, मिट्टी और पसीने से लथपथ बच्चे भूख-भूख चिल्लाते, दौड़ते और बेबस होकर वहीं प्राण दे देते। सब जगह अकाल का विकराल ताण्डव हो रहा था। मनुष्य मनुष्य को भूल बैठा था। उस समय हैजा, प्लेग, चेचक आदि बीमारियों ने खुलकर मनुष्य का नाश करना शुरू कर दिया। न कोई बचाव था न रक्षा का प्रश्न। हजारों और लाखों की संख्या में लोग कीड़ों की तरह मर रहे थे। अगर एक कहीं से कोई खाना चुरा लाया तो वह बिना सोचे-समझे दूसरे मरते हुए मनुष्य के सामने अपना पेट भर रहा है।

ऐसे समय में वसुधारा के पास गंगा के तट पर वृष्टि-यज्ञ का आयोजन हो रहा था। चारों ओर चहल-पहल थी। विशाल वेदी के चारों ओर बैठे ब्राह्मण वेद-पाठ करते हुए अग्नि में आहुति दे रहे थे। ऊँचे आसन पर ब्रह्मा

यज्ञ का संचालन कर रहा था। आस-पास सैकड़ों की संख्या में दर्शनार्थी भक्त यज्ञ का समारम्भ देख रहे थे। पास ही पूरब की तरफ बड़े शामियाने में शाम के व्याख्यान की तैयारियाँ हो रही थीं। दक्षिण की तरफ बड़े-बड़े कडाहों में भोजन-भण्डारे की सामग्री बन रही थी। सेठ के लोग माथे पर तिलक लगाये, गले में माला पहने सब व्यवस्था देख रहे थे। बोरियों आटा, मैदा, बेसन, चीनी और घी के पीपे चले आ रहे थे। चारों ओर धूम-धाम थी। यज्ञ के धुएँ के बादल आसमान में फैल रहे थे। "स्वाहा-स्वाहाः" के स्वर गंगा के तटों से टकराकर दूर-दूर तक सुनाई दे रहे थे। यह वृष्टि-यज्ञ का आयोजन था। ब्राह्मण, साधु, संन्यासियों के झुण्ड के झुण्ड तिलक, कण्ठीमाला पहने, जटा बढ़ाये, गेरुए वस्त्रों में सजे नंगे पैर या खड़ाऊँ पहने चले आ रहे थे। पास ही वैरागियों का समूह सुल्फे-गाँझे के दम पर दम लगाता 'जय सीताराम' चिल्ला रहा था। एक ओर कुछ भिखारी बीड़ी पीते, लोटा, घण्टी बजाते आपस में बातें कर रहे थे। एक तरफ साधु, ब्रह्म की चर्चा में एक दूसरे को अपदस्थ करने या हराने की धुन में बैठे थे। फिर भी ब्रह्म अणु है या विभु इसका कोई निर्णय नहीं हो पा रहा था। कुछ सेठ के सामने आ जाने पर उसे हरिश्चन्द्र, मान्धाता की पदवियाँ बाँट रहे थे। कुछ बीच-बीच में उठकर यह पूछ आते कि यज्ञ कब समाप्त होगा, भोजन कब मिलेगा। बहुत से तो बेचैन होकर भण्डारे के पास उड़ने वाली घी की सुगन्ध से भूख बढ़ाने का अभ्यास कर रहे थे। एक अजीब कोलाहल था। कृशांगिनी गंगा एक-वस्त्रा-सी बह रही थी।

यथासमय यज्ञ के साथ भोजन की व्यवस्था शुरू हुई तो लगा जैसे हर आदमी में अनन्त उत्साह भर गया है। ढाई-तीन हजार के लगभग ब्राह्मण, साधु, जिनको जहाँ जगह मिली गोल बनाकर बैठ गये। भिखारी दूर खड़े चिल्ला रहे थे जैसे उत्सुकता फूटकर वह उठना चाहती हो। भोजन हुआ। दक्षिणा बाँटी गयी। इसी में साँझ हो गई। यज्ञ उस समय भी हो रहा था। अखण्ड यज्ञ था। इस तरह एक सप्ताह से सारे ऋषिकेश में सेठ की बड़ाई हो रही थी। दूर-दूर से साधु-संन्यासी, पण्डित-ब्रह्मचारी आये थे। सायँकाल के समय उपदेश होते, कथा, कीर्तन, भागवत का पारायण, रामायण का पाठ चलता। जितने

भोजन के समय इकट्ठे होते उससे चौथाई लोग भी उपदेश कथा में न आते। तब एक दिन सेठ ने कहा—"पण्डाल में कोई रौनक नहीं है। कथा-वार्ता में लोग नहीं आते। खाने के बखत आ जावें हैं।"

"सेठजी, आप तो जानो ही हो। धर्म के लिये कितनी भगती है लोगों में। ये साधु भी पेट के लिये हुए हैं। आजकल भण्डारे के बखत पै संन्यासियों, साधुओं, भिखारियों की संख्या दिन दूनी होती जा रही है।" मुनीम ने हिसाब का कागज हाथ में लिये आकर कहा, "पहले दिन दो हजार साधु थे, दूसरे दिन ढाई हजार हो गये, इस तरियों बढ़ते-बढ़ते पाँच हजार पै नौबत पहुँच रही है। अब भिखारियों का भोजन बन्द करा दिया है।"

"कल से जो गायत्री मन्त्र सुरणावे उसे खाना दो।" सेठ ने कहा।

एक आदमी पास ही बैठा था, बोल पड़ा—"साधु भला गायत्री मन्त्र क्या जाने।"

मुनीम ने बताया—"कल का ही आखिरी भण्डारा है सो हो जाने दो।"

"हाँ आवरण दो सब को।"

आखिरी दिन दस हजार के लगभग लोगों ने खाया। वे साधु ही थे। भिखारियों के लिये बचा ही नहीं। इधर भुखमरी के कारण गढ़वाल और आस-पास के लोग आ जुटे थे उन्हें कुछ भी न मिला। उनमें बहुतों ने भूख के मारे पत्ते चाटे। कुछ ज्यादा खाने के कारण मर गये। कुछ लाशें बिना खाये मरी हुई दिखाई दे रही थीं।

सेठ एक धर्मशाला में ठहरा था। हर समय साधु, संन्यासियों, पण्डितों से घिरा रहता। आशीर्वाद के साथ-साथ "कर्मवीर, कर्ण, धर्म-रक्षक, दानवीर की पदवियाँ उसे बाँटी गई। साधुओं के एक मण्डल ने आकर उसे अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। सब ओर उसकी जयजयकार हो रही थी। लोग कह रहे थे, ऐसा धर्मात्मा सेठ आज तक ऋषिकेश में नहीं आया। बड़ा महात्मा है। बड़ा दानी है।"

उसी समय घूमकर लौटे उसके लड़के ने धर्मशाला में आकर कहा—

"चाच्चाजी, चाच्चाजी, आज मैंने जसोदा काकी को देखा। गंगा के किनारे बैठी थी।"

"जसोदा, कौन जसोदा ?"

"अपने पन्नालाल की बहू क्यों ?" सेठ की औरत जो पास ही लेटी थी, उठ कर चली आई ।

"क्या किया रे तन्ने ।"

मुँह फाड़कर आश्चर्य से लड़के ने बात दुहराई । तो सेठानी सेठ एक दूसरे को देखने लगे। लड़का चिल्लाकर कहता जा रहा था। "कहो तो बुलाकर लाऊँ।"

"नहीं, रहने दे । जा खेल, किसी से कहियो मत । समझा ।" चौदह साल का लड़का कुछ न समझ सका कि माँ-बाप ने क्यों मना कर दिया । जब बाहर चला गया तो सेठ ने कहा, "मरी नहीं है !"

"मुझे भी ऐसे ही लगे था । इतनी जल्दी कोई कैसे मरेगा ?"

"पन्नालाल था ही ऐसा, उस रांड के पीछे मर गया ।"

"हाँ, कहो तो जाके देख आऊँ । न जाने बिचारी कैसी होगी ?"

जैसे कोई बात सूझ गई हो, बोला—"लोगों ने जान लिया कि वो हमारी रिश्तेदार है तो अच्छा नहीं होगा । बदनामी होगी सो अलग । बस, तू रेनदे । कल आपाँ चले जायँगे । फिर कुछ भी हो । हमने थोड़ेई करा है । करने वाला तो मर गया ।"

"पन्नालाल भी घिसट-घिसट के मरा ।"

"दस हज्जार तो इलाज मालजे में लगा ।"

"चम्पो के पास क्या होगा ?"

"दो कोठियाँ हैं । चार दुकानें हैं । पाँच लाख रुपया भी है ही ।"

"एक बार मुझ से कह री थी अपने छोटे को गोद करदे । मैंने किया मुँह तो धो पहले ।"

"गोद उसने मुनीम के लड़के कूँ ले लिया है, भीखाराम के ।"

"चलो ठीक हुआ । चम्पो दुष्टा है । उसी ने जसोदा कूँ निकलवाया ।"

"न जाने क्या हालत होगी विचारी की । कहो तो चुपचाप देख आऊँ ।"

"तू चुपचाप कैसे देखेगी । लोग तो तुझे देखेंगे, वो तो तुझे पहचान लेगी । उसे बुरा न लगेगा ?"

"तो मैं कुछ कहूँगी थोड़े ई।"

"भागवान, तू तो नीं केगी पर वो तो तुझे जाण जागी। इब उसकी अच्छी हैसियत तो नीं होगी। हमारे यहाँ भण्डारे में उसने भी खाया होगा।" इसी समय हिसाब के कागज लेकर कुछ लोग आ गये। सेठ उन से बात करने बैठ गया। सेठानी हट गई। उसने लड़के को बुलाकर एकान्त में जसोदा की बाबत पूछा। तो लड़के ने बताया, "मैली धोती चादर ओढ़े वह गंगाजी के किनारे बैठी थी। मैं उधर निकला तो मुझे देखने लगी। देखती रही। मैंने भी फिर देखा तो पहचान गया। उसने मुँह फेर लिया।"

"तू बोला था क्या?"

"नहीं।"

"कहाँ बैठी है?"

"वा तो मेरे देखते-देखते उठकर चली गई।"

"कहाँ?

"इधर ही कहीं। मैं आ गया।"

"तू जा उसका पता लगा, मिले तो कहियो, माँ ने बुलाया है।"

"अच्छा।" लड़का बाहर निकल गया।

थोड़ी देर बाद लौटकर लड़के ने बताया, वह कहीं नहीं मिली। सेठानी बहुत बेचैन हो उठी। रह-रह कर यशोदा के लिये उसका जी भर आता। शुरू से ही वह भोली थी। सुन्दर थी। वह अपने भाई से इसका ब्याह करना चाहती थी पर काना और एक टाँग खराब होने के कारण यशोदा के माँ-बाप ने शादी पन्नालाल से कर दी। अपने ही परिवार की बहू इस तरह भिखारिन बनकर रहे यह उसके लिये असह्य था। उसने मौका पाकर फिर पति से कहा, पहले तो उसने डाँट दिया। फिर सोचकर उसने धर्मशाला के मुनीम को बुलाकर पूछा।

"हाँ, एक औरत है तो सही, पर उसका मालिक था, वह उसे छोड़कर साधु हो गया है। शायद कहीं चला गया है, पास ही रहती है।"

"कितनी दूर?"

"यहाँ पास ही।"

"जा, जाकर देख तो क्या है वह घर में ?"

"अभी लीजिये।"

थोड़ी देर बाद लौटकर बोला—"ताला बन्द है। शायद गंगा पर भजन करने गई हो। मैं जाता हूँ।"

मुनीम ने सारा ऋषिकेश छान मारा। कोई जगह नहीं बची। एक ने बताया वह डोईवाला की तरफ चली गई है। स्टेशन पर मैंने गाड़ी में बैठे देखा था। सेठ ने सुना तो चुप हो गया।

"क्या करती है वह यहाँ ?"

"ये तो नही मालूम। भजन करती होगी। पंजाबी धर्मशाला में ऐसी बहुत सी औरतें हैं जो गंगा-सेवन करती हैं।"

"हूँ।"

सेठ को सबेरे जाना था पर वह दोपहर तक ठहरा। यशोदा का कहीं पता न लगा। वह चला गया लेकिन अपने छोटे मुनीम को छोड़ गया। तीन-चार दिन बाद यशोदा लौटी। घर साफ करके स्नान के बाद जब वह बैठी थी तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया। उसने समझा शायद शिवानन्द आया हो। उसके सिवा इन पिछले दिनों उसके पास कोई नहीं आता था। एक पड़ौसिन थी वह कभी आ जाया करती थी। दरवाजा खोलते ही उसने मुनीम को देखा। अनजान बनकर वह उसे देखने लगी।

मुनीम ने साथी को विदा कर दिया और आँगन में आकर बोला—"मैं कलकत्ते के सेठ का मुनीम हूँ। सेठजी अभी पन्द्रह दिन रहकर गये हैं।"

यशोदा ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुप खड़ी रही।

इन पिछले दिनों से वह बहुत कम बोलती। घर से निकलना भी उसने बंद कर दिया था।

"मैं आप से मिलने के लिये ही यहाँ रह गया हूँ।"

"क्या काम है ?" यशोदा जैसे किसी को भी न जानती हो।

"सेठजी आपके रिश्तेदार हैं।"

"आप मतलब की बात करो।" यशोदा ने रूखे स्वर से जवाब दिया।

"वे चाहते हैं कि आप कलकत्ते चलें। वहीं रहें। इसमें उनकी बेइज्जती है कि आप यहाँ ऋषिकेश में अनाथों की तरह रहें। सेठानी आपसे मिलने को बहुत बेचैन रहीं।"

"और कुछ ?" यशोदा उसी स्वर में बोली।

"जो आप कहें वही मैं करूँ। मुझे सेठजी पाँच सौ रुपये दे गये हैं। आपको जिस किसी का देना हो, दे दिला दीजिये और मेरे साथ कलकत्ते चलिये। मैं भी देखता हूँ आप यहाँ दुखी हैं। हमारे सेठ के पास किसी बात की कमी नहीं है फिर पन्नालालजी के स्वर्गवास के बाद उनकी सम्पत्ति भी है। वे सब चम्पो को दे गये हैं लेकिन सेठजी कह रहे थे उसमें आधा हिस्सा तो आप को मिल ही जायगा। आपको करना भी क्या है खाने की कमी नहीं रहेगी।" मुनीम कहकर यशोदा की ओर देखने लगा। यशोदा में कोई अन्तर न पड़ा। पति की मृत्यु का समाचार सुनकर भी जैसे कुछ न हुआ हो। वह चुप रही। वह जैसी पहले थी वैसी ही निरपेक्ष भाव से खड़ी रही। थोड़ी देर बाद उसने उसी भाव से कहा—

"और कुछ कहना है ?"

मुनीम हतप्रभ हो गया। बोला—"और तो कुछ भी सेठजी ने नहीं कहा है, कहिये तो मैं कहूँ, मुझे मालूम है आपके साथ पन्नालाल और चम्पो ने बड़ा अत्याचार किया है। आपकी सारी जिन्दगी बर्बाद कर दी है। पन्नालाल सेठ ने यहाँ से लौटकर कलकत्ते में कह दिया था कि यशोदा मर गई है। हम सबने ठीक मान लिया था। यहाँ उस दिन सेठजी के लड़के ने आपको देखा तब खबर लगी। आप अब कलकत्ते चलें।"

"नहीं, मैं कहीं नहीं जा सकती। तुम जाओ।" यशोदा ने उसकी ओर ऐसे देखा जैसे दरवाजा बन्द करने को आगे बढ़ रही है।

"पर देखो, आप जवान औरत हैं आपको इस तरह अकेले रहना ठीक नहीं है।"

"आज ही मैं जवान हूँ कल नहीं थी ? जब मुझे छोड़ा गया था तब नहीं

थी ?" वह भभक उठी।

"हमको तो मालूम नहीं था। पन्नालाल ने किया।"

"जिसने भी किया हो। मेरे भाग्य में ऐसे ही था। आप जाइये। मैं यहाँ कोई पाप नहीं कर रही हूँ।"

पाप की बात सुनकर मुनीम ताने के साथ बोल पड़ा, "यह कमल कौन है ?"

"कमल का नाम सुनकर जैसे वह अपने आपमें छोटी हो गई। हृदय की स्वच्छता के सूत्र जैसे टूटकर बिखर गये। उसने अपने को सँभाला और उसी स्वर में बोली, सेठ के उस भाई (पति) ने चाहा था कि वह किसी तरह भी मुक्ति पाले। उसने एक साधु को बहकाया कि मुझे बेहोश करके कहीं जंगल में ले जाकर मार डाले। वह तैयार भी हो गया। वह तो मैं भाग्य से बच निकली, सँभल गई। उसकी लम्बी कहानी है। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं अब कलकत्ते नहीं जा सकती, तुम जाओ। मेरा उद्धार अब तुम्हारे हाथ में नहीं है।"

मुनीम ने सुना तो चुप हो गया। थोड़ी देर बाद उसने रुपयों के नोट निकाले और बोला, "यह रख लो।"

"मुझे नहीं चाहिए। ले जाओ।"

मुनीम लौट गया। यशोदा चुपचाप वहीं खड़ी रही। एक बार उसके जी में आया वह कलकत्ते चली जाय। रुपया-पैसा, मकान सभी है। अधिकार भी मिलेगा। सुख से रहेगी। चली जाय, उसके मन में आया मुनीम से जाकर कह दे। वह चली, फिर ठहरकर सोचने लगी, किन्तु इतने दिन बाहर रहने के बाद······क्या समाज में उसकी वैसी इज्जत रहेगी ? क्या वह गर्व के साथ माथा ऊँचा करके सब के सामने चल-फिर सकेगी ? उसके मन ने कहा·· नहीं, नहीं। वह स्थान अब नहीं मिल सकता। वह गिर गई है। यह अन्यायी समाज सब तरह से उसके ठीक रहने पर भी उसे स्वीकार नहीं करेगा, नहीं मानेगा। उसे लग रहा था जैसे अब वह समाज से पतित है। भीतर से शुद्ध रहती हुई भी बाहर से लोगों की निगाह में गिर गई है। कोई विश्वास नहीं करेगा कि वह

इतने दिनों अलग रहकर भी गिरी नहीं है। अपने को उसने सँभाले रखा था।

वह उसी तरह आँगन में खड़ी रही। धूप निकल रही थी।

कमल का नाम मुनीम के मुँह से सुनकर उसकी सोई स्मृति जाग उठी। वह उसे भूली नहीं थी किन्तु उसके उपचेतन में वह दब जरूर गया था। इसी बीच उसे जो अपनी परिस्थितियों से लड़ना पड़ा था उससे वह काफी परेशान थी। कमल के जाते ही सबसे पहले शिवानन्द ने सिर उठाया। जैसे कमल का जाना उसके भाग्य चमकने का लक्षण हो। सुबह, शाम, दोपहर, रात कभी भी वह आ धमकता। हर तरह से उसे खुश करने की कोशिश करता। हर बार वह नये प्रोग्राम बनाकर लाता। उसके चाचा के पास तीस हजार की सम्पत्ति है जो उसी की है। वह उसे बेच देगा फिर कपड़े की दूकान खोलेगा। एक मकान बनवायेगा। नौकर-चाकर होंगे। वह सारे भारत की सैर करेगा। आदि, आदि। बहुत बार यह दुहराने के बाद उसने चाहा कि रात को यहीं सो जाया करे। अकेली है कहीं डर न लगे। कछ दिनों बाद उसने यशोदा को कमजोर बनाने के लिए भूत-प्रेतों की कहानियाँ कहना शुरू कर दिया। एक दिन शाम को आकर बोला,

"कल रात जब मैं यहाँ से गया सचमुच ही एक भूत मिला। पहले तो वह गाय की शकल में था फिर पास जाते ही वह भैंसा बनकर मेरे पीछे दौड़ा। मैं भागा, तो वह आदमी बन गया। और लगा नाक से बोलने। उसने मुझसे पूछा, कहाँ से आ रहा है। मेरी घिग्घी बँध गई। क्या जवाब देता। वह मुझे गिराकर मेरी पीठ पर चढ़ बैठा। अन्त में जब मैं रोने लगा तो वह खुश हो गया, बोला, जब तू याद करेगा तभी मैं आ जाऊँगा। कहे तो बुलाऊँ। अब वह मेरे हाथ में है।" इसी समय न जाने उसने क्या किया कि यशोदा को काला कम्बल ओढ़े आँगन में एक आदमी दिखाई दिया। चाँदनी रात थी, वह देखकर तो सचमुच थर-थर काँपने लगी। वह जैसे पास आ रहा था। उसने शिवानन्द से पूछा—"यह कौन है ?"

"यही है वह।"

"पास ही था कि मैं बेहोश हो जाती।" शिवानन्द बोला—"जाओ, चले

जाओ।" वह चला गया। शिवानन्द के मारे यशोदा बड़े कष्ट में थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि इस दुष्ट से कैसे पीछा छूटे। अब वह और भी निर्द्वन्द्व हो उठा। अब उसे विश्वास हो गया कि यशोदा उसे भगा नहीं सकती। वह अपना प्रभाव दिखाने के लिए एक दिन और भी बातें सुना रहा था कि इसी समय आँगन में किसी के आने की आहट सुनाई दी। उसने दूर से देखा कि स्वामी हरिशरणानन्द चले आ रहे हैं। वह उठकर खड़ी हो गई। स्वामी जी को देखकर जैसे खोए हुए प्राण मिल गये। "स्वामीजी !"

शिवानन्द को देखकर बोले—"शिवानन्द तू, तो ब्रह्मचारी है न, यहाँ कैसे ?" वह सकपका गया। वे बोले—"देख, इस बहन को तंग नहीं करना। यह तेरी बहन है।" फिर बोले—बेटी, गंगा पर आई है तो भजन कर। न हो तो घर लौट जा। कोई कष्ट हो तो मुझसे कहना। भगवान दया करेंगे।" इतना कह कर वे सांत्वना देकर चले गये। यह वे ही स्वामीजी थे जिनके पास कमल के जाने पर उनसे कमल की बाबत पूछने गई थी। तब उन्होंने कहा,—"कमल का ध्यान छोड़ दे। वह वीतराग साधु है। वह तप करने गया है।" तभी से स्वामीजी के पास वह जाने लगी। उनके कहने से शिवानन्द चुप हो गया। एक दिन आकर बोला—

"यशोदा, मैं अब संन्यास ले रहा हूँ।"

"कब ?"

"जल्दी ही। उस दिन स्वामीजी ने मुझे ऐसे डाँटा जैसे मेरे मन का भेद पढ़ चुके हों। सचमुच मैं इन पिछले दिनों पागल हो गया था। आज मुझे बड़ा पछतावा हो रहा है। पिछले दिनों अचानक स्वामीजी (मेरे गुरु हरिहरा-नन्द) ने मुझे बेहोश करके मेरे मन की सब बातें जान लीं। जगाकर उन्होंने मुझसे कहा—शिवानन्द, यह यशोदा कौन है ?

"मैं डर गया तो बोले, निकल जा मेरे आश्रम से दुष्ट। मैं ऐसे आदमी को नहीं रखूँगा। नहीं तो सचमुच बता क्या बात है ?

"मैंने डरकर सब बता दिया। मैं जानता था मैं छिपाकर नहीं रख सकता। इसके बाद उन्होंने मुझे आठ दिन तक निराहार व्रत कराया।

"तो तू फिर क्यों आ गया ?"

"यह कहने कि तू अब मेरी बहन है। मैं तेरे पास नहीं आया, एक काम से स्वामीजी ने मुझे भेजा है, मैंने सोचा तुझसे मन की बात कहता चलूँ। मुझे माफ कर दे बहन। अब मेरा मन शुद्ध है ?"

"अब वह भूत कहाँ है ?"

शिवानन्द कहने लगा, वह भी तुझे डराकर अपनी बात मनवाने का प्रपंच था। वह मेरे आश्रम का एक विद्यार्थी था। मैंने उसे तैयार किया था।"

यशोदा हँसी। यह हँसी बहुत दिन बाद उसके मुख पर आई थी। इसी बीच वह साधु, जिसे जेल हो गई थी, पता लगाकर रात को आ गया। रात में वह छत से नीचे कूदने को ही था कि पड़ोसी ने देख लिया। वह चिल्लाया। साधु भाग गया। दूसरे दिन से पड़ौसी स्त्री उसके पास सोने लगी। धीरे-धीरे रात के बाद उषा के निकलने की तरह सब चित्र उसकी आँखों के सामने आने लगे। किस प्रकार वह दूसरे दिन स्वामीजी के पास गई और उनसे सब कहा। रुपये-गहने की बात सुनकर उन्होंने एक व्यापारी को बुलाकर ब्याज पर सब रखने का आदेश दे दिया। उसी से पन्द्रह रुपया माहवार उसे मिलने लगा। अब कभी-कभी सुबह जाकर स्वामीजी के दर्शन करना और उनके उपदेश के अनुसार चलना उसका नियम बन गया। उन्होंने यशोदा को चाहने पर भी संन्यासी होने का निषेध करके मन को शुद्ध रखने, किसी के प्रति दुर्भाव न रखने का उसे उपदेश दिया था। वह तब से यही अभ्यास कर रही है। अब उसका मन पहले से शान्त है।

यशोदा अब बिलकुल बदल गई थी। इन्हीं दिनों सेठ ने धर्मशाला के मालिक का एक पता मैनेजर को लिखवाकर हिदायत की कि यशोदा बाई को धर्मशाला के ऊपर के कमरे में स्थान दिया जाय। और सब तरह उसकी देख-भाल रखे। किसी प्रकार कष्ट न हो। जब मैनेजर यह संदेश लेकर गया तो उसने निश्चय किया कि वह अकेली रहने से वहाँ रहना पसन्द करेगी। कमरा उसे पसन्द आ गया। दूसरे दिन उसने मकान बदल लिया। इधर धर्मशाला में यात्रियों की चहल-पहल रहती। यशोदा अक्सर कमरा बन्द किये रहती।

एक दिन जो सबेरे स्वामीजी के दर्शन करने गई तो देखा, एक नौजवान

लड़का स्वामीजी के पास बैठा है। बलिष्ठ शरीर, तेजस्वी मुख। स्वामीजी उसे कुछ समझा रहे थे। धीरे-धीरे। युवक बहुत ही सुन्दर असाधारण व्यक्तित्व का था। वह बहुत भव्य लग रहा था। यशोदा प्रणाम करके बैठ गई तो उसने स्वामीजी को बोलते सुना—"आज का धर्म देश है। देश से बड़ा कोई धर्म नहीं है। तन-मन-धन से उसकी सेवा ही धर्म की सेवा है।" वह स्वामीजी के मुख से आज नई बात सुन रही थी। यह क्या कह रहे हैं स्वामीजी ? वह चुप बैठी रही। वे फिर बोले, "जाओ, तुम्हें सफलता मिले। काम करो।"

वह युवक उठा, उसने चुपचाप प्रणाम किया और चल दिया। स्वामीजी दूर तक उसके साथ गये। मार्ग में वे उसे समझाते रहे। उसने दूर स्वामीजी के मुख से कमल का नाम सुना। यशोदा का मन उत्सुक हो उठा। उसे लगा, स्वामीजी को मालूम है कमल कहाँ है ?

जब लौटकर आये तो उसने मकान बदलने की बात कही। बातों-बातों में पूछा, "स्वामीजी, कमल कहाँ है ?

"क्यों, उसके प्रति अभी तक अनुराग है क्या ?" स्वामीजी ने हँसकर पूछा।

यशोदा शर्माकर चुप हो गई।

"तेरे अभ्यास का क्या हाल है ?"

"अब मन शान्त है।"

"दृढ़ता आई ?"

"हाँ, मैं खाली बैठी रहती हूँ।"

"अभ्यास कर।"

तीन-चार दिन बाद एक प्रातः जब वह दर्शनों के लिए गई तो अचानक उसने उसी युवक को फिर देखा। आज वह सैनिक वेश में था। उस समय स्वामीजी उसे बिदा करने बाहर जा रहे थे। यशोदा बेचैन हो उठी। यह क्या है ? कौन है ? उस समय उसका रूप स्फूर्ति से और भी गौरवान्वित था। वह चला गया। यशोदा चुप थी। उसके मन में उथल-पुथल मच रही थी। वह इतने दिनों से स्वामीजी का दर्शन करने आती थी, फिर भी वह स्वामीजी

को समझ नहीं पाई थी। अचानक पूछ बैठी।

"यह कौन थे स्वामीजी?"

स्वामीजी चुप रहे फिर बोले, "देश-सेवक है।"

"देश सेवक? क्या मैं देश की सेवा नहीं कर सकती?"

स्वामीजी ने उस समय सारे देश में फैले अकाल का दर्दनाक वर्णन किया। किस तरह लोग अन्न के एक-एक दाने के अभाव में भूखे मर रहे हैं। सारे देश में त्राहि-त्राहि मच रही है। गाँवों में श्मशान का-सा उजाड़ फैल गया है। नगरों में जनसंख्या तड़प-तड़पकर रास्ते चलती मर रही है। वर्णन करते-करते स्वामीजी मूक हो गये। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। जैसे सारा करुणाजनक दृश्य आँखों के सामने हो।

यशोदा चुपचाप बैठी रही। स्वामीजी ने अन्त में कहा, "जा, आत्म-संयम कर। समय आयगा जब तेरी सेवा की जरूरत होगी। मैं तुझे भूला नहीं हूँ।"

यशोदा उठकर चली आई। वह दिन भर स्वामीजी तथा उस सैनिक वेश-धारी आदमी के सम्बन्ध में सोचती रही। उसे लगा, कमल के सम्बन्ध में स्वामी-जी को ज्ञान है। इन्हें मालूम है कमल कहाँ है। तो क्या वह कोई गुप्त काम कर रहा है। यह व्यक्ति कौन है? स्वामीजी मुझसे छिपाते क्यों हैं? आज मेरे पूछने पर उन्होंने देश की दुर्दशा का वर्णन कर दिया। देश की सेवा का महत्त्व बताया। आज तक इन्होंने कभी ऐसा नहीं कहा था। अब संयम करने की बात बता रहे हैं। मुझसे कहते हैं—'मैं भूखी रहना सीखूँ। भूख सहने से दृढ़ता आयगी।'

वह दिन भर निराहार रही। दूसरे दिन वह पानी पीकर रही। रात को दूध पी लिया। इन दिनों के निराहार से वह काफी कमजोर हो गई थी। फिर भी वह दृढ़ थी। उसका मन पहले से अधिक शान्त था। पाँचवें दिन दोपहर को स्वामीजी अचानक आ गये। देखा, तो बोले,

"कैसी है बेटी?"

यशोदा ने उठकर प्रणाम किया और आसन देकर बोली, "ठीक हूँ।"

"मैं एक बड़े काम के लिये तुझे तैयार कर रहा हूँ।"

"क्या काम ?"

"समय आने पर ज्ञात होगा, प्रतीक्षा कर। मनुष्य में अनन्त शक्ति है। कितने दिन हो गये निराहार रहते ?"

"पाँच दिन।"

"आठवें दिन आकर मैं तुझे पथ्य दूँगा। कोई चीज नहीं खाना, हाँ।"

"अच्छा।"

इन पिछले दिनों निराहार रहने के कारण आस-पास के लोग जान गये। यात्रियों में से स्त्रियाँ उसके दर्शन करने आतीं। किन्तु मैनेजर ने सबको रोक दिया। स्वयं तीन-चार बार दिन में उसे देख आता।

इन दिनों उसे उल्टी आती तो मैनेजर की पत्नी स्वामीजी की बताई दवा पानी में डालकर देती। वह दिन भर उसके पास बैठी रहती। यशोदा का जैसे कायाकल्प हो रहा था। वह अब आराम से पड़ी रहती। न किसी से बोलती, न किसी को उससे बोलने की आज्ञा थी। आठवें दिन स्वामीजी आये उन्होंने उसे देखा तो प्रसन्न हुए। "तेरा व्रत पूरा हो गया है बेटी।"

"हाँ महाराज, आपकी कृपा है।" मन्द स्वर में यशोदा ने कहा।

स्वामीजी ने नींबू का रस पानी में मिलाकर गोली के साथ दिया, और मैनेजर की पत्नी से बोले, "कल मूंग की दाल का केवल पानी देना, बस। तीसरे दिन से अन्न।"

यशोदा के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखकर स्वामीजी चले गये। अब यशोदा के शरीर में बल आ रहा था। उसका मन उत्साह से भर रहा था। मानसिक पवित्रता और हृदय की दृढ़ता से उसे लगता जैसे कोई भी बड़े से बड़ा काम वह कर सकती है। उसकी आत्मा से जैसे ज्योति फूट रही हो। सेक्स उसे तुच्छ और प्रत्येक व्यक्ति अपना बच्चा दिखाई देता। हृदय में अथाह प्रेम का स्रोत फूटने लगा। शीशे की तरह उसका मन स्वच्छ हो गया जिसमें न कोई विकार था न तुच्छ भाव। उसे लगने लगा जैसे अब वह हर किसी से निस्संकोच भाव से मिल सकती है। उसके स्त्रीत्व में पौरुष की विराटता आ गई। रात

और दिन में होने वाले भय जैसे उसकी दृष्टि में कहीं नहीं रह गये थे। तो क्या यह उन गोलियों का प्रभाव था। चौथे-पाँचवें दिन जब वह स्वामीजी के दर्शनों को पहुँची तो कुटिया खाली पड़ी थी। स्वामीजी नहीं थे। वह थोड़ी देर बैठी रही। कहाँ गये स्वामीजी, इन पिछले दिनों से वह उसके लिये रहस्य बन गये थे।

'समय आने पर ज्ञात होगा। प्रतीक्षा कर। मनुष्य में अनन्त शक्ति है।' स्वामीजी के वे वाक्य उसके मस्तिष्क में घहराने लगे। क्या ज्ञात होगा समय आने पर? प्रतीक्षा करूँ? कब तक प्रतीक्षा करूँ? बार-बार वह उनको दुहराती बैठी रही। कुटिया के बाहर एक कुशासन, जिस पर स्वामीजी बैठते थे, अब भी वैसा ही बिछा था। भीतर का कम्बल गायब था। पुस्तकें वैसी ही रखी थीं। चटाई वैसी ही बिछी थी। उनकी कोपीन और अधोवस्त्र अरगनी पर टँगे सूख रहे थे। स्वामीजी नहीं थे। यशोदा को पहले स्वामीजी से कभी भय लगता था। अकेले में उनसे मिलती तो एक संकोच, एक दूरी अनुभव करती। विवशता से वह उनसे मिलती थी। आज वह सब उसके भीतर नहीं था। मानसिक तरंगें जैसे जीवन की अनन्त शक्ति से अनुप्राणित हो चुकी थीं। आज उसे लगता, आ पड़ने पर वह शेर का सामना कर सकती है। अपने विश्वासों से वह गंगा की धारा पलट सकती है। पहाड़ों को मैदान बना सकती है। आज जब स्वामीजी की दी गई शक्ति वह पा गई है तब स्वामीजी नहीं हैं। 'कहाँ गये स्वामीजी? कब उनके दर्शन होंगे? स्वामीजी ने मुझे बनाया है। मेरा नव-निर्माण किया है।' वह टहलती रही। जब काफ़ी देर बीतने पर भी स्वामीजी नहीं आये। तब वह सामने गंगा के तट पर जा बैठी।

पत्थरों से लड़ती गंगा की पतली धार तेजी से वह रही थी। प्रातःकाल का बाल-सूर्य सामने पर्वतों के ऊपर हँस रहा था। जैसे पृथ्वी पर बरसाने के लिये प्रकाश के गोले अपने मुह से निकाल रहा हो।

उसने उत्तप्त होकर एक बार फिर स्नान किया और आत्मलीन हो गई। न जाने कब तक वह बैठी रही कि अचानक उसे सुन पड़ा, कोई उसे पुकार रहा है—"बेटी, यशोदा!"

उसने आँखें खोलीं तो एक तरफ स्वामीजी को खड़े पाया। वह उठी और प्रणाम करके खड़ी हो गई।

"बहुत देर हो गई ?"

"नहीं, ऐसी बहुत तो नहीं।"

"आ कुटिया में चलें।"

वह पीछे-पीछे हो ली। स्वामीजी कुटिया के बाहर आसन पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद बोले—"कैसा लगता है ?"

"बिलकुल नया। बदल गई हूँ जैसे।"

"ठीक है। यही तो मैं चाहता था। आज तेरे काम का समय आ गया है।"

यशोदा के मन की धड़कन बढ़ी। वह बेचैन होकर सुनने को उत्सुक हो उठी।

"दृढ़ है न ?"

"हाँ, महाराज।" उसने हाथ जोड़ दिये।

"अपने शरीर से मोह हो तो वही कर जो करती रही है।"

"मुझे किसी से मोह नहीं है।"

"आग पर चलना पड़ेगा।"

यशोदा भीतर ही भीतर भर उठी, फिर जैसे उसमें शक्ति का स्रोत फूट उठा। बोली, "चलूँगी।"

"अपने व्रत पर दृढ़ रहना होगा।"

"रहूँगी।"

वह उठे और एक कोने से मोमबत्ती निकाल लाये। उसे जलाकर बोले, "ला हाथ।"

यशोदा ने हाथ बढ़ा दिया। उसकी एक उँगली के नीचे मोमबत्ती जल रही थी। वह अचल स्थिर थी। बिना हिले-डुले बैठी रही। स्वामीजी ने बत्ती हटा ली और प्रसन्न होकर बोले—"ठीक है, तू सच्ची देश-सेविका बन सकेगी।"

"यह क्या कह रहे हैं स्वामीजी, देश-सेविका।" परीक्षा में उत्तीर्ण होने की उसे प्रसन्नता हुई।

थोड़ी देर बाद बोले—"यह मलहम लगा ले, हाथ ठीक हो जायगा। और सुन, आज से चौथी रात को चलना होगा।"

"कहाँ?"

"जहाँ मैं ले चलूं।"

"क्या मैं कुछ भी नहीं जान सकती?"

"जानेगी, समय पर जानेगी। मेरे ऊपर विश्वास है न?"

यशोदा के हृदय में भय व्याप्त हो गया। न जाने क्या चाहते हैं स्वामीजी। उसे लगा जैसे वे उसके रूप पर मोहित हैं, न जाने कहाँ ले जायँगे।" उसे वे वाक्य याद आये जब उन्होंने कहा था—'अपने शरीर से मोह हो तो वही कर, जो कर रही है।" निश्चय ही कुछ और बात है। वह देश-सेविका बनेगी। देश-सेविका। देश-सेविका ये शब्द उसके कानों में गूंजने लगे। स्वामीजी देख रहे थे। अन्त में बोले—"डर लगता है बेटी?"

"बेटी" शब्द ने जैसे उसे चौंका दिया। वह सँभल गई।

"नहीं महाराज।"

"तो आज से चौथी रात को चलना होगा। पहनने के कपड़ों के अलावा और कुछ नहीं। समझी?"

"समझ गई, महाराज।"

"जा। तैयार होकर नौ बजे रात को आना।" इसी समय उसने देखा कुछ आदमी उनसे मिलने आये हैं। यशोदा पीछे फिरकर देखती चली गई। उसके मन में विचार उठता। कहाँ जाना होगा? उसे लगा इन पिछले दिनों से स्वामीजी रहस्यमय हो गये हैं। न जाने क्या चाहते हैं ये मुझसे। फिर भी उसे विश्वास हो रहा था उसके जीवन का उद्देश्य बहुत ऊँचा है। कमल की तरह वह भी कुछ कर सकेगी। सामने अँधेरा होते हुए भी उसे एक प्रकाश दिखाई देने लगा। उसका भविष्य के प्रति अधिक उत्सुक मन अधिक जागरूक हो उठा। चौथे दिन स्वामीजी के दर्शन करके जब वह धर्मशाला में पहुँची तो मैनेजर ने

आकर बताया, "सेठानी और आपकी ननद आ गई हैं। शायद वे आपको लेने आई हैं।"

"कहाँ हैं ?"

"पण्डे के साथ नहाने गई हैं। दो नौकर साथ हैं। सबेरे ही आ गई थीं। आपका इन्तजार करती रहीं।"

वह बिना कुछ कहे अपने कमरे में चली गई। मैनेजर ऊपर चला आया और बोला, "भोजन उनका सामने रसोई में बनेगा। आप भी वहीं भोजन करेंगी। और कोई काम ?"

"नहीं, और कोई काम नहीं है। तुमने कोई चिट्ठी लिखी थी क्या ?"

"जब आपने व्रत रखा था तभी उनके एक पत्र के जवाब में लिखा था।"

"क्या तुम्हारे पास सेठजी के पत्र आते हैं ?"

"बराबर।"

यशोदा चुप हो गई। वह सोच रही थी यह क्या हुआ ? उसे कलकत्ते ले जाने आई हैं। चम्पो भी आई है। थोड़ी देर बाद उन दोनों और बच्चों की आवाजें आईं और देखते-देखते वे दोनों ऊपर आ पहुँचीं। यशोदा कम्बल के आसन पर बैठी थी। वह दोनों को देखकर खड़ी हो गई। बच्चों ने चारों ओर से घेर लिया। उसने जिठानी और ननद के पैर छुए। वे दोनों बारी-बारी उससे चिपटकर रोने लगीं। सेठानी ने देखा तो चिल्लाकर बोली, "देख, चम्पो, बहू साधनी हो गई है। तेरे ही करम हैं। मेरी राजकुमारी का काईं हाल हो गिया। तप करे है तप।"

चम्पो से कुछ भी जवाब नहीं दिया गया। उसने फिर एक बार गले से लगकर रोना शुरू कर दिया। रोते-रोते बोली, "सब कुछ तेरा है, चल जशोदा। बहुत दुख पाया मेरी रानी। मेरी बहू।"

सेठानी बोली, "वे कैवें हैं आधा तेरा, आधा चम्पो का। हो गया फैसला। दुकान में दो पैसे की पत्ती भी मिलेगी। कितना हो जायगा भला ? बहुत दुख पाया बिचारी ने।"

"पाँच-छः हजार से काईं कम होवेगा।" चम्पो ने आँसू पोंछते हुए कहा।

उसके जमीन पर आसन और गिनती की चीजें देखकर दोनों बहुत दुखी हुईं।

"काई करे बिचारी मालिक ही खोट्टा निकड़ा। बा रांड खागी उसे तो। मैंने बार-बार समझाया पन्नालाल, घर की बहू घर की होवे है। इसका ख्याल कर। पर मेरी कौरण सुरणे था। ऐसा खोट्टा बदजात भाई मैंने नहीं देख्या बाई।" बच्चे कमरे में ऊधम मचा रहे थे। कोई भी चीज अपनी जगह नहीं रह पाई थी। शोरगुल से उसे लग रहा था कि कान बहरे हो जायेंगे। वे दोनों चिल्लाकर बातें कर रही थीं। हाथ मटकाकर ऊँचे बोलकर वे यशोदा की दुर्दशा का बखान कर रही थीं। इसके बाद उसके आठ दिन तक निराहार रहने की चर्चा चली। उसके सतीत्व के राग अलापे। मरे हुए मालिक को कोसा। फिर कहने लगीं– "परसों चलेंगे। किसी का लेना-देना हो तो ले-दे ले। जो चीज की जरूरत हो वो भी ले लीजियो। आपाँ तो हरद्वार ठैरांगे। वहीं से सामान खरीदांगे।"

चम्पो बोली, "मैं सोचूं हूँ देश हो आती पर इब तो कलकत्ते ही चलूँगी।"

"हाँ और कईं। बहू जा री है तो तेरा साथ रैरणा जरूरी है चम्पो। उसे घर सौंप के चाहे जहाँ जाइयो।" इसके साथ उन्होंने कलकत्ते, बम्बई और इधर-उधर के परिवारों के पोथे खोलना शुरू कर दिये और हाथ मटका-मटकाकर ठोड़ी पर हाथ देकर चूड़ियाँ खनखनाती वे जी खोलकर सब की बुराई-भलाई करने लगीं।

यशोदा नई बहू की तरह चुप बैठी थी। उसकी सफेद धोती देखकर चम्पो उठी और एक रेशमी सफेद साड़ी ले आई। "ले पैरण ले कोई देखेगा तो के कैंगा। सेठ की बहू है कोई गँवार गरीब की तो नीं है।"

सेठानी ने भी आग्रह किया। वे दोनों रेशमी लहरिया धोतियाँ पहने थीं। इसके बाद चम्पो ने खाली हाथ देखे तो दो जड़ाऊँ कड़े लाकर उसके हाथ में डाल दिये। सेठानी ने देखा तो समर्थन किया।

"पीछे जब हम ह्याँ आये थे तब तू कहाँ गई थी री डेरादून। क्या था री वाँ ? हम तो खोज-खोज के थक गये। सेठ चावें थे मिल लेते। वे पाँच सौ भी

लौटा दिये।"

"भगवान की भगती करे है बिचारी काई करे।" बच्चे भूख-भूख चिल्लाने लगे तो सेठानी ने कमरे से ही नौकर को पुकारा। जब रसोइया काफी उतराई-चढ़ाई के बाद आया तो बोली, "कितनी देर है रे खाणे में ? छोरे भूखे हैं।"

"बस, बना समझो। अभी तैयार हुआ।" बच्चे उसके साथ चले गये। फिर भी उन दोनों की बातें धर्मशाला के आंगन में सुनाई दे रही थीं। खाना तैयार हुआ तो यशोदा पहले हिचकिचाई। वह शाम को खाती थी, एक बार। लेकिन वे दोनों उसे पकड़ ले गईं। खाना खाकर रात की जागी वे दोनों बड़े कमरे में, जहाँ ठहरी थीं, खुर्राटे लेने लगीं।

यशोदा के भीतर अन्तर्द्वन्द्व हो रहा था। वह कह रही थी यह कहाँ की मुसीबत आ गई। क्या ये अभी आज ही आने को थीं ? उधर बच्चे यशोदा को देखकर इतने हिल-मिल गये कि खाना खाकर वे उसी के आसन पर जगह के लिये लड़ते-लड़ते सो गये। तीनों बच्चों की भोली चिन्ताहीन मुखाकृति को वह थोड़ी देर तक इकटक देखती रही। इसी बीच एक की जो आँख खुली तो वह उसकी जाँघ पर सिर रखकर लेट गया। यशोदा उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। उसे लग रहा था जैसे वह उसी का बच्चा हो। वह सोचने लगी यदि मेरे बच्चा होता तो वह भी इतना ही या इससे बड़ा होता ? कच्चे सपने की तरह उसके मातृत्व की ग्रंथियाँ खुल गईं। वह बेचैन हो उठी। एक अनचाहा नशा उसकी नस-नस में लहराने लगा। जैसे ही वह इस भावना में बहती वैसे ही स्वामीजी का चेहरा, उनकी आज्ञा मस्तक में घहराने लगती। जैसे दोनों तटों के बीच नदी की धार में खड़ी हो। उमड़ते उच्छ्वास की तरह दोनों तरह के विचार मस्तक में टकराने लगते। सोचते-सोचते उसने पाया, किसी बड़े काम से पहले यह प्रलोभन का समय उसके सामने आ खड़ा हुआ है। उसे तो जाना ही है। वह स्वामीजी की आज्ञा नहीं टाल सकती। वह जायगी। उसे रुपये का, वैभव का अब कोई मोह नहीं है। इस अनायास प्राप्त वैभव की शृंखला को वह तोड़ देगी। उसे कोई नहीं रोक सकता। वह रुक नहीं सकती। फिर दूसरे विचार ने उसे जकड़ लिया। वह कितनी मूर्ख है, क्या उसे मालूम है, वह

दूसरा मार्ग क्या होगा ? स्वामीजी ने कुछ भी तो नहीं बताया। कोई भी संकेत तो नहीं किया। देश-सेविका बनेगी, वह क्या है, क्या होगा वह। हो सकता है वह उसको न पसन्द करे तो फिर क्या होगा। यह हाथ आया सुयोग हमेशा के लिये उसके हाथ से चला जायगा। सभी तो रुपये की चिन्ता करते हैं। फिर वह कुछ नया तो नहीं कर रही। रुपया हाथ आने पर वह चाहे जितना दान कर सकती है। चाहे जो कुछ देश-सेवा में लगा सकती है। यह देश-सेवा, किसने देखी है देश-सेवा। क्या है इसमें ? हाथ में आये को छोड़कर अनदेखे के पीछे दौड़ना कहाँ की बुद्धिमानी है। जब स्वामीजी मुझे नहीं पायेंगे तो आप ही चुप हो जायेंगे। कमल, कमल से मुझे अब कुछ भी लेना-देना नहीं है। जब उस ने मेरी चिन्ता नहीं की तब मैं क्यों करूँ। क्यों फिरूँ उसके पीछे ? तरह-तरह के विचारों ने उसे झँझोड़ दिया। उसने कहा क्या मैं यहाँ तक नीचे आ गई हूँ। एक विरक्ति, एक घृणा, धन के प्रति एक उपेक्षा के भाव ने उसे दबोच लिया। लम्बी परम्परा की तरह बहती मानसिक चिन्ता-धारा जोर से बढ़ने लगी। हृदय की विवेकमयी लहरों से वह जैसे नहा गई। कुछ देर के लिये उसने सोचना बन्द कर दिया। बच्चे को नीचे लिटा कर वह उठी, टहलने लगी। अब वे विचार फिर जोर पकड़ने लगे। वह निश्चय पर पहुँचना चाहती थी, इधर या उधर। उसने कसकर अपना सिर पकड़ लिया और दीवार की तरफ मुँह करके खड़ी हो गई। कमरे के तीन तरफ खिड़कियाँ थीं। ठण्डी हवा आ रही थी। वह एक खिड़की के सहारे उत्तर की तरफ देखने लगी। दूर गंगा तट और पहाड़ नजर आ रहे थे। इन पिछले दिनों वर्षा के कारण वे हरे-भरे हो रहे थे। जैसे नया जीवन पाकर नये ढंग से साँस ले रहे हों। पास ही मकान की मुँडेर पर एक कौआ एक बच्चे के हाथ से रोटी छीनने की ताक में बैठा था। बच्चा नीचे से बार-बार उड़ा देता। रोटी उसने मुँह में रख ली, जैसे मुँह में रोटी भरकर बन्द दाँतों से उसे चिढ़ा रहा हो। कौए को और कुछ न सूझा। उड़कर मुँह में दबी रोटी का बाकी भाग छीन लाया। अब वह विजय में काँव-काँव करके गाने लगा। पास ही एक किनारे पर बैठी बिल्ली ने देखा तो झपट पड़ी और कौए को डराकर रोटी

उसने छीनना चाही। मुँडेर से जो रोटी का टुकड़ा गिरा तो नीचे खड़े बच्चे ने उठा लिया। वह खाने लगा।

यशोदा ने देखा तो हँसी आ गई। बच्चा खुश था। उसे सूझा रोटी माया धन की तरह है। यह किसी की भी नहीं है। वह बार-बार घूमती रही। बीच में रुक जाती। फिर टहलने लगती। जैसे वह किसी निश्चय पर पहुँच रही हो। उसने धोती, ब्लाउज, पेटीकोट कम्बल में लपेटकर रख दिये और निश्चित हो गई। अब उसका निश्चय दृढ़ था। जब थोड़ी देर बाद दोनों औरतें उठकर आईं तो रसोइया और नौकर भी साथ थे।

"चल री, मन्दिरों के दर्शन कर आवें। भला कौण-कौण सा मन्दिर है?" यशोदा ने सब मन्दिरों के नाम गिना दिये। लक्ष्मण झूले की दिशा, दूरी भी बता दी।

"तो तू भी चलेगी क्या री बहू?"

सोचकर उसने जवाब दिया, "चली चलूँगी।"

आस-पास घूमकर सब मन्दिरों के दर्शन किये। इतने से वे दोनों थक गईं। दोनों अपने कमरे में नीचे जाकर लेट गईं।

साँझ हो रही थी। नौकर रसोई में लग गये। यशोदा ने कहा—"मैं भजन कर आऊँ।"

"कब तलक आवेगी भला?"

"रात तक।"

"अकेली! ना बाबा नौकर को ले जा।"

यशोदा ने हँसकर जवाब दिया—"अब तक क्या मेरे पास नौकर ही था?"

बच्चों ने पुकार मचाई, हम भी चलेंगे।

यशोदा ने कल ले चलने की बात कहकर उन्हें शान्त किया। उसके जी में अब भी उफान उठ रहा था।

सब लोगों को शान्त करके वह अपने कमरे में आई तो आसन पर बैठ गई। बत्ती उसने बुझा दी। निश्चल दीप की तरह वह शान्त थी। साढ़े आठ बजे के लगभग वह उठी, इधर-उधर देखा। तो सब ओर शान्ति थी। मैनेजर शायद खाना खाने या कहीं बाहर गया था। कम्बल की पोटली दबाकर वह चल

दी। कमरा उसने खुला छोड़ दिया। उस अँधेरे और झुटपुट प्रकाश में वह निरन्तर प्रकाश पाने चल दी। पीछे कहीं-कहीं कुत्ते भौंक रहे थे। गायें अब भी सड़क के किनारे बैठी जुगाली कर रही थीं। जिस समय वह स्वामीजी के आश्रम में पहुँची तो भरत मन्दिर के घण्टे ने नौ की गजर बजाई।

चिदम्बरं की योजना थी कि सब दल के साधुओं की एक सेना बनाई जाय जिसमें उदासी, निर्मला, कबीर-पंथी, वैरागी सभी साधु हों, और ये अंग्रेजों से लड़कर उन्हें देश से बाहर निकाल दें जैसा कि मुसलमानों के समय में साधुओं ने किया था। स्वामी हरिशरणानन्द यही चाहते थे। उन्होंने अपने यौवन-काल में जगह-जगह घूमकर लोगों को उत्साहित किया था। यूनिट के तौर पर लोगों को शिक्षा देने का प्रबन्ध किया था। लगभग हजार साधुओं को तैयार कर लिया था। उनकी योजना थी कि अगले साल कुम्भ के अवसर पर सब लोग हरिद्वार में इकट्ठे हों। वहीं से एकदम हल्ला बोल दिया जाय। उन्होंने दो-एक राजाओं को इसके लिये तैयार कर लिया था किन्तु कुछ सरकारपरस्त महन्तों ने भण्डा-फोड़ कर दिया। स्वामीजी को सरकार ने जेल में डाल दिया। एक तरह से सारा प्रयत्न विफल हो गया था। कई वर्ष जेल काटने के बाद स्वामीजी अपने ही लोगों से निराश हो गये थे। उस समय के साथियों में जेल में बहुत से मर गये। कुछ जो बाकी बचे निरुत्साहित होकर बैठ गये थे। चिदम्बरं उस समय के उत्साही कार्यकर्त्ता थे। स्वामीजी के पकड़े जाने पर वे गायब हो गये। और उनके लौट आने पर वे कभी-कभी आते और उनसे परामर्श करते। स्वामीजी जेल से बीमार होकर निकले तो उनका शरीर काफी दिनों तक अस्वस्थ रहा। ऋषिकेश में रहकर स्वामीजी लोगों से भी यही बात कहते। अब दूसरा ढंग था। उसने बताया कि अब हम लोगों का उद्देश्य है कि इस प्रकार का साहित्य तैयार किया जाय। हम चाहते यह हैं कि अंग्रेजों के प्रति घृणा इतनी फैला दी जाय कि सारा देश क्रोध और घृणा से उबल उठे।

"सेना का क्या रहा ?" एक ने पूछा।

"यह अभी हमारी योजना नहीं है न उसके लिये हमारे पास उतने साधन हैं। नये आधुनिक अस्त्रों के बिना हम युद्ध करके सफलता नहीं पा सकते। स्वामी (हरिशरणानन्द) जी का विचार है पहली योजना की असफलता का एक कारण यह भी है कि उनके पास आधुनिकतम अस्त्र नहीं थे।"

"अब सरकार के खुशामदी आपके काम में विघ्न नहीं डालेंगे, इसका क्या प्रमाण है ?"

"अब हम सीधे सरकार के संघर्ष में नहीं आवेंगे। हमारा उद्देश्य वैधानिक ढंग से साधु तथा जनता को जाग्रत करना होगा। उन्हें स्वतन्त्रता का महत्त्व समझाना भर है, उन्हें जाग्रत करना भर है।"

वह स्थान घने जंगल में था, एक विशाल आश्रम की तरह नगर से दूर। तीन तरफ फूँस की कुटियाएँ बीच आँगन में कूआँ। चारों तरफ फूलों की क्यारियाँ। एक ओर बीच में घास का मैदान और एक रसोईघर। उससे सटे बड़े छप्पर में पुस्तकालय था। उसके पीछे छापे की मशीनों का स्थान। आश्रम के चारों ओर नागफनी बाड़ लगी थी। एक तरफ गोशाला थी। चिदम्बरं ने दो आदमियों को एक-एक झोंपड़ी दे दी। जो लोग पहले से थे उन्होंने सब का स्वागत किया। रात को खा-पीकर सब लोग सो रहे।

दूसरे दिन सबेरे ही चिदम्बरं ने सबको बुलाकर कहा, "यह इतने तरह के काम हैं। जो जिस काम को पसन्द करे बाँट ले।"

उसने बताया, "स्वामीजी के ऋषिकेश जाने के बाद से हमारा सब काम उलट-पुलट हो गया है। हमें सबसे पहले कम्पोजीटर मशीन मैन चाहिएँ, जो शीघ्र ही काम सीख लें। मशीन मैन छापें। हमें पहले कुछ पैंफ्लेट तैयार करने होंगे। दूसरे उनको सींकर तैयार करने वाले। तीसरा वह दल होगा जो प्रान्तों में घूमकर सावधानी से उन्हें वितरित कर सके।"

"क्या कम्पोजिंग का काम अपने आप सीखना होगा ?" एक ने पूछा।

चिदम्बरं ने बताया, "हमारे इस स्थान से देहरादून दस मील है। वहाँ कई प्रेस हैं, उनमें काम सीखने की व्यवस्था की जा सकती है। कम्पोज़ करने का काम बहुत कठिन नहीं है। अभ्यास की बात है। जो लोग चाहेंगे उन्हें किसी

प्रेस में जाकर सीखना होगा। पर···"

"पर क्या··?" दूसरे ने पूछ लिया।

"यह काम मैला है। कपड़े भी स्याही से मैले हो सकते हैं। बाहर के आदमी को हम रख नहीं सकते। आप समझते ही हैं।"

दो व्यक्ति इसके लिये तैयार हो गये। चिदम्बरं ने कहा, "आज ही दोपहर को मैं आपको देहरादून ले चलूँगा। रोज़ आ तो जायेंगे न ? वैसे वहाँ रहने की व्यवस्था भी हो सकती है। खैर, यह बाद की बात है।"

"दो मशीन चलाने, कागज काटने वाले भी हमको चाहिएँ। एक मैं हूँ, मैं यह काम सँभाल लूँगा। एक आप में से कोई आ जायँ। मैं यह काम सिखा दूँगा।" चिदम्बरं दल का नेता था। उसको मशीन का काम लेते देखकर दूसरों में उत्साह हुआ। स्वरूपानन्द नाम के एक नवयुवक साधु ने यह काम सँभाल लिया। वहीं बैठे एक साधु का परिचय कराते हुए चिदम्बरं ने कहा, "यह स्वामी अरूपानन्द हैं जो पैम्फलेट की सामग्री तैयार करेंगे। ये आक्सफोर्ड के पढ़े हुए हैं। हिन्दी, बँगला, मराठी जानते हैं। विलायत में स्वदेश के लोगों को उत्साहित करते रहे हैं। घर से सम्पन्न होते हुए भी इन्होंने विवाह नहीं किया। मैं इन्हें कठिनाई से खोजकर लाया हूँ। बड़े शान्त और अध्यवसायी आदमी हैं।" सब काम की व्यवस्था करके चिदम्बरं देहरादून चला गया। कुछ सामग्री स्वामीजी ने भेजी थी।

एक मास के भीतर सब काम यथावत् चालू हो गया।

स्वामी हरिशरणानन्द ने सब व्यवस्था देखी और रात भर रहकर चले गये। कमल को लोगों में साहित्य बाँटने का काम सौंपा गया। वैसे आश्रम का वह हिसाब-किताब रखता था। चिदम्बरं ऊपर की देख-भाल करते, रुपया लाते। फिर मस्तिष्क स्वामीजी का था। उनके पास हर सप्ताह कोई न कोई जाता।

एक बार कमल गया तो देखा यशोदा अभी-अभी उठकर गई है। उसके मन में आया, मिल ले किन्तु स्वामीजी ने ताड़ लिया, कहा,—"देखो, जो काम तुमने हाथ में लिया है उसमें माया-मोह के लिए कोई स्थान नहीं है। चिदम्बरं इस मामले में बहुत कठोर हैं। हमारा ध्येय सेवा है। तुमने सेवा का व्रत लिया

है। कमजोरी नहीं आनी चाहिए। मैं स्त्रियों में काम करने के लिए स्त्रियों को भी दीक्षित करूँगा। वह युवकों की परीक्षा का अवसर भी होगा। बोलो, क्या कहते हो ?"

कमल ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"आप ठीक कहते हैं। मुझे आप कभी गिरा हुआ नहीं पायेंगे।"

"हाँ, हम लोगों का ध्येय केवल सेवा है। यह तो पहली योजना है। हम कोशिश कर रहे हैं दूसरी योजना भी हमारी सफल हो।"

"वह क्या ?"

"सामने आ जायगी। धैर्य रखो।" कमल अपने पहले स्थान में एक दिन ठहरकर चला गया। जब दस हजार के लगभग पैम्फलैट तैयार हो गये तब चिदम्बरं ने कमल और ब्रह्मानन्द आदि को विभिन्न प्रान्तों में भेजा। अब कमल का नाम बदलकर चिदम्बरं ने उसे आत्मानन्द कहकर पुकारना शुरू कर दिया था। तीनों व्यक्ति दौरे पर चले गये। वे साधुओं के आश्रमों में ठहरते और धीरे-धीरे अवसर देखकर अपना कार्यक्रम लोगों को बताते, और यह नहीं प्रकट होने देते थे कि यह साहित्य वे स्वयं साथ लाये हैं। उन दिनों उज्जैन में 'सिंहस्थ' के मेले में आत्मानन्द अपना काम कर रहा था। वह व्यक्तिगत रूप से साधुओं से मिलता तथा परोक्ष रूप से साहित्य बाँटता। पैम्फ-लेट वह उन्हीं को देता जिन पर वह विश्वास कर लेता था। वह साधुओं के समूह में जाकर बैठ जाता। अवसर देखकर उनसे बातचीत करता। उसने पाया बहुत कम लोगों को उसके काम में रुचि है। फिर भी वह उन्हें समझाता, देश की दुरवस्था का चित्र उनके सामने उपस्थित करता। साधुओं ने पिछले युग में जो काम किये हैं वह भी बताता। शिप्रा के किनारे साधुओं के डेरे पड़े थे। हजारों साधु, संन्यासी, वैरागी, उदासी वहाँ थे। देश के सभी मंडलेश्वर एकत्रित हुए थे। तम्बुओं के उस नगर में चहल-पहल का कोई अन्त न था। स्वयं अधिकारी लोग कभी-कभी चक्कर लगाते। कथा, वार्ता, प्रवचन, कीर्तनों में हजारों गृहस्थी भाग लेते। एक पूरा नगर साधुओं का बस गया था। आत्मानन्द के साथ चिदम्बरं और ब्रह्मानन्द थे। स्वामी हरिशरणानन्द भी आ गये। उनके तम्बू के

पास ही बैरागियों के डेरे थे, उनसे हटकर नागा साधुओं के। हरिशरणानन्द सबेरे होते ही तम्बू के बाहर आसन जमाकर बैठ जाते और आगत दर्शनार्थियों को उपदेश देते। उनके बोलने का ढंग इतना आकर्षक और हृदयग्राही था कि थोड़े ही समय में उनके व्याख्यान में काफी भीड़ जमा हो जाती। वे ब्रह्मचर्य, संन्यास-धर्म के साथ देश की अवस्था पर भी बोलते। जीवन का उद्देश्य समझाते, समय का सदुपयोग भी बताते। सिंहस्थ के स्नान तक उनका स्थान प्रसिद्ध हो गया।

स्वामीजी ने सब लोगों की अलग-अलग व्यवस्था की थी। बाँटने वाली सामग्री भी एक जगह नहीं थी। इसे देखने पर लगता था जैसे इनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर व्याख्यान के समय या अन्य अवसर पर सब लोग इकट्ठे हो जाते। रात को मिलते। चिदम्बरं हरिशरणानन्द के साथ थे। आत्मानन्द नगर में। ब्रह्मानन्द उदासी साधुओं में। कुछ पैम्फलेट भी बँट चुके थे। उनमें बड़े जोरदार शब्दों में साधुओं से अपील की गई थी। आग बरसाती हुई भाषा में साधुओं को संगठित होकर देश से विदेशियों को निकालने पर जोर दिया गया था। अंग्रेजों ने देश में जो अत्याचार किये थे उनका ब्यौरेवार वर्णन विस्तृत तालिका सहित दिया गया था। जो पढ़ता उस पर प्रभाव पड़ता। पढ़ने वाले लेखक की तलाश करते और चाहते कि वे उस दल में सम्मिलित हो जायँ। धीरे-धीरे बड़े महन्तों मंडलेश्वरों ने उसे पढ़ा। सभी मानने लगे कि पैम्फलेट में जो-कुछ लिखा है वह सत्य है किन्तु जहाँ त्याग और लड़ने का प्रश्न था वहाँ लोग दहल जाते। साहस छोड़ बैठते।

रात का समय था। हरिशरणानन्द अपने तम्बू में बैठे चिदम्बरं तथा अन्य साथियों से बातें कर रहे थे कि इतने में एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। गृहस्थी के कपड़ों में वह व्यक्ति था, देखने में विनीत और भक्त-सा। वह स्वामीजी के पैर छूकर उनके पास ही बैठ गया। स्वामीजी ने निगाह उठाकर प्रश्न किया तो बोला—"महाराज, आपके व्याख्यान का मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इस सारे मेले में ऐसा सुन्दर सारयुक्त बोलने वाला एक भी साधु नहीं है। मैं आपके दर्शनों को आया हूँ किन्तु एक बात भी आपसे कहनी है……" उसके

बाद वह अन्य लोगों की तरफ़ देखने लगा। स्वामीजी समझ गये। उन्होंने कहा, "यह हमारे ही हैं तुम्हें जो कुछ कहना हो कहो।" "बात यह है कि यहाँ कुछ पैम्फलेट वितरित हुए हैं। उसमें साधुओं को संगठित होकर अंग्रेजों से लड़ने की बात बड़े जोरदार शब्दों में कही गई है। पुलिस उस पैम्फलेट का पता तेजी से लगा रही है। इधर आपके व्याख्यानों में उस पैम्फलेट में कही गई बातों की गंध है। पुलिस का निश्चय है आपकी तरफ से पैम्फलेट बँट रहे हैं......।"

वह व्यक्ति चुप हो गया। स्वामीजी हृदय के भावों को निर्भीकता से छिपा कर पूछने लगे—

"फिर ?"

"आपको पकड़ने के वारण्ट निकले हैं।"

"प्रमाण।"

"आपके व्याख्यानों का मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा है इसलिये मैंने सोचा सूचना दे दूँ।"

"कब तक वारण्ट आ सकता है ?"

"किसी भी समय फिर भी मैं समझता हूँ सबेरे चार बजे तो निश्चय ही। पुलिस नहीं चाहती किसी तरह का प्रदर्शन हो इसलिये सबेरे ही हम लोग ऐसा काम करते हैं।"

"तुम कौन हो ?" स्वामीजी ने पूछा।

"मैं पुलिस का ही आदमी हूँ। मजिस्ट्रेट-कलेक्टर सब लोग यहीं हैं। वारण्ट बनने में देर नहीं लगी।"

स्वामीजी कुछ देर सोचकर बोले, "इस कृपा के लिये धन्यवाद। किन्तु मैंने तो पैम्फलेट नहीं देखा, मैं जानता भी नहीं हूँ।"

"पुलिस के लिये यह बाद की बातें हैं। अच्छा, प्रणाम करता हूँ। जो कुछ करना चाहें जल्दी करें।"

वह चल दिया।

कैम्प के सारे लोगों में एक सनसनी फैल गई। सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। आत्मानन्द ने कहा—"मैं इस पक्ष में नहीं था कि इस तरह पैम्फलेट

बाँटे जायँ।"

चिदम्बरं बोला—"इसके बिना और कोई चारा भी तो नहीं था। खैर।"

स्वामीजी बोले—"इस विनाश की जड़ मैं ही हूँ। मैंने अपने व्याख्यानों में इसका उल्लेख क्यों किया ? मैं भी विवश हो गया। अब क्या हो ? यदि पुलिस ने पकड़ लिया तो मेरे पुराने रिकार्ड की खोज होगी। हो सकता है हमारा काम धूल में मिल जाय।"

सब लोग सोचने लगे। स्वामीजी ने कहा—"मैं जाता हूँ, कहीं भी ठहर कर प्रातःस्नान करके वापस लौट जाऊँगा। सब सामान हटा दो। चिदम्बरं, तुम यहीं रहो। जो उचित समझो उत्तर देना, तुम तो वकील भी रहे हो।" सब ने मान लिया।

इस निश्चय के साथ ही स्वामीजी ने कम्बल उठाकर प्रस्थान कर दिया। आत्मानन्द उनके साथ था। जाते हुए स्वामीजी ने कहा—"अब कुछ दिनों के लिये इस तरह पैम्फलेट बाँटना बन्द कर दो। हमारा काम हो रहा है। वे चले गये। चिदम्बरं तम्बू में रह गया। उसने सब व्यवस्था कर ली। रात को एक बजे जब सारा तम्बुओं का नगर शान्त था पुलिस ने स्वामीजी के तम्बू को चारों ओर से घेर लिया। तलाशी हुई। जब स्वामीजी न मिले तब चिदम्बरं का नाम लिख-लिखाकर पुलिस ने पूछा। चिदम्बरं बोला,

"स्वामीजी को मैंने स्वयं निकाल दिया। वह राज-द्रोह की बात करता था। हम साधुओं को राज-द्रोह से क्या काम ?"

"कौन था वह साधु ?"

"वह एक साधु था इतना मैं जानता हूँ। मैंने साधु समझकर औरों की तरह उसे आश्रय दिया था किन्तु यह मेरी प्रकृति के विरुद्ध था कि मैं अपने स्थान पर ऐसे व्यक्ति को रहने दूँ।"

"कहाँ गया वह ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"क्या नाम था उसका ?"

"शायद केशवानन्द।"

"कहाँ से आया था ?"

"कहा तो सही विशेष विवरण मुझे नहीं मालूम। यहाँ एक-एक अखाड़े में हजारों साधु पड़े हैं। शायद ही कोई एक दूसरे को जानता हो। मैं भी उसे नहीं जानता। हमारा उससे सम्बन्ध केवल साधु होने का था।"

एक ने पूछा—"किस समय गये ?"

"साँझ होते ही मैं उनसे निकल जाने की बात कहकर बाहर चला गया था। मेरे पीछे गये।"

तलाशी लेने वाले भी बाहर आ गये थे। कोई भी सामान हाथ नहीं आया था। वे गीता की पुस्तकें हाथ में लिये खड़े थे। पुलिस ने गीता लौटा दी। झुँझलाकर अफसर बोला, "आपको थाने तक चलना होगा।"

"चलिये। पर सवेरे ही तो सिंहस्थ का स्नान है। हम लोग इसी के लिये आये हैं। स्नान के बाद चलें।"

एक हँसकर कहने लगा—"हम आपको मेहमानदारी में नहीं ले जा रहे हैं। पुलिस में ले जा रहे हैं। आपने उस आदमी को भगा दिया है।"

"जी हाँ, यही तो मैं भी कह रहा हूँ। मैंने ही उसको भगाया है। वह राजा के विरुद्ध बोलता था। राजा ईश्वर का अंश है हमारे शास्त्रों में।"

बहुत देर तक प्रश्न करके पुलिस निराश होकर चली गई। चिदम्बरं ने देखा फिर भी पुलिस दिन-रात किसी न किसी रूप में वहाँ चक्कर लगा रही है। उधर स्वामीजी ने चार बजे शिप्रा में गोता लगाया और पहली ट्रेन से वापस लौट गये। आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द बण्डल बाँधकर भिन्न-भिन्न दिशाओं में चले गये। चिदम्बरं कुछ दिन तक इधर-उधर घूमता रहा।

पैम्फलेट में न लेखक का नाम था, न जगह का, न तिथि का उल्लेख ही था। दोनों व्यक्ति डटकर काम कर रहे थे। वे साधुओं के आश्रमों में ठहरकर विश्वास प्राप्त करने के बाद अपने पैम्फलेट बाँटते। आत्मानन्द ने इसी बीच सारा पैम्फलेट याद कर लिया था। वह बातचीत में धारा-प्रवाह रूप से सुना देता। सुनने वालों पर काफी प्रभाव पड़ता। जो साधु फक्कड़ थे या जिनके पास

जमीन-जायदाद नहीं थी वे तैयार हो जाते। लेकिन करें क्या ? संगठन कैसे हो ? सब लोग एक जगह मिलें कहाँ ? यही सब प्रश्न आत्मानन्द के सामने आये। आगे की योजना अनिश्चित थी। ब्रह्मानन्द भी बहुत चतुर था, बहुत बातून, बहुत कर्मठ। चिदम्बरं राजाओं से मिला उनको अपना प्रोग्राम बताता। राजा लोग भीतर से सहमत थे किन्तु साधुओं को इकट्ठा करके रखना उनके बूते के बाहर की बात थी। यह बात छिप सकना कठिन था। फिर उनके पास भी तो फौजें थीं। जब तक सारा देश संगठित न हो, सब की सहानुभूति न मिले तब तक अकेला कोई राजा लड़ भी तो नहीं सकता था। चिदम्बरं जब कहता—'आप आधुनिकतम अस्त्रों-शस्त्रों का प्रबन्ध कर दीजिये। लड़ेंगे हम लोग।' तो उत्तर मिलता—'हमारी एक एक बन्दूक का सरकार को पता है। बाहर से अस्त्र-शस्त्र मँगा सकना सम्भव नहीं है। फिर अंग्रेज़ सरकार अब इतनी मज-बूत है, उसके पैर इतने जम गये हैं कि बिना दूने बल के उसको हरा सकना असम्भव है।'

इधर राजा लोग अय्याश भी काफी हो गये थे। उनके दिन बिना चिन्ता के कट रहे थे। चिदम्बरं को निराश लौटना पड़ा। उसने यात्रा में बहुत से लोगों को तैयार किया। बाद में कह देता—'प्रतीक्षा करो। जब हम शंख फूकें तो युद्ध के लिये आ जाना।' उसे स्वयं मालूम नहीं था वह शंख कब और कैसे फूंका जायेगा।

स्वामी अरूपानन्द ने ऋषीकेश में स्वामीजी से बात करके अपनी बहन को आश्रम में बुला लिया था। वह पैम्फलेट लिखने में उनकी सहायता करती। इसी बीच निराश चिदम्बरं आश्रम में लौटे और ऋषिकेश से यशोदा को लेकर स्वामी हरिशरणानन्द।

निराश और खिन्न चिदम्बरं ने इधर अरूपानन्द के पास एक स्त्री को देखा तो वह भीतर ही भीतर जल उठा। बोला वह कुछ भी नहीं। उधर स्वामी हरिशरणानन्द को एक स्त्री के साथ देखा तो वह व्यंग्य में बोला—"स्वामीजी, हमारा पहला कार्यक्रम तो समाप्त हो चुका है, अब अच्छा है आप इन देवियों का आश्रम खोल दें। जो हम नहीं कर सके वे यह लोग करेंगी।"

स्वामीजी हँसकर चुप हो रहे। यथासमय दोपहर को स्वामीजी ने सब लोगों को बुलाया।

पहले चिदम्बरं ने राजाओं से मिलने तथा ब्रह्मानन्द, आत्मानन्द की रिपोर्ट पेश की। उनके पत्र पढ़े गये। विचार-विनिमय हुआ। एक ने कहा—"पैम्फलेट में कुछ सार नहीं है। साधुओं की जागृति का भी हम लोग प्रत्यक्ष रूप से कोई लाभ नहीं उठा सकते।"

दूसरे ने कहा, "हमको सरकार से खुलकर लड़ना चाहिये। दस-पाँच हजार साधु मर ही जायेंगे तो नाम तो हो जायगा।"

चिदम्बरं का मत था—"हमको गुप्त रूप से काम करना चाहिये। हो सके तो हम कुछ लोगों को आयुध के लिए विदेशों में भेजें। इस तरह हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने से कुछ नहीं होगा।" चिदम्बरं ने प्रस्ताव किया—"स्वामी अरूपानन्द विद्वान् हैं वे विदेश जायँ।"

अरूपानन्द ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—"यह मेरी रुचि, शक्ति के प्रतिकूल है इसके लिये जिस चतुराई की आवश्यकता है उसका मुझ में अभाव है। मैं तो चुपचाप जो आप कहेंगे कर दूंगा।"

चिदम्बरं ने कहा—"फिर और किसी को भेजिये।" तो अरूपानन्द बोले, "पासपोर्ट का प्रश्न है, फिर यदि अस्त्र-शस्त्र आ भी गये तो क्या पोर्ट पर आप सुरक्षित उतार सकेंगे? सभी चीजों की तो पूरी देख-भाल होती है। हाँ, चिदम्बरं स्वामी ही इस योग्य हैं कि किसी भी तरीके से यह हिन्दुस्थान में सामग्री ला सकें। फिर भी मुझे काफी सन्देह है।"

स्वामीजी काफी देर चुप रहे। एक प्रस्ताव यह भी हुआ कि हिन्दुस्तान में ही शस्त्र बनवाये जायें। रजवाड़ों में शस्त्रों की कमी नहीं है। वहीं और भी तैयार कराये जा सकते हैं। स्वामीजी ने अन्त में पूछा—"क्या वे शस्त्र अंग्रेजों के अस्त्र-शस्त्रों के मुकाबले में ठहर भी सकेंगे?"

कई प्रकार के वाद-विवाद चलते रहे। अन्त में स्वामीजी ने संक्षेप में कहा—"क्या यह उचित नहीं है कि हम लोग जागरण पैदा करें और उसके बाद समय की प्रतीक्षा करें।"

"कब तक ?" एक ने पूछा ।

"आन्दोलन सदा एक क्रम से चलते हैं । एक ने एक काम किया दूसरे ने दूसरा । इस समय नरम दल के लोगों की कांग्रेस है । हो सकता है एक ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जो माँगने की अपेक्षा जोर देकर सरकार से लड़ सके । उस समय हमारे द्वारा पैदा की गई इस जागृति से वही लाभ उठावें या हम उस समय इस अवस्था में हो जायँ कि लड़ सकें । मैं समझता हूँ जनता में जागृति ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये । ये दो बहनें हमारे दल में आई हैं, यदि सौंपा जाय तो ये स्त्रियों में काम कर सकेंगी । आखिर युद्ध में केवल पुरुष ही तो नहीं होंगे । स्त्रियों का सहयोग भी तो हमें लेना होगा । यह कम नहीं है कि हम सरकार के प्रति घृणा के भाव लोगों में जगा सकें । मुझे इस समय अपने काम की और कोई उपयोगिता दिखाई नहीं देती ।"

फिर पुरानी बातों को सोचते हुए वे बोले—"मेरे जेल जाने से पूर्व ऐसी स्थिति थी कि राजा लोग हमारी सहायता कर सकते थे । आज वैसी नहीं है । अब अंग्रेजों के पैर जम चुके हैं । इधर राजा लोगों को उन्होंने निकम्मा, अय्याश बना दिया है । मैं तो यह चाहता हूँ किसी न किसी रूप में स्वतन्त्रता की ज्योति जगती रहनी चाहिए । जिससे अंग्रेज भी सदा सोचते रहें । बाकी आप लोग काफी अनुभवी हैं । देश-प्रेम भी आप में किसी से कम नहीं है । जो कुछ करना हो क्रम से, शान्ति से, धैर्य से, दूरदर्शिता से कीजिए । आग बुझाने के लिए आग में कूद पड़ना बुद्धिमानी नहीं है । यदि सब एक-एक बाल्टी पानी डालें तो बड़ी से बड़ी आग भी बुझ सकती है ।"

स्वामी अरूपानन्द बोले—"स्वामीजी के बाद अब कुछ भी कहने का कोई अर्थ नहीं है । फिर भी मेरा कहना यह है कि हमें अपना आध्यात्मिक स्तर सदा ऊँचा रखना चाहिए । यदि यह नष्ट हो गया तो हम कहीं के भी नहीं रहेंगे । मैं तो केवल इसी विचार से संन्यासी हुआ हूँ अन्यथा यह काम तो मैं गृहस्थ रहकर भी थोड़ा-बहुत कर सकता था । हमारी देन देश को लड़कर अंग्रेजों को भगाने की नहीं है, किन्तु आध्यात्मिक देन होनी चाहिए जिससे इस देश का चरित्र ऊँचा रहे ।"

स्वामीजी ने कहा— "स्वामी अरूपानन्दजी की यह बात बिलकुल ठीक है। हम इस देश में सदा से एक प्रकार की आध्यात्मिक परम्परा कायम रखते चले आ रहे हैं उसको बनाये रखना हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। हमें गौण रूप से ही देश में जागृति के काम को स्वीकार करना है। वैसे यह भी ठीक है कि हमारी आध्यात्मिक उन्नति देश की स्वतन्त्रता, समाज के कल्याण के ऊपर निर्भर है। दास रहकर आध्यात्मिक उन्नति का कोई अर्थ नहीं है। शारीरिक उन्नति पर आध्यात्मिक उन्नति निर्भर है। बीमार, रोगी, तपस्वी नहीं बन सकता।"

यह एक प्रकार से अरूपानन्द की बात का उत्तर था। सब लोगों को यह पसन्द आया। अरूपानन्द का भी भ्रम दूर हुआ। काफी विवाद के बाद निश्चय हुआ कि सब को इस प्रकार के काम के बाद तीन मास तक नियमित आत्म-चिन्तन करना चाहिए, फिर देश का काम। दोनों काम साथ-साथ चलें। स्वामीजी ने अन्त में कहा—"आध्यात्मिक चिन्तन से हम अपने को संयम में रख सकेंगे। प्रलोभनों से बच सकेंगे।"

"किन्तु असंयम-प्रलोभनों के सामने रहते उनसे बच सकना कठिन है स्वामीजी !" स्पष्ट ही चिदम्बरं का संकेत उन दो स्त्रियों की ओर था जिन्हें हाल में आश्रम में दाखिल किया गया था।

"जैसे घर पर माँ-बहनों के रहते बच्चों-बड़ों में कोई विकार नहीं होता, क्या इसी प्रकार हम नहीं रह सकते ? यह एक प्रकार की परीक्षा भी है। पुराने सम्प्रदायों में स्त्रियों के रहते भी संयम का अभ्यास करना पड़ता था। उस संयम को पाने के बाद व्यक्ति 'सिद्ध' कहलाता था। मुझे कोई सन्देह नहीं है इससे हमारे आश्रम में एक प्रकार की पवित्रता का मान होगा, हम और भी ऊँचे उठ सकेंगे। असली उपवासी वह है जिसके सामने भोजन हो और वह न खाय। भोजन न मिलने पर उपवास करने वाला तो स्थिर नहीं रह सकता न ? मैं इसी में विश्वास करता हूँ। जगन्नाथपुरी, अजन्ता की गुफाओं, खजूराहो के मन्दिरों के चित्र इस बात के साक्षी हैं कि तपस्वियों की संयम-परीक्षा स्त्रियों के द्वारा होती थी।"

"यह बहुत कठिन है।"

"सरल कुछ भी नहीं है। सरल तो गिर पड़ना है चढ़ना नहीं।" बात काफी गम्भीर होती जा रही थी। चिदम्बरं ने कहा, "कृपा करके स्वामी अरूपानन्द ने जो सामग्री तैयार की है वह देख लीजिए ताकि उसे प्रकाशित कर दिया जाय।" सब लोग उधर ही चले गये। अरूपानन्द ने पाण्डुलिपि दिखाई। उन्होंने ज्ञान और कर्मयोग के नाम से एक पैम्पलेट तैयार किया था जिसमें आध्यात्मिक ढंग से मनुष्य के कर्तव्य पर जोर देकर देश की स्वतन्त्रता का महत्त्व बताया गया था। स्वामीजी ने उसे पढ़ा उसमें शारीरिक, आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान के द्वारा मनुष्य के जीवन को उठाने का महत्त्व प्रतिपादित किया था। बिना शारीरिक शक्ति के मानसिक ज्ञान अधूरा है और बिना मानसिक ज्ञान के शरीर-शक्ति अंधी है। पैम्पलेट बड़ी सुन्दर भाषा में था। स्वामीजी ने अरूपानन्द की पीठ ठोकते हुए उनके विवेचन, लिखने की शैली की प्रशंसा की और कहा—"इसे आप अंग्रेजी में भी लिख डालिए।" स्वामी हरिशरणानन्द ने रात में चिदम्बरं के साथ बैठकर निश्चय किया कि इस आश्रम को आत्म-निर्भर करना होगा। यदि सब इतना अनाज उत्पन्न कर सकें कि खाने के लिए बचाकर शेष में कपड़े आदि का काम चला सकें तो हमें माँगने नहीं जाना पड़ेगा। रही साहित्य की बात उसके लिए मैं तुम्हें कुछ व्यक्तियों के नाम-पता दे देता हूँ वे सहायता करेंगे और उसका प्रचार भी करेंगे। उनके पास इन कामों के लिए ट्रस्ट है। हम जहाँ तक स्वावलम्बी रहेंगे, परान्न न खायेंगे वहाँ तक हमारा यह आश्रम पवित्र भी रहेगा। परान्न ही दुर्बलता, बुराई, की जड़ है। इसके अतिरिक्त मैं इस आश्रम का वैसा ही एक साधारण सदस्य हूँ जैसे तुम या और सब। सब के परामर्श से काम करो। आश्रम की सफाई, रसोई, गायों का काम बहनें करेंगी। खेती का काम तुम सब लोग। परिश्रम से शरीर-विकार नष्ट हो जाते हैं। आश्रम के लिए यह नया प्रयोग था। सब लोग तैयार हो गये। स्वामीजी ने दोनों स्त्रियों को बुलाकर कहा, "तुम इस परिवार की माँ हो। यह सब तुम्हारे बच्चे हैं। यदि इसमें जरा भी त्रुटि आवे तो छोड़कर चली जाना। हर प्रकार आश्रम की पवित्रता की रक्षा करना। सावधान! आज से तुम्हारा नाम (यशोदा का) विभा

और सौदामिनी का (प्रभा) है।"

रात रहते ही स्वामीजी चले गये। चिदम्बरं को निराशा हुई। वह आश्रम की सब व्यवस्था करता किन्तु उसका मन रह-रहकर खिन्न हो उठता। उसे लगता जैसे जीवन व्यर्थ जा रहा है। जिस उद्देश्य से उसने संन्यास का आडम्बर रचा वह सफल नहीं हुआ। स्वभाव से उग्र विचार रखने के कारण वह चाहता था कि कुछ करे या मरे। वह अकेला बैठकर सोचता। अध्यात्म उसके लिए गौण था मुख्य था देश को स्वतन्त्र करना। उसने स्वामी हरिशरणानन्द के साथ काम किया था। उस समय की उनकी देश-भक्ति को देखकर वह इस काम में कूद पड़ा था। वकालत के समय मुजरिम की ओर से बहस करता हुआ वह न्याय के लिये उग्र हो उठता और सच्चाई के लिये लड़ते हुए भी जब उसका पक्ष गिर जाता तो वह क्रोध से पागल हो जाता। एक-दो बार उसने कोर्ट पर पक्षपात का आरोप भी लगा दिया। फलत: 'कटैम्प्ट ऑफ कोर्ट' का मामला चला। उसे एक बार वकालत करने से रोक दिया गया। दूसरी बार सजा होते-होते बची। तभी से उसके मन में अंग्रेज न्यायाधीशों के पक्षपात की बात जम गई। स्पष्टवादी और खरी प्रकृति का होने के कारण वह नियमत: वे ही केस लेता जो सही होते। इतने पर भी कोर्ट उसके साथ पक्षपात करके उसे हरा देता। उसे लगा अंग्रेज जाति ही बेईमान है। धीरे-धीरे उसके मन में अंग्रेज मात्र के प्रति घृणा हो गई। वह वकालत छोड़कर फ़ौज में दाखिल हो गया। वहाँ से भी भागना पड़ा। उन्हीं दिनों स्वामी हरिशरणानन्द से उसका साक्षात् हुआ। स्वामीजी अकेले ही देश की स्वतन्त्रता का झण्डा लिये लोगों में देश-भक्ति का प्रचार करते थे। चिदम्बरं ने उनके प्रभाव में आकर घरबार छोड़ दिया और अंग्रेजों के ख़िलाफ आग बरसाने लगा। अरूपानन्द के प्रति उसका मत था कि वह सीधा-सात्विक प्रकृति का आदमी है। हृदय से वास्तविक वैराग्य है। सेवा उसके लिए आनुषंगिक। शान्त, उदात्त प्रकृति का विद्वान् व्यक्ति, न किसी से विशेष राग, न द्वेष। बाकी लोग दिमाग के थोथे, सिपाही टाइप के आदमी हैं। जो कहो करने को तैयार हैं। सोच कुछ नहीं सकते। ब्रह्मानन्द चतुर था किन्तु उस पर विश्वास करना कठिन था। इधर पिछले दिनों

उसने स्वतन्त्र होकर काम करना शुरू कर दिया था, वह स्वामी हरिशरणानन्द तथा चिदम्बरं की गलती निकालता रहता। आत्मानन्द उसे भरोसे का आदमी लगा। वह जहाँ चतुर था वहाँ विवेचक भी, लगन भी कम नहीं थी। पिछली रिपोर्ट के बाद से उसका कुछ भी पता नहीं था। कभी-कभी चिदम्बरं के मन में आता वह स्वयं हथियार इकट्ठे करके इक्के-दुक्के अंग्रेजों को मारने का काम शुरू कर दे। फिर भी स्पष्ट मार्ग उसके सामने कोई नहीं था। स्वामी हरिशरणानन्द की उस दिन की बातों से वह जान गया था अब उनमें नई क्रिया-शक्ति का अभाव है। वे समाप्त हो गये हैं। फिर भी उनकी देश-भक्ति में उसे सन्देह नहीं था।

दूसरे दिन ही जब दोनों बहनों को चिदम्बरं ने एक कुटिया दे दी तो चटाई बिछाकर दोनों ने डेरा डाल दिया। प्रभा लम्बे कद की साँवले रंग की शान्त लड़की थी। वह बहुत कम बोलती। सदा से ही भाई (अरूपानन्द) के प्रभाव में रहते आने के कारण जब वह विलायत से लौटकर माँ-बाप के लाख समझाने पर भी संन्यासी हो गया, तब बहन ने भी उसके पास रहकर जीवन बिताने का निश्चय कर लिया। कालेज से बी० ए० पास करने के बाद शादी का प्रश्न आया तो उसने साफ मना कर दिया। एक दिन मौका पाकर भाई के पास आ गई। अब वह आश्रम के काम के बाद भाई के साथ मिलकर पुस्तकों से सामग्री इकट्ठी करके पैम्फ्लेट लिखने में सहायता करती। खाली होने पर भी भाई के पास बैठी रहती। विभा (यशोदा) ने स्वामीजी की आज्ञा में आत्म-समर्पण कर दिया था। उन्हीं की प्रेरणा से वह यहाँ आई थी। वह शान्त होती हुई भी काम चाहती थी। एक सप्ताह में ही उसे लगने लगा कि वह क्या करे। दिन भर गुम-सुम न कोई बात करने वाला, न पूछने वाला। अन्त में चिदम्बरं ने उसे कुछ ऐतिहासिक पुस्तकें पढ़ने को दीं। वह उन्हें पढ़ती रहती। उसके ज्ञान का विस्तार हो रहा था। अब वह कुछ न कुछ पढ़ती और सोचती। दो संन्यासी प्रेस में कम्पोज़ करते, एक ऊपर की देख-भाल करता। चिदम्बरं मशीन पर काम में लगे रहते। सब अपने काम में लगे रहते। फिर चाहते हुए भी विभा से बात करने का संकोच था। चिदम्बरं की आँखें सब को ताड़ती रहतीं। वह नहीं

चाहता था कि आश्रम की व्यवस्था में कोई विघ्न हो।

विभा उस दिन सवेरे आश्रम का काम करके भोजनालय में चली गई। थोड़ी देर बाद प्रभा वहाँ आ गई। जो दो साधु भोजन बनाते थे वे उस समय किसी काम से बाहर चले गये थे। इधर चिदम्बरं ने विभा-प्रभा के आते ही सोचा था रसोई का काम इन बहनों को दे दिया जाय, किन्तु प्रभा ने कह दिया, वह खाना बनाना नहीं जानती। सीखने की उसकी कोई इच्छा नहीं है। विभा को वह काम आता था। उसे जब-तब भोजन के काम के लिये चिदम्बरं भेज देता। वह अकेली रसोई में थी। आठ-दस का खाना। शाम को भोजन नहीं बनता था। दो बजे के बाद सबको भोजन मिलता। शाम को कोई चाहे तो दूध। इधर पिछले दिनों से चिदम्बरं ने दूध का घी तैयार करके देहरादून भेजना शुरू कर दिया था। आश्रम के खर्च में कुछ सहारा हो गया। आते ही प्रभा ने पूछा—

"क्या काम है, क्या करूँ?"

"आटा माँड़ लो।"

"आटा माँड़ना मुझे नहीं आता।"

"परात में निकालो, मैं बताती हूँ।"

प्रभा ने आटा परात में निकाला तो बहुत सा जमीन पर गिर गया। विभा ने ठीक करके पानी डाला और माँड़ने लगी। प्रभा बैठी देखती रही।

"मैंने क्या कभी यह काम किया है?"

"तो सीखो।"

प्रभा कुछ भी उत्तर न देकर बैठी रही। रोटी बनाने के समय भी उसने पहली बात दुहरा दी। चिदम्बरं ने आकर देखा तो प्रभा से बोला—"प्रभा देवी, सब सीख लो। न जाने कब बनाने की जरूरत पड़ जाय।"

प्रभा ने कोई ध्यान न दिया, वह वैसे ही बैठी रही। उसी दिन शाम को उसने भाई से कहा—"वह यह सब काम नहीं कर सकती। यह स्थान भी अच्छा नहीं है। कहीं और चलो।"

"कहाँ? पर पेट तो सभी जगह भरना पड़ेगा। काम तो करना ही होगा।"

"मैं यह काम नहीं कर सकती।"

"तो सीखो। साधु-जीवन में तो सभी अपने हाथ से करना होगा, यह जरूरी नहीं है सब जगह खाना मिले। भूखे भी रहना पड़ता है कई बार।" प्रभा चुप हो गई। उसने देखा चिदम्बरं विभा की सहायता कर रहा है। और दो-एक लोग पत्तल-पानी की व्यवस्था कर रहे हैं। इससे पूर्व वह खाने के समय भाई के साथ आकर भोजन के लिये बैठ जाया करती थी। विभा के प्रति उसके हृदय में स्वाभाविक घृणा थी। वह उसे छोटा, अपढ़ मानती। कई बार पूछने पर नीरस उत्तर देती। प्रभा में न जाने वैराग्य था या नहीं। भाई के कारण वह घर छोड़कर चली आई थी। उसने शायद समझा था कि भाई के पास वह सब सुख-सुविधा उसे मिलेगी जो घर में है किन्तु यहाँ आकर जो उसने देखा तो वह चकित रह गई। फिर भी कुछ थोड़ा उसने अपने को मोड़ा। लिखने-पढ़ने के काम में सहायता देकर मन को सन्तोष दिया। आज जब चिदम्बरं ने अरूपानन्द के सामने ही उससे भोजनालय में जाकर विभा की सहायता करने की आज्ञा दी तो उसका मन विरूप हो उठा। स्वभाव से शान्त होते हुए भी पूँजीवादी परिवार के दोष उसमें थे। भाई के अलावा वह किसी को कुछ भी न समझती। चिदम्बरं उसकी दृष्टि में पढ़ा-लिखा उजड्ड था। अन्य लोग अत्यन्त तुच्छ। विभा एक दहकानी औरत। अरूपानन्द उसके मन को पढ़ सकने में अक्षम रहा। कुछ तो इसलिए कि इधर देखने का उसके पास समय न था। वह निरन्तर कुछ न कुछ पढ़ता-लिखता और बाकी समय में आत्म-चिन्तन करता। भूला, बेखबर-सा निरीह प्राणी था। चिदम्बरं कठोर हो उठा। उसने दूसरे दिन प्रभा को मुख्य रूप से भोजनालय में भेजा और सहायता के लिये विभा को। फिर भी मुख्य काम विभा ने किया। भोजन बनने में चार बज गये। दाल जल गई। दो बार आटे में पानी ज्यादा हो गया। रोटियाँ जब न सिकीं तो विभा ने बनाईं।

भोजन के समय किसी ने कुछ न कहा। शाम को चिदम्बरं ने सब को इकट्ठा करके कहा—"आश्रम की व्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि सब लोग सब काम करें। किसी को कोई भी काम करने से परहेज न होना चाहिए। कल से हम दो साधु भोजन बनायेंगे और मशीन का काम इन दोनों बहनों को करना होगा। सबेरे ही मैं इन दोनों को वह काम सिखाऊँगा। स्वामी अरूपानन्द मेरे

साथ भोजन में लगेंगे।" दूसरे दिन सबेरे दोनों को वह प्रेस में ले गया। वह हैण्ड मशीन थी। उसके चलाने में काफी ताकत लगती। विभा निरन्तर काम करने लगी। प्रभा थक गई। अरूपानन्द भोजन में गये। अरूपानन्द के दो बार हाथ जले तो चिदम्बरं ने कहा—"यह भी तप है स्वामीजी।"

"हाँ।"

चिदम्बरं में फुर्ती का कोई अन्त न था। वह हर काम सफाई और तेजी से करता। फिर भी उसे कभी-कभी लगता कि उसकी शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। भीतर से खिन्न रहते हुए भी वह आश्रम की गाड़ी चला रहा था। इसी समय ब्रह्मानन्द के एक पत्र से मालूम हुआ कि वह वृन्दावन में एक आश्रम का महन्त बनने जा रहा है। उसे आश्रम के काम से कोई दिलचस्पी नहीं है। चिदम्बरं ने पत्र पढ़ा तो पास बैठे अरूपानन्द के हाथ में दे दिया। अरूपानन्द ने पढ़ा और चुप हो रहा। थोड़ी देर बाद बोला—

"मैं स्वयं इस काम को बहुत बड़ा नहीं मानता।"

"तो कौनसा काम बड़ा है ?" चिदम्बरं ने व्यंग्य से पूछा।

"अध्यात्म।"

"शरीर-स्वास्थ्य के साथ अध्यात्म चलता है। शरीर-स्वास्थ्य समाज की निश्चिन्तता, उसकी उन्नति उसके विकास पर निर्भर करता है। समाज की उन्नति देश पर उसकी स्वतन्त्रता पर निर्भर करती है। हमने मूल को पकड़ा है। देश की स्वतन्त्रता-प्राप्ति।"

"यह हेतु का सर्कल है विचारों की वास्तविकता नहीं। क्या रोटी की बात कहते ही हम किसानों की स्थिति और खेती, बीज की बात करें ? हमेशा वही चिन्ता करें। हमारे जीवन में उपयोगिता का महत्त्व होना चाहिए। हमारे लिये प्रथम आवश्यक अंग है आत्म-चिन्तन। रही स्वतन्त्रता की बात वह तो चलती रहती है। कभी स्वतन्त्रता, कभी परतन्त्रता। क्या स्वतन्त्रता के कारण लोग जब तक वह प्राप्त न हो जायँ, रोटी खाना छोड़ दें ? जब यह बात है तब हमें स्वतन्त्रता के अभाव में मनुष्य के चरित्र, उसकी अस्थिरता, उसकी कमी को भी देखना पड़ेगा। स्वतन्त्रता के लिए लड़ाई छेड़ने की अपेक्षा क्या यह ठीक नहीं

होगा कि हम जिससे स्वतन्त्रता नष्ट हुई उन अभावों की पूर्ति पहले करें।" अरूपानन्द ने चिदम्बरं की बात का उत्तर दिया।

'संन्यास धर्म तो जनोपकार के लिये ही है।"

"संन्यास धर्म पहले आत्मोपकार के लिये है। जब तक हम अपना उद्धार नहीं कर लेते दूसरे का क्या उद्धार करेंगे?"

"उसकी क्या सीमा है?"

"सीमा वह स्वयं है। जब उसे उससे सन्तोष हो।"

चिदम्बरं चुप हो गया। इसलिये नहीं कि उसके पास उत्तर नहीं था। वह बात नहीं बढ़ाना चाहता था। फिर भी उसे काफी निराशा हुई अरूपानन्द के इस विचार से।

थोड़ी देर बाद अरूपानन्द ने कहा—"मैं भी यह स्थान शीघ्र ही छोड़ देने का विचार कर रहा हूँ। इस बार स्वामीजी आवें तो कहूँगा।"

भीतर ही भीतर आश्रम में फूट के लक्षण दिखाई दे रहे थे। जो पैम्फ्लेट छापे गये चिदम्बरं ने उससे आगे का काम बन्द कर दिया। रसोई बनाने वाले दो साधु जो देहरादून गये थे वे अभी तक नहीं लौटे थे। उनका कोई समाचार भी नहीं मिला। इसी बीच स्वामी हरिशरणानन्द आये। वे कुछ बीमार-से थे। साथ में थे एक साधु विज्ञानानन्द। विज्ञानानन्द अगले हरिद्वार के कुम्भ पर अखिल-भारतीय साधु सम्मेलन का संदेश लेकर जगह-जगह घूम रहे थे। इसी सम्बन्ध में वे चिदम्बरं से मिलने आये थे। उन्हें मालूम था चिदम्बरं बड़ा उत्साही और क्रियाशील आदमी है। स्वयं स्वामी हरिशरणानन्द ने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी।

शाम को स्वामीजी जब आसन पर लेटे थे उससे पूर्व दो बार चिदम्बरं ब्रह्मानन्द के आश्रम छोड़कर वृन्दावन में महन्त बनने और आत्मानन्द का कोई समाचार न मिलने की बात कह चुका था। इस बार फिर उसने वही बात दुहराई।

हरिशरणानन्द ने दबी हुई निराश वाणी में उत्तर दिया, "आज के साधु में यही तो दोष है। वह किसी प्रकार के दायित्व को कब तक सँभाले रहेगा कुछ नहीं कहा जा सकता। मैं तो अब निराश हो गया हूँ।"

"किससे ?"

"अपनी शक्ति से। पिछले दिनों से शरीर स्वस्थ नहीं रहता। जब मरना ही है······वे चुप हो गये। थोड़ी देर बाद बोले—"तुम्हारे पास जो साधन है उनसे काम करो।"

"प्रेस भी मैंने बन्द कर दिया है। दस हजार से ऊपर पैम्फलेट पड़े हैं। कोई उपयोग नहीं है।"

"स्वामीजी, देश की स्वतन्त्रता तो गृहस्थों को चाहिये, वे लड़ें, हमारा ध्येय तो यह नहीं है।" अरूपानन्द ने प्रवेश करते हुए कहा।

हरिशरणानन्द चौंके। वे अरूपानन्द से इस तरह की हल्की बात की आशा नहीं करते थे। वे एक बार झल्लाये फिर चुप हो गये। चिदम्बरं से न रहा गया, बोला—"स्वामीजी, क्या हम देश से अलग हैं।"

अरूपानन्द ने उदासी से कहा—"मैं तो आत्म-चिन्तन के लिये संन्यासी हुआ हूँ चिदम्बरंजी। कभी-कभी विलायत में मुझे ऐसा विचार आता था। मैंने भारत के विद्रोहियों के साथ मिलकर कुछ काम भी किया किन्तु अध्ययन में बाधा पड़ने के कारण छोड़ दिया।"

"अब उस अध्ययन का क्या उपयोग है ?" चिदम्बरं ने मिसमिसाकर व्यंग्य से पूछा।

"ज्ञान का उपयोग क्रिया है स्वामी अरूपानन्द।" स्वामी हरिशरणानन्द बोले।

"कोई भी ज्ञान बिना क्रिया के अपूर्ण है। क्रिया में ही ज्ञान की सम्पूर्णता है।" हरिशरणानन्द ने बात को आगे बढ़ाते हुए कह डाला।

"आत्म-ज्ञान में तो ज्ञान का ही महत्त्व है। जहाँ जाकर सब क्रियायें समाप्त हो जाती हैं वहाँ केवल ज्ञान ही रहता है अपने शुद्ध रूप में। वह शुद्ध ज्ञान ही हमारा ध्येय होना चाहिए स्वामीजी।" अरूपानन्द ने दोनों हाथों की उँगलियाँ चटकाते हुए कहा।

चिदम्बरं कहना चाहता था तो हरिशरणानन्द बोले—

"आप ठीक कहते हैं वह ज्ञान जीवन्मुक्त के लिये है। वहाँ क्रिया नहीं रहती। वैसी अवस्था क्या आपकी है ? दो दिन भोजन न मिले तो क्या आप रह सकते हैं ? मैं तू के भेद के बाद की वह अवस्था है।"

अरूपानन्द चुप रह गये। चिदम्बरं से न रहा गया बोला, "वैसे अरूपानन्द जी का मन भी नहीं लगता। चाहते हैं कहीं चले जायँ।"

स्वामी हरिशरणानन्द ने कहा—"अरूपानन्द साधनावस्था में है क्या ही अच्छा हो कि उन्हें वह दशा प्राप्त हो जाय। वैसे संन्यास का ध्येय यही है कि व्यक्ति परमहंस बन जाय। तेरा क्या हाल है विभा ?"

"मार्ग कोई नहीं है पुस्तकें पढ़ती हूँ। पड़ी हूँ।"

"मार्ग भीतर खोज। जिधर चलना हो चल, बेटी।"

"अभी तो अँधेरा ही है महाराज !"

"प्रकाश वहीं से मिलेगा।" चिदम्बरं से कहा—"न हो विभा को पैम्फलेट बाँटने और अपने मत का प्रचार करने का काम सौंपो ?"

"मैं स्वयं जाना चाहता हूँ।" चिदम्बरं बोला।

"आत्मानन्द कहाँ है ?"

"कोई समाचार नहीं है।"

"वह अवश्य कुछ कर रहा होगा। मुझे उस पर विश्वास है।"

विभा को नहीं मालूम था कि आत्मानन्द कमल ही है। किसी ने बताया भी नहीं।

"मुझे कुछ काम चाहिये स्वामीजी।"

"तो ठीक है लेकिन क्या साधुओं में तू काम कर सकेगी ?"

"गृहस्थ लोगों का काम हो तो……"

"मन विचलित तो नहीं होता ?" स्वामी हरिशरणानन्द ने पूछा।

"बड़ी उदासी है।" विभा ने उत्तर दिया।

स्वामीजी चुप हो गये। उन्हें चिदम्बरं को छोड़कर सबसे निराशा हुई। दो साधु और दौड़ गये थे। दूसरे दिन सबेरे अरूपानन्द मामूली सामान लिये आये और बोले—

"मैं जा रहा हूँ स्वामीजी !"

हरिशरणानन्द कुटिया के सामने चटाई पर धूप में बैठे थे। उठकर खड़े हो गये।

"क्या अभी, भोजन करके जाइये ?" प्रभा भी साथ में थी।

"घर जा रहा हूँ। प्रभा को मैंने समझा लिया है। साधुओं का स्थान इसके अनुपयुक्त है।"

प्रभा भी चुपचाप खड़ी थी।

"क्या मान गई, अच्छा है। किशोर-वय है।"

"आगे पढ़ेगी। फिर मैं स्वतन्त्र हूँ।"

"ठीक है।"

दोनों सामान लिये चले गये। स्वामीजी थोड़ी दूर तक पहुँचा आये। अन्य साधुओं के जाने के बाद चिदम्बरं ने दो-एक गाँव के आदमी काम के लिये रख लिये थे। अब आश्रम में स्वामी हरिशरणानन्द, चिदम्बरं और विभा थे। जितने उत्साह से काम शुरू हुआ था उतने ही निरुत्साह से आश्रम खाली हो रहा था। विज्ञानानन्द देहरादून चले गये थे। जाने से पहले विज्ञानानन्द ने चिदम्बरं से कहा—'मैं जल्दी ही लौटूँगा। तुम तैयार रहना। हमें काफी रुपया मिल गया है। यदि हमारा कार्य सफल हो गया तो एक बार अमरीका जाकर संन्यास धर्म का प्रचार करेंगे। तुम अंग्रेजी में भाषण कर ही लेते हो। दोनों चलेंगे। बड़ी प्रतिष्ठा मान होगा। अमेरिका के लोग हमारे धर्म के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानना चाहते हैं।"

चिदम्बरं ने कोई आश्वासन नहीं दिया।

विज्ञानानन्द चलता-पुर्जा साधु था महत्त्वाकांक्षी। वह राजा-महाराजाओं में भी इस काम के लिये घूमा था। नीचे से ऊपर तक गेरुए रेशमी वस्त्र। कुछ संस्कृत, अंग्रेजी बोल लेता था। शरीर से सुन्दर, दिव्य आभा। सिर, मूँछ, दाढ़ी घुटी। चमचमाते बूट जूते। बहुत बढ़िया चमड़े का पोर्टमेण्टो। ठाठदार आदमी। बातूनी और हँसमुख। उसने विभा को देखा तो चमक उठा। कई बार प्रयत्न करके भी वह उससे बात नहीं कर सका। स्वामी हरिशरणानन्द और सब के

सामने उसने अपनी यात्रा के मधुर वर्णन सुनाये। रानी-महारानियाँ उसकी चेली हैं यह कहना भी वह नहीं भूला। उसे फर्राटे से अंग्रेजी बोलने वाला एक सेक्रेटरी चाहिये था। चिदम्बरं में यह गुण थे। इसीलिये वह आया था। दूसरे दिन प्रातःकाल वह एक नौकर के साथ देहरादून से लौटा। स्वामीजी की तबियत उस दिन और भी खराब हो गई। वे कुटिया के बाहर लेटे थे। देखते ही बोले, "कहिये स्वामीजी, क्या हुआ ?"

"ठीक है। देहरादून के महन्त चाहते हैं उन्हें कोई अधिकार मिले।"

"कैसा अधिकार ?"

अर्थात् उन्हें सभापति बनाया जाय। लेकिन मैंने द्वारका के शंकराचार्य को सभापति बनाने का निश्चय किया है। उन्हें मैं एक और विभाग का सभापति बनाऊँगा। एक हजार दिया है। मैं आज ही हरिद्वार जाकर स्थान का प्रबन्ध करूँगा। आप तो आयेंगे ही।"

"देखा जायगा।"

"नहीं आइये। कहिये चिदम्बरंजी, आज चल रहे हैं न ?"

"कहाँ ?"

"अरे भूल गये, हरिद्वार। बहुत काम है। मैं एक बार इसी बीच बम्बई जाना चाहता हूँ। आप मेरे साथ चलेंगे। समझे। अब देर करने की जरूरत नहीं है। बहुत काम है। वहाँ से आप द्वारका जायँगे। जगद्गुरु को पक्का करने, ताकि वे ठीक समय पर पधारें।"

चिदम्बरं स्वामी हरिशरणानन्द की तरफ देखकर बोला, "स्वामीजी की तबियत ठीक नहीं है। वैसे भी आश्रम में इस समय कोई नहीं है। मैं कैसे जा सकता हूँ ?"

"यह तो गड़बड़ है। मैं तो बड़ी आशा से लौटा था। यह देवीजी तो हैं न ? न हो बीच में एक बार आ जाइयेगा।"

चिदम्बरं आश्रम से ऊब गया था। स्वामीजी बीमार होकर न आ जाते तो वह चल देता। हालाँकि उसका मन विज्ञानानन्द के साथ जाने को नहीं था। वह विज्ञानानन्द का ठाठ देखकर विरक्त हो उठा था। वह जानता था विज्ञाना-

नन्द अवसरवादी साधु हैं। उसके साथ मतैक्य नहीं हो सकता। वह इन दिनों बंगाल जाना चाहता था या वैसे ही घूमकर देखता कि वह क्या कर सकता है।

इसी समय विज्ञानानन्द का नौकर बहुत से फल काटकर ले आया। स्वामीजी को छोड़कर सबने फल खाये। विभा भी अलग बैठी रही। यह देखकर उसने आग्रह करते हुए विभा को भी फल दिये।

"लीजिये न। संन्यास धर्म फल का निषेध नहीं करता।"

"स्वामीजी, आप भी लीजिये।"

"मैं आजकल कुछ भी नहीं ले रहा।" स्वामीजी जब से आये थे आश्रम की चिन्ता में थे। उन्हें विभा की भी चिन्ता थी। वे ही उसे लाये थे बड़े उत्साह से। अन्त में चिदम्बरं ने पूछा, "स्वामीजी, मेरे लिये क्या आज्ञा है?"

"जैसा तुम उचित समझो। सोचता हूँ आत्मानन्द आ जाता तो......।"

"उनका कोई समाचार नहीं है। आप भी तो बीमार हैं। कहिए, रह जाऊँ।"

"हाँ, मुझे लगता है वह आने वाला है। कुछ दिन और ठहर जाओ। विभा को उसे सौंप देना चाहता हूँ।"

"विभा को?" चिदम्बरं ने पूछा।

"हाँ।"

आगे वह कुछ भी नहीं पूछ पाया। वह विभा को एकटक देखता रहा। वह दूसरी तरफ मुँह किये बैठी थी। इससे उसके मुँह की आभा कोण बनाये तीखी हो गई थी। उजले प्रकाश के केन्वेस पर नाक-माथा-ठोडी के उभार बड़े सुन्दर लग रहे थे। उसने देखना शुरू किया तो देखता रह गया। स्वामीजी लेटे हुए तिनका तोड़ रहे थे। अस्वस्थता के कारण उनका जी भारी हो रहा था। चिदम्बरं जानता था प्रभा क्यों चली गई। अरूपानन्द क्यों आश्रम छोड़ गया। प्रभा के आते ही चिदम्बरं का मन विचलित हो गया। कई बार प्रयत्न करके भी वह उसके पास नहीं पहुँच सका। हर बार वह उसे विरक्त मिली। प्रभा ने बात ही नहीं की। चिदम्बरं ने पहले अपने अंग्रेजी ज्ञान से फिर चातुर्य से उसे प्रभावित करना चाहा। अन्त में एक दिन रात के समय प्रभा से

कुछ कहा। क्या कहा, यह उसे याद नहीं आ रहा। वह जैसे अपने को खो बैठा। इस पर प्रभा हल्की चीख निकालकर भाई के पास भाग गई। चिदम्बरं ने इस पर क्रुद्ध होकर उसे रसोई का काम सौंपा। उसके साथ रूखा बना। तीसरे-चौथे दिन अरूपानन्द चला गया। साधारणतया चिदम्बरं की प्रकृति भिन्न है। उसे प्रभा से इस प्रकार का व्यवहार करके अपने पर काफी ग्लानि हुई। किन्तु इस बार आत्मानन्द को विभा के सौंपने की बात सुनकर उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया। वह यह भी नहीं जानता था विभा का आत्मानन्द से क्या सम्बन्ध है ? उसे एक प्रकार की ईर्ष्या हुई। विभा उसे अच्छी लग रही थी जैसे कोई नया अंकुर फूट रहा हो। चिदम्बरं की दृष्टि एकदम बदल गई, या जैसे किसी ने मजबूर करके उसे वैसा देखने को बाध्य कर दिया। इस सम्बन्ध में उसने कभी गहराई से नहीं सोचा था। जानता था नारी जैसी वस्तु यदि सुलभ नहीं है तो असुलभ भी नहीं है। वकालत के समय कई कन्याओं ने विवाह के लिए उससे प्रणय-निवेदन किया किन्तु वह स्वयं दूर-दूर रहा। उसके मन में कभी वैसी भावना ही नहीं उठी। वह विज्ञान का विद्यार्थी रहा है कुछ-कुछ अपने में खोया-सा। उसके बाद इतिहास में उसकी रुचि बढ़ी। वह इसी तरह सोचते-सोचते बोला।

"आश्रम तो समाप्त है स्वामीजी।"

स्वामीजी ने करवट बदलकर उसकी ओर देखा, फिर कुछ जवाब न देकर दुखी स्वर में बोले।

"हाँ।" फिर बोले।

"यह पारे को जोड़ना हुआ चिदम्बरं। मैं चाहता था मरने से पहले कुछ तो करूँ। लेकिन······खैर, जो ईश्वर को मंजूर है।"

"आत्मानन्द न आया तो··?"

"आयगा। अवश्य आयगा। वैसे तुम जाना चाहो तो तुम भी···जा सकते हो।"

"मेरा मतलब······।" वह आगे कुछ न कह सका।

विभा ने पूछा, "आत्मानन्द कौन है ?"

"कमल !"

विभा ने सुना तो चौकन्नी हो गई । जैसे किसी ने उसके अन्तर में भड़क कर दबी आग का पर्त्त उघाड़ दिया। वह बहुत देर तक चुप रही। फिर बोली, "क्या करने गया है कमल ?"

"देश में, खासकर साधुओं में जागृति उत्पन्न करने ।"

यह उसे (विभा को) मालूम था। इन पिछले दिनों में आश्रम में रहते उसके मन में कई प्रकार के विचारों का तूफान उठा करता । प्रायः उसे लगता वह यहाँ क्यों आ गई, क्या है यहाँ ? चलते-चलते प्रभा ने कहा था, यह स्थान अच्छा नहीं है। क्यों अच्छा नहीं है। इसको उसने दूसरे रूप में देखने का प्रयत्न किया था कि यहाँ कुछ भी नहीं है। कोई काम नहीं है। यही विचार अब पिछले दिनों से उसके मन में उठ रहे थे। वह सोचती थी स्वामीजी आ जायँ तो उनसे कहूँगी । आत्मानन्द का नाम सुनने से पूर्व विज्ञानानन्द के सम्बन्ध में वह अधिकाधिक जानना चाहती थी । वैराग्य उसके हृदय से धीरे-धीरे धुल रहा था । इसी समय विज्ञानानन्द आ गया । आत्मानन्द का नाम सुनकर उसकी पिछली स्मृतियाँ जैसे जाग उठीं । लेकिन उसने पाया आत्मानन्द के प्रति उसके हृदय में उत्सुकता के अलावा और कुछ नहीं है । वह चुप हो गई । इसी समय विज्ञानानन्द आकर चिदम्बरं को उठा ले गया । वे दूर खड़े होकर बातें कर रहे थे । स्वामीजी बोले,

"बेटी, मुझे लगता है मैं ज्यादा दिन नहीं रहूँगा ।"

"क्यों स्वामीजी, ऐसी क्या बात है ?"

"नहीं, इससे पूर्व तू कोई निर्णय कर ले तो ठीक है ।"

"आप मेरी चिन्ता न करें ।"

विभा की ओर गौर से देखते हुए वे बोले, "मैंने तुझे अपनी बेटी माना है। बाप को बेटी की चिन्ता होना स्वाभाविक है। है न ?" फिर उठकर बैठ गये। बोले—"तेरा जीवन काफी लम्बा है। साधु जीवन में तेरा निर्वाह नहीं हो सकेगा । आज मुझे लगता है इस जीवन से अधिक निकम्मा और कोई जीवन नहीं है । यहाँ व्याघ्र के वेश में गीदड़ों की संख्या अधिक है । तेरी जैसी नारी

यहाँ नहीं रह सकती। मैं कमल से कहूँगा कि वह भी गृहस्थ हो जाय।" वे चुप होगये। विभा स्वामीजी की ओर देखती रही। उनकी आँखों में नमी आ गई थी। जैसे पश्चात्ताप की जलन हो रही हो। तिनका तोड़ते हुए विवश होकर बोले—

"तेरी जैसी मेरी भी एक लड़की थी। उसका नाम विभा था। मैंने तेरा नाम उसकी याद को ताजा करने के लिये ही यह रख दिया था। वैसे संन्यास में नाम बदलना ज़रूरी है इसलिए······।"

"तो क्या मैं संन्यासी हूँ स्वामीजी ?" वह हँसी।

वे पास सरक आये।

"इसमें कुछ भी नहीं है।"

"तू स्वतन्त्र है।"

"हाँ।"

बहुत देर चुप रहने के बाद बोले,

"मैं जानता हूँ। मैंने समझा था काम के उत्साह में लोग मानसिक कमजोरी को दबा सकेंगे, पर वैसा नहीं हुआ। सब भाग गये।" स्वामीजी फिर लेट गये।

"साधु-जीवन वीतराग के लिए है। वह न सम्प्रदाय है न धर्म। हम लोगों ने उसे एक सम्प्रदाय बना डाला है। जिसको आध्यात्मिक शान्ति पानी हो वह इसमें आवे। फिर भी यह जीवन का चौथा आश्रम है। इसके पहले आने पर गिर भी सकता है। यही कारण है देश के लिए यह भार हो उठा है। ओः मुझे बड़ा भ्रम हुआ।" वे लेटे-लेटे किसी चिन्ता में डूब गये। विभा ने पूछा।

"कमल बड़ा कमजोर है।"

"हाँ, अस्थिर तो है। न जाने कहाँ होगा।"

इसी समय चिदम्बरं लौट आया। विज्ञानानन्द कुटिया में चला गया।

वह आते ही बोला।

"विज्ञानानन्दजी का आग्रह है मैं चलूँ। वे थोड़ी ही देर में जा रहे हैं।"

"जैसा उचित समझो। मैं बहुत दिनों का नहीं हूँ। ऋषिकेश······अच्छा।

तुम जाओ ।"

"तो ठहर जाऊँ, आपको ऋषिकेश पहुँचाकर ·····। नहीं, मैं आपको इस दशा में नहीं छोड़ूँगा ।"

उसी शाम विज्ञानानन्द जाने वाला था वह भी रुक गया ।

"स्वामीजी की तबियत रात को और भी खराब हो गयी । वह खाँसते-खाँसते दम तोड़ने लगते । चिदम्बरं और विभा उनके पास बैठे रहे । दवा वह कोई नहीं ले रहे थे । केवल गरम पानी । बस, यही उनका आहार था । बीच-बीच में वे कह उठते ऋषिकेश से यहाँ व्यर्थ आये । जब बेचैन हो जाते तो विभा के कंधे पर हाथ रखकर साँस लेते कहते—"बेटी, जा सोजा ।"

जब वह नहीं गई तो उन्होंने चिदम्बरं को जाने को कहा । वह भी नहीं गया । दोनों मिलकर स्वामीजी की सेवा करते रहे । थोड़ी देर बाद उन्हें नींद आ गई तो चिदम्बरं बोला,

"अब ठीक है, रात कट जायगी । जाओ, तुम सो रहो ।"

"नहीं, आप जाइये, मैं बैठी हूँ ।"

उस समय कुटिया में मन्द-मन्द लालटेन जल रही थी । बहुत देर तक मनुहार के बाद चिदम्बरं चला गया । वह बैठी सोचती रही । स्वामीजी अब थोड़े ही दिनों के हैं । फिर कोई भी नहीं है । भविष्य का धुँधला चित्र, जिसमें कुछ भी स्पष्ट नहीं था, कोई रूपरेखा नहीं थी, कोई विश्वास का आभास नहीं था, यही रूप उसके सामने घूमने लगा । वह जान रही थी कि स्वामीजी के पास आकर मार्ग स्पष्ट हो जायगा । वह अदेखी दिशा में चलकर भी किसी न किसी लक्ष्य पर जा पहुँचेगी जो शायद पिछले रास्तों से साफ और अच्छा होगा । अब कोई ऐसा नहीं है जिस पर विश्वास कर सके । अपना कहा जाने वाला व्यक्ति उसे दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रहा था । कमल के प्रति अब उसके मन में कोई लगाव नहीं था । वह उसे कमजोर लगा । अस्थिर भी । यही स्वामीजी ने कहा जो उसने दुहराया । घर के रास्ते बन्द हो गये थे । बाहर अँधेरा । फिर लगा जैसे उसके पास एक अस्त्र है, नारी होने का अस्त्र, सौन्दर्य का अस्त्र, थोड़े दिनों के लिए वह काफी है । फिर······फिर क्या ? यही वह बैठी-बैठी सोचती रही ।

उसने ध्यान से देखा तो पाया स्वामीजी जाग रहे हैं। उसे बैठे देखकर बोले, "सोई नहीं विभा ?"

"नींद नहीं आ रही है।"

"क्या सोच रही है ?"

"सोचती हूँ पर कुछ सोच नहीं पाती। सब ओर अँधेरा ही अँधेरा है। एक आपका सहारा था वह भी अब······।"

वह पड़े-पड़े उसे देखते रहे। साँस उस समय भी तेज चल रही थी। रुक कर बोले—

"क्यों, कमल ?"

"मैं कमल को नहीं चाहती।" विभा चुप हो गई।

"तो अपने पैरों पर खड़ी हो।"

"कैसे ?"

"कोई भी काम कर। मेरी लड़की होकर ऐसा कहती है। विभा ने तो मेरे विश्वास उलट दिये।" विभा स्वामीजी की तरफ देखने लगी।

स्वामीजी ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया—

"मेरी पत्नी के मरने के बाद वह मेरे पास अकेली जंगली रेलवे के क्वार्टर में रहती थी।"

"तो आप पहले रेलवे में थे ?"

"हाँ, छोटे से स्टेशन का स्टेशन मास्टर। वहीं जंगल के स्टेशन में रहता था। मैं ही टिकट बाँटता, मैं ही और सब काम देखता था। बस, तीन खलासी और मैं। चारों ओर जंगल। बहुत कम यात्री, बहुत कम माल वहाँ से बुक होता था। विभा ऐसी कोई सत्रह-अठारह साल की थी। देखने में खूबसूरत। तन्दुरुस्त। छः-सात सेर दूध देने वाली भैंस का अकेली दूध पी जाती। मन-सवा मन की कुट्टी एक बैठक में काट लेती। दो मटके घड़े सिर पर रखकर कुएँ से ले आती। एक बार हमारी भैंस चरती दो कोस नदी के किनारे जा पहुँची। दैवयोग से वहीं उसके कटरा हो गया। तो कटरे को कंधे पर रखे विभा भैंस को लौटा लाई। हाँ, तो दिन-रात में चार गाड़ियाँ आतीं, दो माल-

गाड़ी और दो पैसेंजर। क्वार्टर और स्टेशन में कोई बहुत दूरी न थी। मैं प्रायः स्टेशन पर ही रहता। विभा भी रात को मेरे पास रहती। घर पर उसे अकेला कैसे छोड़ता। एक बार की बात है, रात की गाड़ी से दो मुसाफिर उतरे। मुसाफिरखाने में, जो बहुत ही छोटा था, वहाँ बैठ गये। पूछा, कहाँ जाओगे तो उन्होंने दूर किसी गाँव का नाम बताया। बहुत देर बैठने के बाद मुझे लगा शायद ये भूखे हैं। मैंने पूछा तो एक बोला, 'भूखे तो हैं कुछ मिल जाय तो खा लें।' मैंने विभा से कहा, 'इनके लिये कुछ बना दे।' वह तैयार हो गई। कोई आध घंटे बाद मैं उन तीनों को लेकर क्वार्टर में गया। विभा रोटी बना चुकी थी। मैंने उनको खिलाया। इसी समय खलासी ने खबर दी। एक स्पेशल आने वाली है। तार है। चलिये। मैं उन्हें खाता छोड़कर चला आया और काम में लग गया। तारों का आना-जाना इतना अधिक था कि मुझे घर का खयाल ही नहीं रहा। इधर स्पेशल ट्रेन आई और चली गई। तब मुझे विभा का ध्यान आया। काफी देर हो गई थी। मैंने खलासी सीताराम को बुलाकर पूछा तो सोते-सोते बोला, मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम। वे आदमी भी वहाँ नहीं थे। मैं घबराया हुआ गया तो देखता क्या हूँ विभा वहाँ नहीं है। उन आदमियों का पता नहीं लगा। सामने सीताराम की बहू पड़ी थी। हाथ लगाने पर मालूम हुआ कि वह तो मरी पड़ी है। मैं चिल्लाया तो दोनों खलासी दौड़े आये। उसी समय मैंने बड़े स्टेशन को तार किया लेकिन सबेरे तक कोई नहीं आया। मैं स्टेशन छोड़ नहीं सकता था। पास ही गाँव के कुछ लोगों ने सबेरे आकर खबर दी कि विभा जीवित है। उन मुसाफिरों में एक को जान से मार दिया गया है। एक बहुत घायल पड़ा है। वह भी गाँव में घायल है। इलाज हो रहा है। बात यह हुई कि गाँव के कुछ लोग रात को खेती की रखवाली कर रहे थे। चिल्लाहट सुनी तो इकट्ठे हो गये। चारों ओर से घेर लिया। उस समय विभा उन्हीं में से एक बूढ़े की कुल्हाड़ी लेकर टूट पड़ी। लोगों ने उन्हें (डाकुओं को) पकड़ लिया था।

"एक-दो गाँव की औरतों की सहायता से वह गाड़ी में लाई गई। उसका एक हाथ कट गया था। मुँह पर बहुत चोट थी। वह बेहोश पड़ी थी। लगभग

बारह बजे की गाड़ी में दो पुलिस के सिपाही और थानेदार आये। आते ही उन्होंने खाना, दूध, मांस, मुर्गी की बात की। मैं तो पहले ही दुखी था। मैंने कुछ न किया तो वे उल्टी-सीधी रिपोर्ट लिखकर ले गये। शाम तक विभा मर गई। अब मैं अकेला था। बिलकुल अकेला, किन्तु मुझे एक खुशी थी कि उसने डाकुओं के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया, बहादुरी से लड़ी। पीछे मालूम हुआ वे उसका मुँह बाँधकर ले गये थे, नहीं तो शायद उनसे वहीं लड़ती। न जाने क्या हुआ ?"

यह कहकर स्वामीजी को फिर दमा का दौरा उठा। विभा (यशोदा) उनकी पीठ पर हाथ फेरती रही। जब कुछ शान्त हुआ तो वे बहुत देर चुप रहने के बाद बोले—

"अब तुझे सारी कहानी सुना ही दूँ।"

विभा ने कहा—"रहने दीजिये। दौरा पड़ रहा है।"

वे बैठे रहे। उनका मुँह सूज रहा था। आँखें निकल आई थीं। विभा को लगा जैसे इस जंगल में उसके साथ यही घटने वाला है।

स्वामीजी जैसे कहने को बेचैन हो रहे थे। बोले,

"मैं प्रयत्न भर जीवन में सदा से ईमानदार रहा हूँ। रेलवे की नौकरी में मुझे जो वह स्टेशन दिया गया उसका एक कारण यह था कि मैंने कभी रिश्वत नहीं ली फिर देने का तो सवाल ही कहाँ था। इसीलिये एक अंग्रेज अफसर बार-बार मुझे तंग करता। विभा की मृत्यु के बाद वह इन्स्पेक्शन के लिये आया। वहाँ उसने सब हिसाब-किताब चैक किया। पूरी तरह ध्यान देने पर भी शायद दो आने की गलती निकली। उसने पचास रुपये माँगे। मैंने इनकार किया। उसने गाली दी और कई ठोकरें मेरे पैर में मारीं जिससे पैर में खून निकल आया। मैं क्रोध और अपमान न पी सका। मैं गुस्से से पागल हो उठा। मैंने साहब को पकड़कर पछाड़ दिया। लात, घूँसों और मुक्कों से उसे अधमरा कर दिया। फिर भी मैं उसे मारता जा रहा था। जैसे मुझे खून चढ़ आया हो। विभा की मृत्यु का सारा दुख क्रोध में बदल गया था। मुझे मालूम हुआ वह मर गया है। खलासी बचा रहे थे मैंने उन्हें रोका। वे डर से दूर हट गये।

मरने पर मुझे मालूम हुआ मैंने कितना भयंकर काम कर दिया है। मैं चुपचाप दूसरी तरफ से निकलकर जंगल में भाग गया।"

स्वामीजी फिर चुप हो गये। विभा उनकी ओर उत्सुकता से देख रही थी। अब वे फिर हांप रहे थे।

"तभी से आप साधु हैं?"

"हाँ। तभी से मैं अंग्रेजों का दुश्मन हूँ। इसके बाद मैंने दो अंग्रेज और मारे।"

विभा चुप हो गई उसे लगा जैसे उनकी आँखें खूंखार हो गयी हैं। उसने नीची निगाह कर ली।

"तू मुझसे घृणा करती है?"

उसने अपने को स्वस्थ बनाया फिर बोली, "नहीं, बिलकुल नहीं। आपका जीवन विद्रोही का रहा है। जो कुछ आप कर सकते थे आपने किया।"

"मैंने मनुष्य को मनुष्य न समझने वाले शासक को दण्ड दिया इसका परिणाम भी भला ही हुआ।"

"क्या?"

"मेरा एक ही उद्देश्य था। अंग्रेज समझ जायें और हमें पशु समझने का विचार बदल दें। न जाने क्यों विदेशी शासन के प्रति जन्म से मुझ में विद्रोह भड़कता रहा है।"

"यह भी कम बात नहीं है।" आगे उसने पूछा, "फिर?"

"तभी से इन साधुओं में अंग्रेजों के विरुद्ध प्रचार करता रहा हूँ। दो संगठन भी बनाये किन्तु कुछ हुआ नहीं। चिदम्बर दूसरे संगठन के समय मुझे मिला। इसका जीवन भी बड़ा विचित्र रहा है। यह सदा आग से खेला है। मैं इसे प्यार करता हूँ।"

"अंग्रेजों में रहकर भी इसने अंग्रेजों को ही मारा है।"

विभा ने सुना तो उसकी आँखें फैल गईं। देखने में चिदम्बर कोई खास

नहीं लगता था, उसने जानना चाहा चिदम्बरं ने क्या किया है किन्तु स्वामीजी को बैठे-बैठे जरा नींद आ गई थी। वे रात बैठकर ही गुजारते। उस रात उन्हें काफी बेचैनी रही। विभा सेवा करती रही। आधी रात के बाद चिदम्बरं आ गया। विभा उठकर सोने चली गई किन्तु बिस्तरे पर भी उसे नींद नहीं आ रही थी। वह स्वामीजी, विभा और चिदम्बरं के सम्बन्ध में सोचती रही।

स्वामीजी दवा नहीं ले रहे थे। चिदम्बरं आग्रह कर रहा था। वह बार-बार कहता, देहरादून से दवा लाता हूँ आराम होगा। पर वे मानते ही नहीं थे। कहते, "अब मुझे जीना नहीं है।"

कमल उस दिन भी नहीं आया। स्वामीजी को पूरा विश्वास था वह आवेगा। विज्ञानानन्द दोपहर को नौकर के साथ चले गये। जाने से पहले ही उसे विभा से बात करने का मौका मिला। उसने खाना खाते समय आँख मटका और मुस्कराकर यशोदा को देखा। पत्तल की तरफ मुँह झुकाये हुए सामने परोसने के लिए खड़ी यशोदा को देखने के लिए उसकी आँखें कपार को जैसे फोड़ गईं।

"बस, आप बैठ जाइये।" स्वामी विज्ञानानन्द भोजन करते बोला।

"आप भोजन करें।"

कौर हाथ में लिये उसने पूछा, "संन्यास आपने कब से लिया ?"

"मैं संन्यासी नहीं हूँ।"

"संन्यासियों के आश्रम में तो हैं।"

"हाँ।"

"फिर संन्यासी ही हुईं। कब से हैं आप यहाँ ?"

"शायद दो महीने हुए या कुछ अधिक।"

"इतना सौन्दर्य लेकर क्या इसी आश्रम में आना था। निश्चय ही आप कोई बड़े घर की सम्भ्रान्त महिला हैं।"

विभा कुछ भी न बोली। वह चुपचाप खाता रहा। फिर एक तीर छोड़ने की तरह बोला, "मैं अमेरिका जा रहा हूँ। क्या आप चलेंगी ?"

"मैं क्यों, मैं क्यों जाऊँगी ?"

"चाहने पर आप चल सकती हैं। मैं वहाँ धर्म-प्रचार करने जा रहा हूँ।"

"धर्म-प्रचार, और आप, तो जाइये।"

"क्यों, मैं क्या नहीं कर सकता······।"

विभा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह पूछने लगी।

"और कुछ लीजियेगा ?"

"हाँ।"

"क्या लाऊँ ?"

"कृपा-कटाक्ष।"

"कटाक्ष मैं पीछे छोड़ आई हूँ। कृपा मुझे मिली नहीं।" न बोलने की इच्छा होने पर जैसे भीतर से उसके मुँह से निकल गया।

"देखता हूँ आपकी स्थिति काफी दयनीय है। स्वामीजी ज्यादा दिन के नहीं हैं। चिदम्बरं आपको नहीं चाहते। वे दूसरी प्रकृति के हैं। यदि मैं इस योग्य समझा जाऊँ तो······।" वह विभा की ओर आँख भरकर देखने लगा। विभा चुप खड़ी रही। वह प्रश्न-सा करके देखने लगा।

"क्या मैं अपने पैरों पर नहीं खड़ी हो सकती ?"

"अब भी आप स्वामी हरिशरणानन्द के पैरों पर खड़ी हैं।"

"क्या आप ऐसा मानते हैं ?"

"न मानने का कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता, विभा देवी।"

"आप मेरा क्या करेंगे ?"

विज्ञानानन्द इस उत्तर से चकराया। कुछ देर तक सोचकर बोला। "सेवा।"

"बहन की या माँ की ?" विभा कह तो गई किन्तु वह अपने में काफी उत्तप्त थी। जैसे क्रोध में भरकर गाली देना चाहती हो। दोनों ओर खामोशी रही। विज्ञानानन्द खाना खा चुका था। हाथ धोकर थोड़ी देर खड़ा रहा, फिर बोला—

"साधुओं के यहाँ माँ-बहन नहीं होतीं।"

"क्या होती हैं फिर स्त्रियाँ ?"

"नहीं चेली।" यह वाक्य उसने पास आकर मुस्कराते हुए कहा। फिर बोला—

"आपको कोई कष्ट नहीं होगा।"

"आप जाइये।"

"मैं अभी हरिद्वार में रहूँगा। वहीं जा रहा हूँ। वहाँ मेरा मकान है। एक बार पधारें तो मुझे प्रसन्नता होगी। कनखल-हरिद्वार के बीच में। आज्ञा होने पर मैं ले भी जा सकूँगा।"

"मालूम होता है इस चेलीपन के पर्दे से कोई और बोल रहा है।" विभा ने ताने के साथ कहा।

"जो बोल रहा है उसी का निवेदन है।"

"वह शायद साधु नहीं है।" विभा ने एक और तीर छोड़ा। विज्ञानानन्द तिलमिला उठा। वह भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेला था। बोला,

"साधु की व्यापकता बहुत महान् है उसमें गोपियों के कृष्ण और गीता के कृष्ण दोनों आ जाते हैं। फिर उनकी भी सीमा है। साधु असीम है। वह एक तरफ कबीर है जो सेवा के लिये अपनी पत्नी को कंधे पर चढ़ाकर ले जाता है, दूसरी तरफ पंडितराज जगन्नाथ भी। फिर आत्मा साधु है शरीर साधु नहीं है क्योंकि शरीर साधु का काम नहीं करता।"

विभा इतनी बातें नहीं जानती थी। वह न कुछ समझ सकी और न उसने कोई जवाब दिया। केवल इतना बोली—

"शायद आप जैसों के ऊपर ही यह धरती खड़ी है।"

विज्ञानानन्द चूकने वाला नहीं था, तुरन्त बोला—

"धरती किस के ऊपर खड़ी है यह हम नहीं जानते किन्तु मैं गगन को छूता आपके सामने खड़ा हूँ। विभव जिसके पैर चाटता है।"

विज्ञानानन्द को एक बार क्रोध आ गया। वह अपने ही जाल में फँसा था इसलिये जरा ठिठका फिर अपने को बदलकर मुस्कराता हुआ बोला,

"सच कहूँ ?"

"नहीं, रहने दीजिये।" विभा को लगा जैसे वही निशाना बनाई जायगी। विज्ञानानन्द मौज में आ गया। उसने लफंगेपन से अपना हाथ चटखारे के साथ चूम लिया और विभा की ओर देखता बोला, "समझ गईं।"

नौकर ने आकर खबर दी सामान बँध गया है।

"हाँ, चल आया।" अन्तिम बार बोला।

"विभा देवी, जीवन वही नहीं है जो आपने देखा, सुना या जाना है, वह रात के अँधेरे में सुबह की उषा की तरह धीरे-धीरे कई रूपों में उभरता है। वह सुबह एक तरह का, दोपहर को दूसरी तरह का, शाम के समय तीसरी तरह का, और रात की चाँदनी में जब सब कुछ दीखता हुआ भी नशे में खुमार की तरह बहुत कुछ अदेखा रह जाता है तब लगता है एक आनन्द का सागर पंख बाँधे ऊपर-ऊपर उड़ा जा रहा है। जितना ही ऊपर उड़ता है उतने ही नये रंग, नई दीवानगी, नया मस्तानापन लिये हमारी आँखों में झूमने लगता है। मैं साधु हूँ तो क्या यह सब मुझे नहीं जानना चाहिये? मैं जीवन के अध्यात्म को उसकी पहली सीढ़ी नहीं मानता जहाँ मन को मारकर दुनियाँ के रसों से, वैभव से आँखें मींच ली जाती हैं। क्या मैं गलत कह रहा हूँ बोलो?"

इतना कहते-कहते विज्ञानानन्द अलमस्त हो उठा। उसकी आँखों में चंचलता थिरक उठी। एक तरह की उत्तरंग मस्ती में वह भर गया। विभा को लगा जैसे वह उसे आलिंगन में भरने को हाथ फैलाने ही वाला है। वह दूर हट गई। बहुत दिनों की जबर्दस्ती से रुका हुआ उसका निःसंग मन क्रोध, घृणा और रोमांच से भर गया। फिर भी उसने अपने को सँभाला और क्रोध से बोली—

"जाइये महाशय, देर हो रही है।"

विज्ञानानन्द ने देखा नौकर सामान लेकर बाहर ही खड़ा है। वह बोला—"अच्छा, आज्ञा चाहता हूँ।"

विभा की भौंहें क्रोध से तनी थीं।

फिर वह विज्ञानानन्द को देखती रही। वह पीछे मुड़कर स्वामीजी को नमस्कार करने के बहाने विभा को देखता रहा।

स्वामीजी ने विभा को देखा तो पूछने लगे—"क्या कह रहे थे स्वामी विज्ञानानन्द ?"

"धूर्त है ।" विभा के मुँह से निकल गया ।

"मनुष्य के कई रूप होते हैं—विभा । उन्हें पहचाने विना धोखा हो जाता है देखने वाले को ।"

विभा का सारा शरीर क्रोध से झन्ना रहा था । एक बार उसके जी में आया कि वह विज्ञानानण्द के मुँह पर कसकर चपत लगाती । न होता पत्थर से उसका सिर फोड़ देती । बहुत देर वाद वह शान्त हुई तो—

उसने देखा स्वामीजी बैठे-बैठे उसे बार-बार देख रहे हैं कुछ कह नहीं रहे ।

विभा ने सहज भाव से पूछा—"कैसा जी है स्वामीजी ?"

"आज ही मैं ऋषिकेश चला जाऊँ तो ठीक रहे । परसों तक···। तेरा क्या होगा बेटी ?"

"मेरा···।"

उन्होंने सिर हिलाकर संकेत किया जैसे हामी भर रहे हों ।

"आप मेरी चिन्ता न करें । कुछ न कुछ हो ही जायगा ।"

"बुरे पथ पर न जाना ।"

विभा ने कोई जवाब न दिया । उस दिन देहरादून से दवा लेकर चिदम्बरं लौट आया । बड़े आग्रह से स्वामीजी ने दवा ली और बोले—

"मुझे ऋषिकेश पहुँचा दो चिदम्बरं ।"

विभा ने एकान्त में ले जाकर चिदम्बरं से कहा—"कहते हैं परसों तक जीऊँगा ।"

"गंगा याद आ रही है शायद । मैं प्रबन्ध करता हूँ । वह उसी समय पास के गाँव से एक गाड़ी का इन्तजाम करके लौट आया ।"

दूसरे दिन सवेरे गाड़ी आ गई । स्वामी जी को गाड़ी में लिटा दिया गया । विभा उनके पास बैठ गई । चिदम्बरं पैदल चल रहा था । रास्ते में गाड़ी के धचकोलों से स्वामीजी को काफी कष्ट हुआ । जब वे परेशान हो जाते तब

गाड़ी रोक दी जाती फिर सुस्ताने और उनके आराम पाने के बाद गाड़ी हाँक दी जाती। उस रात करीब बारह बजे गाड़ी उनके आश्रम के पास पहुँची। दोनों ने मिलकर उन्हें उठाया और कुटिया में जा लिटाया। फिर भी इस यात्रा ने उनकी सारी देह झँझोड़ डाली। अब पहले से ज्यादा बेचैनी थी। ज्यादा तेज साँस चलती, साँस का दौरा और तेज हो गया। सब रात उनकी बेचैनी और परेशानी में कटी। दवा उन्होंने छोड़ दी। दोनों लोगों के द्वारा काफी देख-भाल के बाद भी वे काफी परेशान रहे। रात को कभी एक थोड़ी देर के लिए सो जाता कभी दूसरा। कभी दोनों आकर बैठ जाते। दूसरे दिन तबीयत और भी खराब हो गई। रह-रहकर स्वामीजी के चेहरे पर थोड़ी देर के लिये शान्ति की रेखायें झलकतीं। लगता जैसे वे अपनी भीतरी शक्ति से सारे दुख को कम कर रहे हैं। बीच-बीच में कभी ऐसा लगता जैसे वे समाधि की दशा मे पहुँच गये हैं। उस दिन उन्होंने जल भी छोड़ दिया। कभी अपने आप चिदम्बरं और विभा की तरफ देखकर कहते, बस, "थोड़ी देर है।" दूसरे दिन ऋषिकेश के कुछ भक्त आ गये। वे भी यथासाध्य सेवा करने लगे। कुछ देर के लिये लगता जैसे वे ठीक हो रहे हैं। अपने आप बैठकर कुछ श्लोक पढ़ते या जप करने लगते। एक प्रकार की शान्ति उनके चेहरे पर छाई हुई थी। सब लोग चटाई पर चुप बैठे उन्हें देख रहे थे। वे सहारा पाकर लेट गये। बोले, चिदम्बरं भाई, तुमने बड़ा कष्ट किया। मेरी कामना है तुम्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिले। विभा का'''विभा का ध्यान रखना। फिर आँखें बन्द करके मौन हो गये। पास बैठे लोगों को लगा जैसे साँस खिच रही है। मुँह हिल रहा था, जैसे कुछ बोल रहे हों। भक्त गण हरे कृष्ण, हरे राम, बोल रहे थे। यह कीर्तन देर तक चलता रहा। इसी बीच दो-तीन हिचकियाँ आईं। स्वामीजी ने शरीर छोड़ दिया। विभा एकदम फूटकर रो पड़ी। चिदम्बरं ने अपने आँसू पोंछ डाले और जोर से चिल्ला पड़ा। 'एक देश-भक्त और चला गया।' लोगों ने शव के पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया तथा जल-समाधि की व्यवस्था की। आस-पास के बहुत से साधु आ गये। कीर्तन करते स्वामीजी का शरीर गंगा के किनारे ले जाकर रख दिया और विधिपूर्वक देह की गठरी

में पत्थर बाँधकर जल-समाधि दी गई। उस समय काफी लोगों ने इकट्ठे होकर समाधि का दृश्य देखा। उनकी प्रशंसा करते हुए स्नान करके अपने-अपने स्थानों को लौट गये। विभा और चिदम्बरं कुटिया के बाहर आकर बैठे। अब वहाँ क्या था? शाम सिर पर आ रही थी। सामने आश्रम के महन्त ने दोनों को भोजन भिजवा दिया। दोनों ने खाया। पिछले दिन से उन दोनों ने ठीक तरह से खाया भी नहीं था। चिदम्बरं मूक था उसकी जबान जैसे किसी ने सी दी। विज्ञानानन्द से बातचीत के बाद विभा कभी क्रोध, कभी घृणा में बेचैन हो उठती। स्वामीजी की बीमारी के कारण उसको अपने सम्बन्ध में कुछ भी सोचने का अवसर नहीं मिला था। अब भविष्य का अंधकार उसके सामने महाकाल की तरह भयंकर रूप में प्रत्यक्ष हो उठा। निराश, निरवलंब जीवन का भीषण रूप साकार हो गया। क्या करे, कहाँ जाय? गर्मी में धूल के कणों के वात्याचक्र की तरह उसका मन अस्थिर हो उठा। वह सोचती रही। सोचती ही रही। उसके माथे की नसें चिन्ता से तन गईं। उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। उसे कमल का ध्यान आता, कभी विज्ञानानन्द की बातें सोचती। उसे लगा जैसे विज्ञानानन्द उसके मन में बार-बार झाँक उठता है। उसका रूप मन में चिकना हो रहा है। स्वच्छ, स्वस्थ। इतने पर भी बेचैन थी। चिदम्बरं भी चुप बैठा था। न जाने क्या सोच रहा था। इसी समय वह अचानक बोला,

"तुम्हें कहाँ जाना है विभा? मैं तो जल्दी चला जाना चाहता हूँ, कहो, वहाँ पहुँचा दूँ।"

"कहाँ जाओगे?"

"कहीं भी। अब मेरा बन्धन कट गया है।"

विभा ने कोई जवाब नहीं दिया। चिदम्बरं ने आगे कुछ न पूछा। उन दिनों मौसम में हल्की गर्मी आ गई थी। रातें ठंडी थी। दोनों काफी रात तक कुटिया के बाहर बैठे रहे। चिदम्बरं अपने में खोया बैठा रहा। विभा कुछ समझ नहीं पा रही थी। अचानक पूछ बैठी—

"कहाँ जा रहे हो चिदम्बरं?" जैसे जाग गया हो। थोड़ी देर चुप रह कर बोला—

"कहीं भी।"

"बिना उद्देश्य के।"

"उद्देश्य पूरा करना चाहता हूँ वह जैसे पूरा नहीं होता। मेरे सब काम मुझ से उल्टे हो गये हैं। मैं कुछ न कर सका। जैसे दुर्भाग्य मेरे साथ चलता है। कभी-कभी सोचता हूँ क्या मैं कुछ भी न कर सकूँगा?"

"तो क्या करना चाहते हो?" विभा के मन में उसके प्रति उत्सुकता जागी। वह बोला,

"जो करना चाहता हूँ वह हो नहीं पा रहा। यह सारा देश जैसे एक नशे में बेहोश है। गुलामी, दासता का विष पीकर मर रहा है। तड़प भी तो नहीं है। ओः कितना कष्ट है।" फिर रुककर बोला,

"मैं संन्यासी नहीं हूँ विभा, मैं कुछ भी नहीं हूँ। मैं रेंगता हुआ एक कीड़ा हूँ जिसका कोई उद्देश्य नहीं है। खाना और मर जाना। इतना बड़ा देश, इतने आदमी, इतनी शक्ति, सब व्यर्थ। यही मैं कभी-कभी सोचता रहता हूँ। करवट भी तो नहीं लेता। मरता भी तो नहीं है। जी रहा है तपेदिक के रोगी की तरह। बस, यही। तुम जानती हो, क्यों ऐसा है इसमें जातीयता का अभाव है। राष्ट्रीयता तो इसमें कभी आई ही नहीं।"

"चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में भी नहीं?"

चिदम्बरं हँसा, जैसे हँसी जबरदस्ती बुला रहा हो।

"वह मद था बल का मद, पराक्रम का मद। राज्य बढ़ाने का मद। वह जातीयता नहीं पैदा कर सका। धर्म ने यहाँ भेद पैदा किये। छूआछूत बढ़ाई। व्यर्थ का अभिमान पैदा किया और हमारे जीवन को नरक बना दिया। अजीब देश है यह। अजीब मिट्टी।"

"तुम तो निराश हो गये दीखते हो। इससे क्या होगा? अगर हम दो आदमी मिलकर कुछ कर सकें तो मैं तैयार हूँ।"

तुम...तुम नारी हो जब पुरुष ही नपुंसक है तो एक अनजान नारी क्या करेगी। मैं स्वयं कुछ नहीं जानता तो मैं बताऊँ भी क्या। फिर भी मन में एक बेचैनी एक अनबुझ हूक उठती रहती है। वकालत करते हुए भी कुछ न कर

सका। साध पूरी नहीं हुई। फिर संन्यासी का रंग लिया। गेरुए कपड़ों ने भी साथ न दिया। सब ओर निराशा है। दुनियाँ की और जातियों और देशों की कहानी सुनता हूँ तो मेरा मन अपने देश का ध्यान करके कष्ट से भर उठता है। कभी-कभी जी में आता है सारे देश में जीवन की आग लगा दूँ। अब तो मुझे अंग्रेजों से ही घृणा नहीं है अपने देश के लोगों से भी घृणा होती जा रही है। नरक के कीड़े।" वह बोलता-बोलता जोश में भर गया। उसका शरीर काँपने लगा।

"कभी-कभी मुझे लगता है मैं पागल हो जाऊँगा।"

"उस से क्या उद्देश्य पूरा हो जायगा। अच्छा हो तुम समाज-सुधार के द्वारा देश में जागृति करो। समाज में जागृति पैदा करके ही इसे उन्नत बनाया जा सकता है। मान लो, अंग्रेजों को मार दो और बचे-खुचे लोग यहाँ से भाग जायँ तब भी इस देश में इतनी खराबियाँ हैं कि यह आजाद रहकर जिन्दा नहीं रह सकता। आपस में ही लड़ मरेगा।"

वह उछल पड़ा।

"मैं भी यही कहता हूँ जातीयता उत्पन्न करने की जरूरत है।"

"तो जातीयता क्या अंग्रेजों के जाने से आवेगी। मैं तो कुछ भी नहीं जानती। तुम्हारे और स्वामीजी के पास रहकर इतना ही जाना है, "स्वामीजी सच-मुच महान् थे। कुछ न करने पर भी वे बहुत कुछ कर गये। मुझे मालूम है उन की लगाई आग जल रही है। पचासों लोग जला रहे हैं। मैं···मैं क्या कुछ कर सका विभा देवी!"

"सचमुच स्वामीजी महान् थे। चिदम्बरं!" विभा की आँखों में एक बार फिर आँसू छलक आये। वह बहुत देर मौन रही। चिदम्बरं मूक आकाश की ओर ताकता रहा। जैसे अपने में खो गया।

विभा ने रात को बीच-बीच में देखा चिदम्बरं वैसे ही अपने आसन पर बैठा है। उसने पूछा—"जाग रहे हो चिदम्बरं।"

"हाँ, जाग रहा हूँ। नींद ही नहीं आती।"

"व्यर्थ चिन्ता से क्या लाभ। सो जाओ। अभी बहुत रात मालूम देती है।"

"देश की रात कैसे, कब दूर होगी यही सोच रहा हूँ।"

"कुछ पता लगा।" उसने हँस कर पूछा।

चिदम्बरं चिढ़कर बोला, "तुम हँसती हो।"

वह नरम होकर बोली—

"नहीं, ऐसा नहीं है। तुम्हें बैठा देखकर लगा जो तुमने कहा वह ठीक होने जा रहा है।"

"क्या कहा मैंने?"

"कही थी न पागल होने की बात।"

चिदम्बरं हँस पड़ा। "खूब याद रखती हो।" उसने कड़े होकर कहा, "इसका मतलब है तुम्हें मेरे साथ, मेरे उद्देश्य के साथ कोई सहानुभूति नहीं है?"

"मैं बड़ी मूर्ख हूँ चिदम्बरं।"

"यह तो स्पष्ट है।" उसने सहज भाव से कह दिया।

विभा उठकर बैठ गई।

"मैं तुम्हारी बड़ी कृतज्ञ हूँ चिदम्बरं।"

"किस बात की कृतज्ञता?"

"तुमने मुझे वास्तविक रूप से समझ लिया। विज्ञानानन्द तो मुझे विदुषी कहता है।"

चिदम्बरं जैसे चौंका,—"विज्ञानानन्द, मैं उसी के पास जाऊँगा। भला वह तुमसे क्या कहता था?"

"वह चाहता है मैं उसके साथ अमरीका चलूँ। वह धर्म का प्रचार करने जा रहा है। इस देश में उसने काफी प्रचार कर लिया है न? वैसे भी अब यहाँ कुछ भी करने को उसे बाकी नहीं है। उसकी दृष्टि में मैं ही एक मात्र योग्य व्यक्ति हूँ।"

"ऐसा?"

"हाँ, मैं स्त्री हूँ न, खूबसूरत भी। शायद वह अपना बँगला भी मेरे नाम कर दे।"

चिदम्बरं का मन गुदगुदी से भर गया।

"अरे !"

"हाँ।"

"मैं तो समझता था वह भला साधु है।"

"इससे क्या वह असाधु हो गया चिदम्बरं ? वह कपड़ों से साधु ही है जैसे तुम।"

"लेकिन मैंने तो तुम से······।"

"शायद प्रभा के सामने मैं तुम्हें पसन्द नहीं आई।"

चिदम्बरं चौंक उठा। "तुम्हें कैसे मालूम ?"

"प्रभा से ही मालूम हुआ। उसी ने कहा मुझसे।" मैंने उससे कहा,—"देश-सेवक, देश में आग लगाने की चिन्ता में घुलने वाला आदमी ऐसा नहीं हो सकता। प्रभा, तुम्हें भ्रम हुआ होगा।"

"फिर।"

"उसने नहीं माना। कहा, सच है शायद इसीलिए उसका भाई उसे ले गया।"

चिदम्बरं थोड़ी देर तक चुप रहकर बोला, "बात सच है। मैं उस समय पागल हो गया था।"

"तो अब दूसरी बार पागल होने जा रहे हो ?"

"कैसे ?"

"अभी तो कहा था। भूल गये ?"

"वह मेरी कमजोरी थी विभा।"

"मैं इसे कमजोरी नहीं मानती। यह स्वाभाविक है।"

"क्या कहा ?" वह चिल्लाया। "तुम इसे स्वाभाविक मानती हो।"

"बिलकुल।"

"बड़ी विचित्र बात है।"

"देश-सेवा में यह भी तो चलता ही है न ?"

"स्टुपिड।"

"मैं नहीं समझी।"

"कुछ नहीं। और क्या कहती थी प्रभा ?"

"यही, जो तुम चाहते थे। हाँ, सफलता नहीं मिली।"

"रहस्यमयी हो तुम।" चिदम्बरं बोल उठा। "इतना छिपाकर रखा है।"

"स्त्री का कुछ भी अगोप्य नहीं रहता चिदम्बरं।"

"प्रभा के प्रति मुझमें न जाने कैसे अनुरक्ति हो गई। मैं स्वयं बाद में लज्जित हुआ।"

"साधु इससे परे होते हैं न। काम, क्रोध, लोभ, मोह का आवरण उन्हें नहीं घेर पाता। वे स्पष्ट होते हैं। विज्ञानानन्द भी स्पष्ट है।"

"यानी।"

"वह मेरा उपभोग करना चाहता है। कहता था साधु तो मन है शरीर नहीं।"

"वह धूर्त है।"

"हो सकता है एक एक के लिए हो दूसरा दूसरे के लिये।"

"तो तुम्हारा निश्चय है कि तुम विज्ञानानन्द के पास जा रही हो?" चिदम्बरं ने ढीठ होकर पूछा। जैसे लज्जा का अनावरण होने पर प्रतिहिंसा का दानवत्व जाग उठा।

"फिर तो ठीक है मेरी चिन्ता दूर हुई। वह बोला।"

"क्या मैंने कभी तुम्हें चिन्ता करने को कहा था। याद तो नहीं आता।"

"स्वामीजी कह गये थे न।"

"शायद स्वामीजी को तुम्हारी देश-भक्ति के अलावा और दूसरी बात का ज्ञान न हो।"

"मैं नहीं जानता मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"कुछ भी नहीं। मैंने तो सहज भाव से बताया।"

"फिर भी मैं सहज भाव से ही पूछ रहा हूँ। तुम कहो, वहाँ मैं तुम्हें पहुँचा दूँ।"

"नहीं, तुम्हें जहाँ जाना हो जाओ। मैं अपना रास्ता बना लूँगी।"

"यही मैं चाहता हूँ। पर एक बात का मुझे डर है।"

"क्या ?"

"विज्ञानानन्द की बाबत सोच रहा था।"

"वह भी मेरे ध्यान में है।"

"क्या विज्ञानानन्द के पास जाओगी ?"

"अगर जाना पड़ा तो जाऊँगी।"

"तो क्या यह उचित होगा। तुम्हारी जैसी......।"

"कहीं तो सहारा चाहिये न।"

चिदम्बरं उस अँधेरे में भी जैसे विभा को देखने लगा। उसने देखा एक छाया मूर्ति के सिवा वह और कुछ नहीं है। केवल वाक्यों की मूर्ति, प्रतिमूर्ति बन-बिगड़ रही है। उसके मन में एक बार आया, कह दे, तो मेरे पास रहो। पर वह कह नहीं सका। उसके ध्यान में आया। विज्ञानानन्द मालदार साधु है। अमेरिका जाने की कह रहा है शायद ले जाय। एक बार उसके जा में ग्लानि हुई क्यों न वह भी किसी आश्रम का महन्त हुआ। वह चुप हो गया।

"अब कितनी रात होगी ?" विभा ने पूछा।

"शायद बहुत नहीं है।" कहकर वह बाहर चला गया। विभा जागती रही। चिदम्बरं बाहर से आकर बोला,

"विभा, तुम समझती होगी मैं भी औरों की तरह पतित हूँ लेकिन मेरे जीवन में बूढ़ी माँ के अलावा कोई नारी नहीं आयी। दो-एक लड़कियों ने चाहा कि वे मेरे साथ शादी कर लें पर मैंने ही अस्वीकार कर दिया।"

"तो क्या अब पछतावा हो रहा है ?"

"नहीं, मैंने तुम्हें बताया कि मैं वैसा नहीं हूँ। एक बार वह कमजोरी आई थी। अब मैं उससे घृणा करता हूँ।"

"कमजोरी क्या कहकर गई है कि वह फिर नहीं आवेगी चिदम्बरं। मन को अवसर के सामने छोड़ देने पर वह आती है।"

"मैं अब मर जाना चाहता हूँ।"

"किस लिए ?"

"दो-चार विदेशियों को मारकर, यही मैं सोचता हूँ।"

"बुरा नहीं है। अगर वह उचित लगे।"

"बस, यही मेरा निश्चय है। मुझे अपने से भी कोई मोह नहीं है। मैं सवेरे चला जाऊँगा।"

विभा में चिदम्बरं के प्रति श्रद्धा का भाव जगा। उसने पाया चिदम्बरं के भीतर देश-भक्ति की आग सुलग रही है। वह निष्कपट है, निश्छल व्यक्ति। उसने देखा वह सचमुच भीतर ही भीतर छटपटा रहा है। विभा उठ बैठी उसने कहा,

"स्वामीजी को छोड़कर तुम्हीं एक ऐसे मिले जिस पर मैं श्रद्धा करती हूँ। तुम जाओ। मैं ईश्वर से कामना करती हूँ तुम्हें अपने ध्येय में सफलता मिले।" उसने अपने आसन पर बैठे-बैठे हाथ जोड़ दिये।

उस समय आकाश में सबेरे का उजाला हो रहा था। चिदम्बरं बिना उत्तर दिये फिर बाहर चला गया। जिस समय वह लौटा तो धूप निकल आई थी। उस समय विभा कुटिया में नहीं थी। कम्बल बगल में दबाकर वह विभा के आने की प्रतीक्षा करने लगा। इसी बीच उसने देखा सामने से अभिज्ञानानन्द और विद्यानन्द आ रहे हैं।

उन्होंने चिदम्बरं को देखा तो पास आ गये।

"स्वामीजी नमोनारायणः।"

"नमोनारायण अभिज्ञानानन्द, विद्यानन्दजी। तुम कहाँ से?"

"अब ऋषिकेश में ही आ गये हैं। देहरादून में मन नहीं लगा वहाँ के महन्त कंजूस हैं। चाहते हैं सेवा तो हो पर मेवा वे ही खायें। यह अपना देखा हुआ है। भोजन की भी कमी नहीं है।" अभिज्ञानानन्द बोला।

"अरे चिदम्बरंजी, वह अपना काम नहीं है। अपना काम तो है दो मधूकड़ी पा लेना और भजन करना। सुना स्वामी हरिशरणानन्दजी का देहपात हो गया।" विद्यानन्द ने पास आकर पूछा।

"हाँ, कल ही।"

"अरे, मालूम ही नहीं भया। दर्शन तो कर ही लेते।" विद्यानन्द बोला।

इसी समय दूर से विभा आती दिखाई दी। उसे देखकर विद्यानन्द ने पूछा,

"यह क्या अब भी तुम्हारे साथ है ? मौज ही मौज है चिदम्बरंजी ।"

अभिज्ञानानन्द ने कहा, "अरे स्वामीजी, तुम्हारे मुँह में क्यों पानी भरा आवे है यह तो हाथ मारने की बात है। तुमने तो वहाँ समाधि ही लगा ली थी।"

"और तुमने कौन-सा तीर मार लिया ?"

"स्वामीजी का डर था विद्यानन्दजी नहीं तो यहाँ चूकने वाले नहीं हैं।"

"देवीजी, नमोनारायण।"

विभा ने देखा तो पास आकर हाथ जोड़ दिये।

"बड़ा शोक है स्वामीजी महाराज का ? हरिओम् हरिओम् फिर दर्शन करेंगे।"

चिदम्बरं कुछ कहे इससे पूर्व वे दोनों विभा को देखकर मुसकराते खिसक गये।

चिदम्बरं बोला, "बड़ी देर लगाई।"

"हाँ।"

"अच्छा, मुझे आज्ञा दो।"

"जायेंगे। मैं भी चल रही हूँ।"

"कहाँ ?"

"जहाँ आप जायँगे।"

"मेरे साथ क्या ?"

"हाँ, मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी।"

"लेकिन मैं ·····।" वह हिचकिचाया।

"आप डरते हैं ?"

"नहीं, नहीं ऐसा नहीं। मैं तो···पर···"

"बात यह है···।"

"पर मैं तो अकेला जाऊँगा। आप यहाँ कुटिया में रहें। वे भक्त लोग जो परसों आये थे कह रहे थे स्वामीजी की कुटिया खाली न करें।"

"तो क्या मैं स्वामीजी की उत्तराधिकारिणी हूँ चिदम्बरं ?" इतना कहकर

वह कुटिया में गई और वहीं से बोली,

"हरिद्वार तक चलूँगी चिदम्बरं जी।"

"अच्छा।"

सामान बहुत तो था नहीं। एक पोटली और कम्बल। उठाकर बाहर आई तो चिदम्बरं बोला,

"स्वामी विज्ञानानन्द आ रहे हैं।"

"तो क्या हुआ चलिये। कहीं जाता होगा।"

"नहीं, नहीं, इधर ही उतर रहे हैं।"

विज्ञानानन्द आया तो उसके और ही ठाठ थे। भागलपुरी रेशम का लम्बा कुर्त्ता, बंडी, रेशमी लुंगी। चमचमाता बूट, रेशमी जुर्राबें, सिर पर गेरुआ, रेशमी पगड़ी, सुनहरी फ्रेम का काला चश्मा। हाथ में सुनहरी मूठ की बढ़िया उमेठदार छड़ी। बढ़िया बिलायती लेवेण्डर की खुशबू की फुहार छूट रही थी। चिदम्बरं ने हाथ जोड़ दिये, विभा उसे ही देखने लगी। 'नमोनारायण' कहकर उसने स्वामीजी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया फिर बोला,

"कल दोपहर को स्वामीजी की मृत्यु का समाचार सुना तभी चल पड़ा। रात हो गई तो ऋषिकेश ठहरा। अब आ रहा हूँ। आप लोग कहीं जा रहे हैं?"

"हाँ, आप ही से मिलकर बंगाल जाने का विचार था।"

"क्यों, बंगाल क्यों?" विज्ञानानन्द ने पूछ दिया।

"ऐसे ही।"

"और विभा देवी।"

"यह हरिद्वार तक जायँगी।"

"देखिये चिदम्बरंजी, आप चाहें तो द्वारका हो आइये। मैंने कुंभ के अवसर पर साधुसभा का प्रबन्ध कर लिया है। जगद्गुरु को तैयार कर लीजिये। वे यथासमय आ जायें। मेरा यहाँ आने का एक उद्देश्य आपको निमन्त्रित करना भी है। बोलिये?"

"सोचकर कहूँगा।"

"हाँ, सोच लीजिये। चलिये, हम लोग हरिद्वार चलें।"

"आप क्या करेंगी हरिद्वार में ?" विज्ञानानन्द ने विभा से पूछा।

"कुछ नहीं सोचा।"

"हूँ।" उसकी आँखें चमक उठीं।

तीनों चल दिये। विभा ने स्वामीजी की कुटिया को पीछे फिरकर प्रणाम किया और पुरानी स्मृतियों में डूबी हुई चल दी। उसका मन भारी हो उठा। चिदम्बरं, विज्ञानानन्द साधु सम्मेलन के सम्वन्ध में चर्चा करते हुए चले जा रहे थे। ऋषिकेश पहुँचकर एक ताँगे में तीनों बैठ गये। विज्ञानानन्द ने एक दुकान से ढेर सी मिठाई नमकीन लिया और खाते हुए चले। विभा ने कुछ नहीं लिया।

चिदम्बरं आगे बैठा विज्ञानानन्द और विभा पीछे। विज्ञानानन्द कह रहा था वह एक आश्रम ऋषिकेश और हरिद्वार के बीच में बनाना चाहता है। एक नरेश ने उसे वचन दिया है सारा खर्च वह देगा। कम से कम बीस हज़ार लगेगा। एक बड़ा हाल, दस बड़े कमरे, सामने बाग, एक तरफ गोशाला होगी। हाल में संकीर्तन की व्यवस्था। नरेश कभी-कभी आया करेंगे। रानियाँ वर्ष में दो मास रहेंगी। यह सब कुम्भ के बाद करने का निश्चय है। उसने चलते-चलते सड़क से हटकर गंगाजी की तरफ उस स्थान की ओर इशारा करके बताया। दस एकड़ जमीन है। बातचीत चल रही है।

"इस जंगल में बाहर से कौन आयेगा ?" विभा ने पूछ लिया।

"सब नहीं, केवल वे लोग जो तप करना चाहेंगे।" यह कहकर विज्ञानानन्द ने विभा को टकोर दिया।

"और अमरीका ?" विभा ने चुटकी ली।

"उसके बाद अमरीका। वह भी निश्चित ही है। पिछले दिनों एक अमेरिकन महिला हरिद्वार आई थी उसने निमन्त्रण दिया है।" इसके साथ ही चमड़े के थैले से उसने वह पत्र निकालकर चिदम्बरं को दिखाया। पत्र पढ़कर चिदम्बरं ने पूछा—"कौन आपके साथ जायगा, क्या अकेले ही ?"

"अभी निश्चय नहीं किया।" कहकर उसने विभा के मुख पर मुसकराते हुए आँखें गढ़ा दीं।

विभा ने देखा और चिदम्बरं से कहने लगी,

"आप जाइये न चिदम्बरंजी। स्वामीजी को एक अंग्रेजी जानने वाले की जरूरत तो होगी—एक पुजारी का होना जरूरी है।"

विज्ञानानन्द ने उत्तर दिया, "मेरे एक मित्र वहाँ हैं वे मुझे सहायता देंगे। मैं इन दिनों अंग्रेजी में भाषण देने का अभ्यास कर रहा हूँ।"

इसी समय सत्यनारायण का मन्दिर आया तो तीनों दर्शनों के लिये उतरे। ताँगे वाले ने घोड़ा खोल दिया। मन्दिर के स्वामी ने तीनों को देखा तो दो साधुओं में एक युवती को देखकर आश्चर्य में पड़ गया। दर्शन के बाद वे तीनों बाहर आँगन में बैठ गये।

स्वामी ने आकर पूछा—"हरिद्वार जा रहे हैं?"

"हाँ।" चिदम्बरं ने उत्तर दिया।

"यह देवी कौन है, संन्यासियों के साथ तो······।"

'ये हरिद्वार जा रही हैं।"

"आप लोगों के साथ?"

विज्ञानानन्द ने कहा—"आश्चर्य हो रहा है आपको। यह मेरी शिष्या है। तप करने आई है।" स्वामी ने विज्ञानानन्द को ऊपर से नीचे तक देखा और कहने लगा—

"तो कुछ दिन यहाँ भी रहिये।"

"नहीं। अब तो जाना है।" उसने कुम्भ के अवसर पर साधु सम्मेलन, जगद्गुरु, राजा-महाराजाओं का आना आदि सब बातें विस्तार से बताईं। और अपना प्रभाव तथा देश में साधुओं के संगठन आदि की बातों से स्वामी को मुग्ध कर दिया। वह यह बताना भी न भूला कि कई नरेश उसके शिष्य हैं। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबाद के सेठों पर उसका काफी प्रभाव है। जब चलने लगे तो स्वामी ने प्रभावित होकर अनुरोध किया—"भोजन करके जाइये।"

न मानने पर वह कुछ मिठाई ले आया। तीनों ने मिलकर खाई और चल दिये। उसने कहा, "आप महान् हैं स्वामीजी। आपके हाथों साधुओं की उन्नति हो इससे अच्छी और क्या बात है।" इसके साथ ही उसने विज्ञानानन्द के पैर

हुए। विभा जानती थी विज्ञानानन्द कितना बना हुआ है। फिर भी उसे लगा इसके साथ रहकर वह नई दुनिया देखेगी। वह एक तरह से धीरे-धीरे उसकी ओर आकृष्ट होती जा रही थी। विज्ञानानन्द पान-तमाखू भी खाता था। वह रह-रह कर चाँदी की डिबिया से पान निकालकर खाता। तमाखू की खुशबू से उसका मुँह मँहमँहा उठता। एक बार उसने देखा उसके पास कई हजार के नोट हैं तो वह चौंक उठी। ताँगा सीधा उसके आश्रम पर पहुँचा। सामने लिखा था—"विश्राम भवन।"

तीनों उतरकर पोर्टिको की सीढ़ियाँ चढ़कर सामने के हाल में पहुँचे। गाव-तकियों के साथ एक बड़े तख्त पर रेशमी कालीन बिछा था। कुछ कुर्सियाँ करीने से सजी थीं। दीवार में आदमकद विज्ञानानन्द का आसन पर माला लिये पूरा रंगीन चित्र। कमरा काफी सजा हुआ। रेशमी झालरदार पर्दे।

इसी समय एक नौकर हाथ जोड़कर सामने आ खड़ा हुआ।

"देखो, रामधन, तीन गिलास दूध ले आओ। रात को भोजन क्या बना रहे हो? खैर, अच्छा बनाना। आइये, मैं आपको आश्रम दिखाऊँ।" वह सबको ले जाकर कमरे दिखाने लगा। हर कमरा अपने ढंग का नया, सजा हुआ था। एक में आफिस था। एक को छोड़कर प्रायः सभी खाली थे। उनमें निवाड़ के पलँगों पर गद्दे बिछे थे। एक मेज, दो कुर्सियाँ। दूसरी तरफ बरामदे के आगे फूलों का बाग। एक तरफ दो गउएँ बँधी थीं। माली बाग को पानी दे रहा था। उससे हटकर उसी के खेत थे, जिनमें मक्का लहरा रही थी। छोटे से भू-भाग में साग-सब्जी लगी थी। कुछ फलों के पेड़ों के नीचे एक तख्त के साथ मोढ़े रखे थे। एक तरफ बड़ा-सा कूँआ। उसके साथ बैलों की जोड़ी बँधी थी। विभा ने देखा तो बोली,—"पूरी गृहस्थी है आपकी।"

विज्ञानानन्द मुसकराकर बोला,—"पिछले दिनों बम्बई के एक सेठ दो मास ठहरकर गये हैं। और मेरा कमरा कहाँ है आओ वह भी दिखाऊँ।"

वह ऊपर ले गया। बरामदे के साथ एक बड़ा कमरा काफी सजा हुआ था। तख्त पर मसहरी लगी थी। नीचे सुन्दर कालीन। कुछ आराम कुर्सियाँ। एक तरफ दो आलमारियों में ताला लगा था। उसके साथ का कमरा सामान से भरा था।

"यहीं मैं सोता हूँ।"

बरामदे के आगे छत पर गमलों में कई तरह के फूल थे। बीच में तख्त पड़ा था। रामधन ने इसी समय डाक लाकर रख दी। विज्ञानानन्द देखने लगा।

"हमारा बाबू नहीं आया?"

"आया था चला गया।"

"बुलाओ उसे।"

"नौकर बुलाने चला गया। रामधन तीन गिलास दूध ले आया। दूध हाथ में लेते ही चिदम्बरं और विभा उसकी खुशबू से मुग्ध हो गये। बादाम, पिश्ते, केशर से वह महक रहा था। विज्ञानानन्द नीचे दो कमरों में दोनों के ठहरने की व्यवस्था करके आफिस में बाबू को पत्रों के उत्तर लिखाने चला गया।

विभा ने पूछा"—इस सब का मालिक कौन होगा? चिदम्बरं जी, बड़े ठाठ हैं।"

"विज्ञानानन्दजी के अतिरिक्त और कौन हो सकता है। बड़े प्रतापी साधु हैं।"

विज्ञानानन्द पत्रों के उत्तर लिखाने के बाद किसी काम से बाहर चला गया। काफी रात गये लौटा तो बोला —"देर हो गयी। सम्मेलन के काम से कुछ महन्तों से मिलना जरूरी था। हाँ, तो चिदम्बरंजी आपने क्या फैसला किया?"

चिदम्बरं चुप रहकर बोला—"चला जाऊँगा।"

"हाँ जाओ। रास्ते में बड़ौदे के एक महन्तजी को निमन्त्रण भी दे आना। जयपुर के साधु मंडल को भी। मैंने मंडलेश्वरों को भी पत्र लिख दिये हैं। उनके उत्तर आ गये हैं। वैसे जगद्गुरु ने वचन दिया है किन्तु एक बार जाने से वे प्रसन्न हो जायेंगे। कल दोपहर की गाड़ी से चले जाओ। मैं सब के नाम पत्र दूँगा।" इसके बाद भोजन हुआ तो उस समय विज्ञानानन्द दूसरे रूप में आया। रेशमी चोगा। मखमली चपली, और रेशमी लुंगी। बड़ा भव्य वेश था।

विभा ने देखा तो देखती रह गई। सब ने भोजन किया।

रात को काफी देर तक विज्ञानानन्द आफिस में बैठा काम करता रहा। दो-एक पत्रों की नकल चिदम्बरं ने की। सम्मेलन के काम के लिए एक स्थान और साहित्य के सम्बन्ध में बातें हुईं। दूसरे दिन सवेरे से लोगों

का आना-जाना शुरू हो गया। घोड़ा-गाड़ी, ताँगों पर लोग आ जा रहे थे। कुछ साधु भी आ गये। जैसे-जैसे कुम्भ पर्व के दिन पास आ रहे थे विश्राम भवन में चहल-पहल बढ़ रही थी। विज्ञानानन्द ने विभा से कहा, "यदि तुम भोजनालय का काम सँभाल लो तो ठीक रहे। व्यर्थ का खर्च नहीं होगा।"

उसने मान लिया और भण्डार की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। विज्ञानानन्द फिर कुछ दिनों के लिए बाहर चला गया। चिदम्बरं तो चला ही गया था। कनखल और मायापुर के बीच में तम्बू लगे। शामियाना तन गया। वहीं साधु सम्मेलन का दफ्तर। विज्ञानानन्द ने दो और मन्त्री नियुक्त किये। व्यवस्थापक और स्वयंसेवक बनाये गये। बहुत से तम्बू आश्रम की जमीन में भी गड़वायें।

कुम्भ आ रहा था। हरिद्वार में भीड़ बढ़ने लगी। साधु, वैरागी, दण्डी, निर्मला, निरंजनी साधुओं के अखाड़ों से आसमान गूंजने लगा। रह-रहकर नरसिंहे बज उठते। कुछ अखाड़े हाथियों पर आये, कुछ पैदल, कुछ घोड़ों पर। नागों का दल, वैरागियों की जमात सेना की तरह मार्च करती हरिद्वार पहुँची। चाँदी की तुरही, सोने से मँढ़े नरसिंहे उन साधुओं की जमात के आगे बजते चले जाते थे। पीछे हाथियों पर मंडलेश्वरों, महन्तों की सवारियाँ। जैसे-जैसे पर्व का दिन निकट आ रहा था लोगों की संख्या बढ़ रही थी। भीमगोड़ा, खड़खड़ी से लेकर कनखल, ज्वालापुर तक साधुओं की जमात पड़ी थी। जिनको जगह न मिली वे गंगा के पार जाकर ठहरे। चारों तरफ आदमी ही आदमी, जगह-जगह धूनी रमाये साधु सुल्फा, गाँझा, चरस के दम लगा रहे थे। एक अजीब भीड़ एक अजीब सम्मिश्रण था।

विज्ञानानन्द के लगाये शामियाने में भी लोग रात को सोते। पर्व से दो दिन पूर्व सम्मेलन का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। बड़े-बड़े महन्त, साधु, संन्यासी, वैरागी सम्मिलित हुए। इससे पूर्व उनकी सवारी निकली चाँदी की गाड़ी में। चार घोड़े आगे जुत रहे थे। आगे-आगे बाजे पीछे असंख्य भीड़। नियत दिन सभा-स्थल में शंकराचार्य के पधारते ही सभा-स्थल खचाखच भर गया। स्वयंसेवकों की व्यवस्था से सब लोग यथास्थान बैठे। विज्ञानानन्द ने प्रारम्भिक भाषण द्वारा सम्मेलन की उपयोगिता बताई और जगद्गुरु का नाम सभापति

पद के लिए रखा। इसी समय कुछ गड़बड़ी हुई। एक साधुओं के दल ने अपने महन्त का नाम प्रस्तुत किया। दूसरे ने दूसरे का। काफी गड़बड़ी मची। सब दल अपने-अपने लोगों का समर्थन कर रहे थे।

विज्ञानानन्द के बार-बार जगद्गुरु की प्रशंसा करने पर भी कोई चुप नहीं हो रहा था। अन्त में एक महात्मा ने गर्ज कर सबको डाँट बताई और जगद्गुरु से सभापति बनने की प्रार्थना की। तब कुछ लोग सम्मेलन छोड़कर चले गये। उस सम्मेलन में पचास हजार से कम साधु क्या होंगे। फिर भी जगद्गुरु के व्याख्यान का असर पड़ा। लोग चुप होकर सुनने लगे। कई प्रस्ताव हुए। धर्म-प्रचार की चर्चा हुई। एक प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार को धन्यवाद का रखा गया तो चिदम्बरं भड़क उठा। यह प्रस्ताव स्वयं विज्ञानानन्द ने जगद्गुरु के कहने से रखा था। चिदम्बरं विद्रोही स्वर में आग बरसाता हुआ बोलने लगा। अन्त में एक महन्त ने चिदम्बरं को पकड़कर बिठा दिया। चिदम्बरं उसी समय साधुओं, अंग्रेजी सरकार को गाली देता सभा-स्थान छोड़कर चला गया। वह बहुत क्षुब्ध था। विज्ञानानन्द से नाराज। जिस समय वह विश्राम भवन में आया उस समय विभा भण्डार से सामान निकलवा रही थी। चिदम्बरं को देखते ही बोली—"क्यों चिदम्बरंजी, जल्दी चले आये। सभा समाप्त हो गई?"

वह कुछ भी न बोला। तो काम निबटाकर विभा उसके पास आ गई, "क्या हुआ?"

"कुछ नहीं।" और लम्बी साँसें लेने लगा। क्रोध से उसकी आँखें जल रही थीं। विभा ने समझाते हुए पानी लाकर दिया और बोली,

"लो पानी पियो, साधु को क्रोध नहीं करना चाहिये।"

उसने बच्चे की तरह बिना कहे पानी पिया और गिलास जोर से जमीन पर पटक दिया। उसकी आँखों में आँसू आ रहे थे। विभा को और भी दया आ गई। उसने समझा न जाने किसी ने इससे कुछ कह दिया है। आँसू अब भी चिदम्बरं की आँखों में डबडबा रहे थे। थोड़ी देर बाद वह उठा और बोला—
"मैं अब जाऊँगा। मैं यहाँ नहीं रह सकता।"

"क्या बात हुई, कुछ कहो तो?"

जोश में आकर चिदम्बरं ने कहा,—"नहीं, अब नहीं, अब मैं नहीं रुक सकता ?"

वह अपने कमरे की तरफ बढ़ा तो विभा ने कंधा पकड़कर फिर पूछा—"बताओ किसने तुम्हारा अपमान किया है ?"

"किसी ने नहीं।" उसने आँसू पोंछे।

"तो फिर।"

"मेरी आत्म-हत्या हुई है।"

"क्या मतलब।"

"सुनोगी", जोश में उसने कहा। "यह विज्ञानानन्द आदमी नहीं पिशाच है। ये सब साधु अवसरवादी और गुलाम हैं।" प्रस्ताव के सम्बन्ध में उसने सब बातें बताईं। भाषण के बीच में हाथ पकड़कर बिठा देने की बात भी उसने कही। उसके साथ बोला,

"ऐसी अवस्था में क्या मैं रह सकता हूँ, मेरे सारे ध्येय नष्ट हो गये। मेरी आत्मा को कुचल डालना चाहते हैं ये लोग। सब मेरे विचार वालों को इन लोगों ने तिरस्कृत किया। मुझे विश्वास है यदि मैं बोल पाता तो यह प्रस्ताव पास नहीं हो सकता था।"

वह चुप हो गया। फिर भी उसका शरीर काँप रहा था। आकाश की तरफ देखता हुआ बोला—"नपुंसकों ने राज-भक्ति का प्रस्ताव पास करा दिया। हत्यारे हैं, हत्यारे। कमजोर, बुजदिल, निकम्मे, भीरू। अच्छा विभा, मैं जाता हूँ। यह मेरी तुम्हारी अन्तिम भेंट है।" विभा ने रोकना चाहा। खुशामद की। समझाया किन्तु दुख से आहत चिदम्बरं ने कपड़े बाँध लिये। उसने खाना भी न खाया।

जैसे ही वह आगे बढ़ा वैसे ही एक थानेदार और दो सिपाहियों ने अहाते में प्रवेश किया। पुलिस को आता देख लोग इकट्ठे हो गये। और बाहर जाते चिदम्बरं को गिरफ्तार कर लिया। विभा तथा अन्य साधु लोग कुछ भी न समझ सके। ले चलते समय विज्ञानानन्द तथा अन्य साधु आये। विज्ञानानन्द ने एकान्त में ले जाकर थानेदार को समझाते हुए कुछ देना चाहा तो थानेदार ने कहा—

"इन्सपैक्टर जनरल का हुक्म है स्वामीजी। मैं इसे नहीं छोड़ सकता।"

"लेकिन इन्होंने कहा तो कुछ भी नहीं है।"

"क्या जाने वे तो वहीं थे। उन्हें ही मालूम होगा।"

चिदम्बरं के साथ कोई भी नहीं गया। विभा मूक खड़ी रही। उसका मन भारी हो गया। आज उसे लगा जैसे उसका भाई ही पकड़ा गया हो। वह रोती हुई एक कोने में खड़ी रही। विज्ञानानन्द ने देखा तो पास जाकर बोला,

"चिदम्बरं मूर्ख है। अनाप-शनाप बोला, अंग्रेजों को गाली दी, उन्हें कोसा तो कैसे बच सकता था। जाने दो, अपने आप भोगेगा। चलो, जगद्गुरु शंकराचार्य अभी आने वाले हैं। उनका सत्कार करना है। उनके साथ बड़े-बड़े मण्डलेश्वर तथा कई सेठ भी आ रहे हैं। बहुत तैयारी करनी है।"

विभा क्रोध और ग्लानि में भरी वैसी ही खड़ी रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। विज्ञानानन्द जल्दी में चला गया। विभा अपने कमरे में आ लेटी। उस का मन बहुत दुखी था। आज उसने चिदम्बरं को पहचाना। उसके प्रति ममता और श्रद्धा के अतिरेक से वह रोने लगी। उधर विश्राम भवन चहल-पहल से गूँज रहा था। चाँदी की डोली में दोनों तरफ चँवरों से सुशोभित शंकराचार्य अपने भक्तगणों सहित पधारे। उनके पीछे मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर, महन्त लोग आये। उन्हें हाल में बैठाया गया। विज्ञानानन्द ने यथाविधि सबकी पूजा की, उन्हें भेंट दी। मालाएँ पहनाईं। शंकराचार्य के चरणों में साष्टांग दण्डवत करके उसने चाँदी की थाली में एक अभिनन्दन पत्र और १०१ रु० भेंट किया। दर्शकों ने विज्ञानानन्द को 'महात्मा' कहकर उसकी प्रशंसा की। सब लोग थोड़ा जलपान करके चले गये। सब कुछ करते हुए भी विज्ञानानन्द का मन विभा में ही रखा था। लोगों के जाने पर खोजता वह विभा के कमरे में पहुँचा ही था कि पुलिस के एक आदमी ने आकर कहा—"थाने में सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बुला रहे हैं।"

"क्यों ?"

"मैं क्या जानूँ।"

विभा विज्ञानानन्द के साथ जाने को तैयार हुई तो वह बोला; "तुम्हारा जाना वहाँ ठीक नहीं है।"

"मैं अवश्य जाऊँगी ।"

"साहब पूछेगा, तुम्हारा वह कौन है तो क्या कहोगी ?"

"मेरा भाई ।"

कुछ चिन्तित स्वर में विज्ञानानन्द ने कहा—"यदि तुम मेरी इज्जत और चिदम्बरं का भला चाहती हो तो मत चलो ।" इतना कहकर वह पुलिस वाले के साथ चला गया । वह घबरा रहा था । न जाने क्या हो ।

विभा उसके जाने के पन्द्रह मिनट बाद पीछे गई और पूछती-पूछती एक थाने में जा पहुँची । विज्ञानानन्द का वहाँ कहीं पता नहीं था । जगह-जगह पुलिस के कैम्प पड़े थे । उसे यह भी नहीं मालूम कि चिदम्बरं को कहाँ ले गये होंगे । उसे शाम तक घूमते रहने पर भी वह स्थान न मिला । हार कर उदास, दुःखी विभा एक जगह बैठ गई । अब उसे यह भी नहीं मालूम कि वह कहाँ जाय ? कहाँ ठहरी है ? चारों ओर आदमी ही आदमी । बाजारों, सड़कों पर भीड़ के मारे कन्धा छिलता था । कभी वह भीड़ में फँस जाती तो आदमियों के रेले के पीछे फेंक दी जाती । जैसे कोई अदम्य शक्ति बिना चलने पर भी उसे उठाकर पीछे लिये जा रही हो । इसी बीच औरत होने के कारण उसकी और भी दुर्दशा हो गई । सारे अंग जैसे कुचल दिये गये हों । बड़ी कठिनाई से वह एक ओर जाकर खड़ी हो पाई । सड़क के किनारे-किनारे यात्रियों के एक गिरोह में एक ओर बैठ गई । रात हो गई थी । भीड़ अब भी उतनी ही थी ।

बिखरे बाल, थकी-माँदी, भूखी विभा बहुत देर तक बैठी रही । उसके कपड़े फट गये थे । पास ही किनारे पर गाँव के कुछ लोग लेटे थे । उन्होंने उसे देखा तो उनकी आँखों में नशा छा गया । साहस करके एक उसके पास आ बैठा । दूसरे ने उसकी जाँघ पर हाथ रख दिया । तीसरा उसे पैसे का लोभ दे रहा था । विभा ने देखा तो चिल्ला उठी । आस-पास के लोग पीछे हट गये । एक बूढ़ा वहीं पास सो रहा था । उठ बैठा । उसने आकर पूछा—"क्या बात है ?"

"ये लोग मुझे छेड़ रहे हैं । मैं रास्ता भूल गई हूँ ।"

बूढ़े ने क्रुद्ध नेत्रों से देखकर अपने साथियों को फटकारा ।

"चल, मैं तुझे छोड़ आऊँ । कहाँ जायगी बेटी ?"

"मुझे जगह नहीं मालूम।"

"मालिक का नाम तो होगा। थाने में खबर करने से मिल जायगा, स्वयंसेवकों के पास भी जाने से काम हो सकता है।"

विभा ने सुना तो चुप हो गई। बोली, सबेरे चली जाऊँगी। रात भर रहने दो।

"सवेरे, सवेरे तो पर्व है। इतनी भीड़ होगी कि तू चलेगी तो पिस जायगी। अच्छा जैसी तेरी इच्छा।" बूढ़े ने कपड़े फटे देखे तो अपनी चादर उसे ओढ़ने को दे दी। और पास ही लेट गया। सवेरे दो बजे से लोगों ने उठना शुरू कर दिया। पाँच बजे का स्नान था। पुलिस ने सारे रास्ते रोक दिये। बड़े-बड़े फाटकों में बन्द आदमी खड़े थे। साधुओं के अखाड़ों के अपने-अपने शंख, भेरी, तुरही, नरसिंहे बज रहे थे। पहले साधुओं को स्नान करना था। संन्यासियों, वैरागियों के दल के दल रास्ता रोके खड़े थे। पहले दशनामी संन्यासियों का स्नान था फिर वैरागियों और नागा लोगों का। विभा चुपचाप बैठी थी। असंख्यों आदमियों की भीड़ कोलाहल में उसका मन चिदम्बरं की ओर लगा था।

उधर विज्ञानानन्द को अंग्रेज़ इन्स्पेक्टर-जनरल ने काफी डाँटा-डपटा। चिदम्बरं का पिछला इतिहास पूछा। उसको हथकड़ी डालकर बन्द करने की धमकी दी। लेकिन उसे तो चिदम्बरं की बाबत कुछ भी मालूम नहीं था। वह जितना जानता था डर के मारे उसने सब बता दिया। हारकर साहब ने उसे छोड़ दिया। वह रुआँसा-सा लौटा तो विभा गायब थी। थोड़ी देर बैठने के बाद उसने अपने आदमियों को उसे ढूँढने भेजा। जब वे असफल लौटे तब वह खुद गया। बारह बजे तक रात में इधर-उधर घूमकर लौट आया। वह विभा के रूप पर तो लट्टू था ही उसके प्रबन्ध ने भी उस पर काफी प्रभाव डाला था। उसने सोच रखा था कुम्भ के बाद वह उससे बात करेगा। तब तक अपने वैभव-प्रभाव से ही उसने मुग्ध करने की सोच रखी थी। उसने जब तब अनुभव किया कि विभा के ऊपर उसके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ रहा है। यह एक मनोवैज्ञानिक ढंग की छूट थी जिसके द्वारा वह विभा को वश करना चाहता था। उसने धीरे-धीरे भण्डार की चाबी के साथ रुपये भी उसे सौंपे। एक तरह सारी

व्यवस्था का उसे मालिक बना दिया था। विभा भी कुछ दिनों के लिये अपने को भूल गई। तत्परता से काम करती जैसे उसी का काम हो। कभी-कभी उसे लगता जैसे वह विज्ञानानन्द की है। विज्ञानानन्द उसके कमरे में आकर उससे सलाह लेता। निरीह ढंग से बातचीत पूछता। यह सब विभा को अच्छा लगता। पहले नौकर उससे ईर्ष्या रखते थे, उसकी बात नहीं सुनते थे। एक बार विज्ञानानन्द ने सबके सामने विभा को आश्रम का मालिक, कर्त्ता-धर्ता बना दिया तो हारकर वे भी उसके अधीन हो गये। इधर साधु-सम्मेलन में व्यस्त रहने के कारण उसने पाया कि आश्रम के काम में कोई गड़बड़ी नहीं है। सब पहले से भी अच्छे ढंग से चल रहा है तो विज्ञानानन्द को बहुत सन्तोष हुआ।

अचानक उसे खयाल आया कि उसने विभा को रुपये भी सौंपे थे। वह उठा तो कमरे की आलमारी में उसे सब रुपये मिल गये। उसने सन्तोष की साँस ली। अब तक उसे चिदम्बरं से ईर्ष्या हो रही थी। उसे खुशी महसूस हुई कि चिद-म्बरं का पकड़ा जाना ठीक ही हुआ। वह सोच रहा था विभा चिदम्बरं को अब नहीं पा सकती। आज नहीं तो कल वह आवेगी ही।

यही सब वह पड़ा-पड़ा सोच रहा था। प्रातःकाल पर्व-स्नान के लिये भी वह नहीं गया। सारा नगर स्नान के बाद भाग रहा था। लाखों आदमी रेल से, पैदल भाग रहे थे।

वह इस खूबसूरत नारी को किसी तरह भी नहीं छोड़ना चाहता था। वह उठा और रामधन को बुलाकर कहा, "कहीं से भी विभा को जाकर ढूँढ़ लाओ। तुम्हें बीस रुपये इनाम दूँगा। जाओ।"

रामधन कुछ देर सोचता रहा फिर रुपये के लालच में चल दिया।

विभा सबेरा होने से पहले बूढ़े की दी हुई चादर ओढ़कर वहीं लेट गई। बूढ़ा अपने कुछ साथियों के साथ सबेरे स्नान करने चला गया। दो आदमी रह गये। वे बाद में उनके आने पर जाने वाले थे। वे दोनों वे ही थे जो रात को विभा को देखकर मस्त हो गये थे। इस समय लोग काफी आ जा रहे थे। उन्होंने उसे सोती हुई को जगाया। वह उठी।

"देखो, तुम हमारे साथ चलो। हम चार भाई हैं। चाहे जिसके साथ रहना,

समभी ।"

"वह आँखें फाड़े उन्हें देख रही थी ।"

"क्या समभी ?"

"वह बूढ़े कहाँ हैं ?"

"हमारे बाप हैं नहाने गये हैं । तुम हमारे साथ रहना । अभी गाँव को चलेंगे । उनके आने पर नहाने चलना फिर गाँव को ।"

विभा चुप थी ।

दोनों बीड़ी पीते धीरे-धीरे फुसफुसाते रहे । अब वे बड़े खुश थे । बाप के आने पर उन्होंने सब से पहले समाचार दिया यह हमारे साथ गाँव चलेगी । बूढ़े ने सुना तो बोला—

"बेटी, इनमें से जिसको चाहे तू उसके साथ रह। मैं औरों की और जगह शादी कर दूंगा ।" इसके साथ ही पोटली से निकालकर खाने बैठ गया । वे दोनों नहाने चले तो विभा भी चल दी । उसने भी स्नान किया ।

इसी समय गंगा नहाकर निकलते ही रामधन ने देखा तो पास जा खड़ा हुआ ।

"स्वामीजी बुला रहे हैं ?"

उन साथियों ने देखा तो निराश हो गये जैसे शिकार हाथ से निकला जा रहा हो ।

विभा ने उसको देखा तो मुसकराकर बोली, "मैं जा रही हूँ पता लग गया। और शादी कर लेना ।"

विज्ञानानन्द बड़े कमरे में टहल रहा था । उसने देखा तो बाहर आ गया ।

"नमो नारायण । भूल गईं थीं रास्ता ।" फिर अपने आप बोला ।

"चिदम्बरंजी तो क्या मिले होंगे ? नारायण नारायण ।"

विभा ने कोई उत्तर नहीं दिया और अपने कमरे में चली गई । विज्ञानानन्द भी पीछे-पीछे गया । थकावट और परेशानी से उसकी देह गरम हो रही थी। चेहरा उतरा देखकर विज्ञानानन्द देह छूकर बोला,

"अरे बुखार है । आराम करो ।" इसके साथ ही एक गोली लाकर पानी

के साथ देते हुए बोला—"लो खालो। तबियत ठीक हो जायगी।"

विभा के मना करने पर भी वह काफी रात तक उसके पास बैठा उसे सान्त्वना देता रहा।

धीरे-धीरे विभा को लगा जैसे दवा में कोई नशा है। वह पीती तो मस्ती से उसकी आँख झूमने लगती। उसे अच्छा भी लग रहा था, ग्लानि भी होती। न जाने क्या है? विज्ञानानन्द कमजोरी कहकर बार-बार दवा ले आता। विभा दिन भर नशे में रहती। रात को जब विज्ञानानन्द ने उसके कमरे में आ कर दवा की शीशी निकाली तो उसने पूछा—

"सच बताओ क्या है यह ?"

वह मुसकराकर बोला—"औषधि ।"

"नहीं, इसमें नशा है। सच बताओ।"

विभा ने विज्ञानानन्द का हाथ पकड़ लिया। विज्ञानानन्द ने दूसरे हाथ से प्याला उसके मुँह से लगा दिया। विभा सरूर भरी आँखों से विज्ञानानन्द को देखती हुई पी गई। एक प्याला उसने भी पिया।

लगता था जैसे विभा की अब तक की सात्विकता का बोध एक ही वेग में सारे बन्धनों को तोड़कर दुर्दान्त-प्रवाह से बह निकला। उसमें तर्क, चिन्तन, विवेक और स्त्रीजनोचित लज्जा तिनके की तरह निरवच्छिन्न बहे जा रहे हैं। नशे में डूबी वेगों से उत्तप्त कामना की सीमायें जैसे कोई अन्त नहीं जानतीं। अब तक के सम्पूर्ण जीवन की वासनायें भीषण रूप धरकर उसकी चेतना में प्रचण्ड वेग से जाग उठीं। तूफानी जीवन की नदी सारे तटों को गिराकर, तोड़कर, विध्वंस करके वहाँ जा पहुँची जिस जगह का आभास उसकी कल्पना से बाहर था। उसे लगा जैसे इस जीवन का रूप उसने कभी नहीं देखा था। इतना रस, इतना ममत्व, उसमें कभी नहीं जागा था। अपने प्रति, अपने सौन्दर्य के प्रति इतना लगाव उसे कभी नहीं हुआ था। अब उसे वह मिल रहा था जिस की उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। नशे के उतार का तो प्रश्न ही नहीं था, चढ़ाव ही चढ़ाव था। रसोद्रेक में वह अपने को भूल गई। उस समर्पण में तृप्ति पाने पर भी उसका मन प्यासा रहता, और पाने को दौड़ता। विज्ञाना-

नन्द ने भी जीवन में छुट-पुट भौतिक तृप्ति के आभास पाये थे अब उसके सामने सौन्दर्य की विशाल नदी बह रही थी। निरन्तर नहाने-डूबने पर भी उसे लगता जैसे उसे अभी कुछ भी नहीं मिला। अभी और है, अनन्त है, अगम्य है। अब तक अपने को, अपने व्यक्तित्व को स्थिर रखकर वह रसों में डूबा था। विभा के आत्मसमर्पण से उसे एक और बल दिया। उसने जाना कि व्यक्तित्व की तल्लीनता उसमें घुला-मिला देना भी है। धन, मद, अहंकार, शक्ति सब को साथ लेकर वह विभा के सौन्दर्य सागर में डूब गया। एक दिन उसने साधु सम्मेलन में कमाये और बचे हुए दस हज़ार के करीब रुपये लाकर उसके पैरों पर रख दिये। वह बोला,

"मैं तुमसे अपने को अलग नहीं मानता प्रिये, लो, यही मेरा सब कुछ है।" विभा ने रसीली आँखों से देखकर कहा—"मुझे तुम्हारे सिवा और कुछ नहीं चाहिए। मेरा डगमगाता हाथ सँभाले रहो यही मैं चाहती हूँ। ले जाओ इसे।"

"जीवन भर।" कहकर विज्ञानानन्द ने उसका हाथ चूम लिया। थोड़े दिनों में ही उन्हें लगा जैसे यह सब पुराना हो गया है। और वेश, और वातावरण और दिशा तृप्ति के लिये चाहिए। वे मंसूरी चले गये। विज्ञानानन्द ने गेरुए कपड़े उतारकर गृहस्थ वेश रख लिया। वहाँ यह जानकर कि कुछ जाने-पहचाने लोगों को उसे देखकर सन्देह हो रहा है वह बम्बई चला गया। वे दोनों एक होटल में ठहरे। शराब, नाच, क्लबों में उन्होंने अपने को तृप्त करने की कोशिश की। इसी में बहुत सा रुपया बरबाद हो गया। वे दोनों दिन भर होटल में रहते रात को बाहर निकलते ताकि कोई देख न ले। क्योंकि उसके कई भक्त थे। फिर हैदराबाद, बैंगलौर, मैसूर गये।

एक दिन उसने विभा से कहा,

"अब रुपया समाप्त हो रहा है?"

उसने नशे में पलँग पर लेटे ज़रा आँख खोलकर उत्तर दिया।

"हो जाने दो।"

विज्ञानानन्द कमरे में घूमता रहा फिर बोला—

"ऐसे नहीं चलेगा। विभा, संकट हमारे सिर पर है।"

"संकट।" विभा ने जैसे घबराकर आँख खोली, बोली—

"कैसा संकट ?"

"हमारे पास अब पैसा नहीं है। होटल छोड़ना होगा।"

"फिर।"

"हमें पहला रूप धरना होगा।"

"क्या ?"

"गेरुए कपड़े। तुम भी पुरुष के रूप में साथ रहो। चेला बन जाओ।"

"चेला ?"

"हाँ। यहाँ से अहमदाबाद, सौराष्ट्र में घूमेंगे।"

विभा का नशा उतर रहा था वह उठकर बैठ गई। उसने समझा था अब तक के इस सौन्दर्य का कभी अन्त नहीं होगा। जैसे वह दूध की नदी में किलोलें करती किनारे पर फेंक दी गई हो। उसके हृदय की मुसकान को अँधेरे ने डरा दिया हो। आकण्ठ तृप्ति के उत्तरंग मद को अथक शक्ति से पान करते हुए भी उसकी प्यास बुझना नहीं जानती थी। वह विज्ञानानन्द को देखती रह गई। पैसा, क्या पैसा भी कोई दीवार है हमारे बीच में ? विज्ञानानन्द होटल का बिल चुकाकर विभा के साथ स्टेशन पर आ गया। दोनों ने गाड़ी में अपना रूप बदला। विभा का नाम हुआ ज्ञानानन्द। गेरुए रंग की पगड़ी, गले में रुद्राक्ष की माला। सिर पर त्रिपुण्ड। उसे इस रूप में देखकर विज्ञानानन्द बोला—

"अब ठीक है। याद रखो स्त्रीलिंग में कभी न बोलोगी।"

वे लोग अहमदाबाद स्टेशन पर उतरकर गाड़ी में अपने एक भक्त के यहाँ गये। भक्त ने देखा तो साष्टांग प्रणाम करके दोनों को अपने बँगले का एक भाग दे दिया। भक्तों का ताँता लग गया। फल, मिठाई, वस्त्र, रुपये आने लगे। शाम को विज्ञानानन्द की कथा हुई। ईश्वर और धर्म का विवेचन हुआ। मनुष्य के जीवन की अस्थिरता, नश्वरता, भौतिक सुखों द्वारा मनुष्य के ह्रास की बातें कही गईं। गीता के ज्ञान की महत्ता बताई गई। चेला शान्त बैठा देख रहा था कि भक्त लोग कितनी तन्मयता, भक्ति से सुन रहे हैं। वह स्वयं भीतर पा रहा था जैसे यह उसके लिए कितना बनावटी है कितना कृत्रिम। उसे एक धक्का-सा लग रहा था।

हँसी आ रही थी। इतने दिनों का भूला उसका पिछला जीवन उसे याद आ गया। उसने चाहा पिछले रूप को भुला दे। बस, यही नया जीवन है। पीछे का सब मर गया। कोई भी कुछ नहीं है। कथा के बाद लोगों के आग्रह पर उसने एक भजन गाया तो आवाज में जनानापन सुनकर लोग चौंके लेकिन भक्ति के नशे में संदेह बह गया।

उसी समय एक मुँहफट भक्त ने कह ही तो दिया।

"स्वामीजी, यह क्या चेली है?"

"नहीं, इनकी आवाज ही ऐसी है। नारायण।"

"सूरत-शक्ल से स्त्री लगती है।"

"आगम तपस्वी है।"

"आगम तपस्वी क्या?" उसने फिर पूछा।

"शुकदेव के मत के। शुकदेवजी महाराज के न मूँछ थी न दाढ़ी। वे अर्द्ध नारीश्वर थे।"

"अर्द्धनारीश्वर तो शिवजी थे।"

विज्ञानानन्द ने उत्तर दिया, "अर्द्धनारीश्वर शुकदेव भी थे।" बात समाप्त हो गई किन्तु लोगों को सन्तोष नहीं हुआ।

कथा के बाद भक्तों की श्रद्धा का पुण्य लूटकर दोनों अपने स्थान पर आये तो विज्ञानानन्द एकान्त पाकर बोला।

"यह ठीक नहीं हुआ। लोग तुम्हारी आवाज सुनकर संदेह कर रहे थे।"

"मुझे भी लग रहा था। फिर?"

"यही सोच रहा हूँ।"

बहुत देर तक सोचने के बाद विभा से ऊबा हुआ विज्ञानानन्द बोला,

"क्या यह ठीक न होगा कि तुम हरिद्वार चली जाओ। मैं एक दो-मास में लौट आऊँगा।"

रात को विभा ने बतलाया, "तीन मास हो चुके हैं। कोई प्रबन्ध करना होगा।"

"तुम सवेरे की गाड़ी से चली जाओ। मैं जल्दी ही लौटूंगा।"

चतुर विज्ञानानन्द ने बँगले के चपरासी की सहायता से गाड़ी मँगाकर विभा

को हरिद्वार रवाना कर दिया। विभा के प्रति अब उसके मन में कोई लगाव न था। खाकर फेंकी पत्तल की तरह वह अपने वास्तविक रूप में उत्फुल्ल हो उठा। स्टेशन भी नहीं गया।

तीसरे दर्जे की गाड़ी में बैठकर विभा को लग रहा था कि जैसे दुनिया ही बदल गई। जैसे उसे किसी ने ऊपर से उठाकर जमीन पर पटक दिया। उसे लगा जैसे चलते समय विज्ञानानन्द भी बदल गया है। रात की खुमारी के बाद सबेरे के प्रकाश की तरह सब साफ था। "हो सकता है यह जल्दी न लौटे तब वह क्या करेगी। कैसे करेगी।" इसी चिन्ता में वह गाड़ी में बैठी जा रही थी। अब उसमें न वैसा उत्साह था, न खुशी। वह हरिद्वार स्टेशन पर उतरी तो उसका मन भारी-भारी हो उठा। बेमन से ताँगा करके वह आश्रम में गई। वहाँ एक माली था। नौकर चले गये थे। सब कमरे धूल से अटे, व्यवस्थाहीन; जैसे-तैसे सफाई कराकर वह कमरे में आई। भूखी तो थी ही उसने खाना बनाया खा-पीकर लेट रही।

माली बूढ़ा आदमी था, पुराना नौकर। उसने विभा को देखा था विज्ञानानन्द का रूप भी देखा था। वह दोनों की अय्याशी भी जानता था। इस बार अकेली विभा को आते देखा तो पूछा—

"स्वामीजी कहाँ हैं?"

"स्वामीजी काम से पीछे रह गये हैं।"

"कब आवेंगे?"

"जल्दी ही।"

"मेरी चार महीने की तनखा है। मुझे एक और जगह नौकरी मिल रही है। मेरी तनखा तो दो।"

"वे ही देंगे, आकर।"

"लिखो उन्हें, जल्दी आवें। नहीं तो मैं छोड़कर चला जाऊँगा।"

"लिखूँगी। गायें क्या हुईं?"

"रामधन बेच कर भाग गया। उसे भी तो तनखा नहीं मिली थी।"

विभा ने विज्ञानानन्द को पत्र लिखा। अपनी और आश्रम की स्थिति बताई। खाना बनाने के बाद दिन भर पलँग पर पड़ी रहती। गरीब के घर में

विपत्ति की तरह उसका पेट बढ़ रह था। शरीर से अस्वस्थ, चिन्ता से दुखी। न वह कहीं बाहर जाती न किसी से मिलती।

एक दिन शाम को माली एक पेड़ के नीचे बैठा हुक्का पी रहा था। वह घूमती उधर चली गई तो उसे देखकर माली बोला,

"अब दुखी होने से क्या होता है बीबी? उस बखत पै नहीं सोचा। तब तो······।"

"क्या बकता है माली?"

माली चुप हो गया। बोला,

"आस-पास सब जगह खबर फैल गई है बीबी।"

"क्या?"

"तू तो सब जानें ही है मेरा मुँह मत खुलवा। भलाई इसी में है स्वामीजी के आने से पहले निकल जा। नहीं तो वह मार के निकाल देगा।"

"कौन?"

"स्वामी।"

"क्यों?"

"तू अकेली ही तो नहीं आई। हम तो कई देख चुके।"

विभा जैसे आसमान से जमीन पर उतर आई। वह उसी के पास बैठ गई। उदास होकर बोली,

"क्या देख चुके माली?"

"दो-तीन तो मैं देख चुका हूँ बाबाजी इधर-उधर से पकड़ लावे हैं और तेरे जैसा बनाकर छोड़ दे है। एक रंडी बनी बैठी है। एक मर गई शरम के मारे। अभी एक पिछले दिनों आई थी। बड़ी दुखी थी बिचारी। तो फिर मैंने उसे एक के घर रखवा दिया। मिली तो नहीं—ठीक ही होगी।"

वह हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। विभा बैठी रही।

शाम हो रही थी। माली उठने लगा तो विभा ने पूछा,

"कहाँ जाऊँ?"

उसने विरक्त होकर कहा,

"अब मैं क्या जानूँ। बाबाजियों की माया है। भगवान न करे कोई ऐसा दिन देखे।"

"उसका भी कोई जवाब नहीं आया।"

"वह चिट्ठी नहीं लिखता वैसे ही आ धमकता है। मेरी तनख्वा भी मिलेगी। फिर नौकर आवेगा। गाय खरीदी जायगी। रौनक होगी।" माली उठकर चला गया। उसे लगा क्या सचमुच यह ऐसा है? उसे बड़ा धोखा हुआ। वह अँधेरे में उदास बैठी रही। कभी-कभी मानसिक उद्वेलन में उसे लगता, यह उसने क्या किया, तो क्या सचमुच वह एक दिन उसे निकाल देगा? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। उसने उसे सभी कुछ तो दिया है। सारा विश्वास, जीवन की सम्पूर्ण चेतना। सब सुख। रोम-रोम का रस, तृप्ति, आनन्द। सभी कुछ तो। वह उठी और टहलने लगी। ग्लानि से उसकी आत्मा कभी दब-दब उठती। वह पलँग पर जाकर लेट गई। नींद उसे नहीं आ रही थी। वह आँखें फाड़े अँधेरे में पड़ी रही। बाहर-भीतर सब ओर सुनसान। जैसे उसकी साँसों में चेतनता नहीं रही हो, जैसे भीतर का दुख अँधेरा बनकर उसे डस रहा हो। न जाने वह कब तक पड़ी रही। वह उठी लालटेन जलाई और एक पत्र लिखने बैठ गई।

उसने क्रोध में भरकर पत्र लिखना शुरू किया किन्तु आगे उसे कुछ न सूझा। सोचा, ऐसा पत्र लिखकर वह अपने हाथों अपनी खाई खोद रही है। वह पत्र उसने फाड़ डाला। फिर सोचते-सोचते उसने पिछली बातों को लेकर प्रेम भरा पत्र लिखा। उसमें उसे बनावट की बू आई। वह भी उसे नहीं जँचा, फाड़कर फेंक दिया। दो-तीन घंटे के बाद भी कोई पत्र नहीं लिखा गया। हारकर लेट गई।

दिन पर दिन बीत रहे थे। वह प्रतिदिन पहले पत्र की प्रतीक्षा करती। विज्ञानानन्द का फिर भी कोई उत्तर नहीं आया। अब उसे माली की बात स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही थी। सामान लेने गये माली ने आकर कहा,

"दुकानदार का काफी रुपया हो गया है। आगे उसने आटा, दाल, घी देना बन्द कर दिया है। स्वामी को लिखो रुपया भेजें मैं भी कहाँ तक रहूँगा।"

चिन्ता दुख से उसके प्राण गल रहे थे। माली से न देखा गया तो उसने सतनजा आटा दिया। वह नमक से खाने लगी। आँसू गिरते जाते थे वह मानों उसी में नमक मिलाकर खाती जाती थी। अचानक दूसरे दिन माली चिल्लाता हुआ आकर बोला,

'स्वामी की चिट्ठी दुकानदार के मार्फत मेरे नाम आई है। उसने उसे रुपया भी भेजा है।"

विभा पलँग पर पड़ी अपने भीतर घुट रही थी। उसने माली की आवाज सुनी तो पड़े-पड़े पूछा, "क्या लिखा है ?"

माली ने पत्र उसके सामने फेंक दिया।

उसमें लिखा था। "मेरे कुछ भक्त सेठ लोग हरिद्वार आ रहे हैं। आश्रम में ही ठहरेंगे। विभा से कहो कि वह आश्रम छोड़ दे।" फिर अन्त में लिखा। "मुझे इस बात का दुख है कि मैं उसे निकाल रहा हूँ अगर वह चाहे तो तुम (माली) उसे अपनी कोठरी में जगह दे देना। वह वहीं रहेगी। पर ध्यान रखना वह आश्रम में कहीं भी दिखाई न दे। उसे अपने बेटे की बहू कहकर प्रसिद्ध करना। वैसे भी तुम बूढ़े हो। तुम्हें एक रोटी बनाने वाली की जरूरत है ही। उसके कपड़े अपनी हैसियत के अनुसार पहनाना। मैं जल्दी आऊँगा।"

विज्ञानानन्द।

उसने पत्र पढ़कर क्रोध से जमीन पर फेंक दिया। माली ने पत्र उठाकर पूछा—"कब जा रही है?" गुस्से में विभा ने गला फाड़कर रोते हुए कहा—"कहाँ जाऊँ ? उसका अंगार तो मेरा पेट जला रहा है। तुम्हीं बताओ। क्या करूँ।"

माली चुप खड़ा रहा। वह फिर बोली,—"साधु के वेश में यह राक्षस मुझे लील गया।"

"क्या तेरी गलती नहीं है ?" माली ने कहा।

"मेरी ही गलती है माली। मेरी ही गलती है दादा। हाय, मैं क्या करूँ। कहीं मुँह दिखाने लायक भी तो नहीं हूँ।" वह फफक-फफककर रोने लगी। बहुत देर तक रोती रही। अब वह अपने कर्मों की आग में जल रही थी।

बूढ़े से न रहा गया तो एक दिन उदासी भरे स्वर में बोला, "मैं भी तुझे कैसे रखूंगा। मेरी भी तो जात-बिरादरी है। लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे। न बाबा, मैं भी तो नहीं रख सकता। तुझे तो जाना ही पड़ेगा। ऐसे में किसी के घर भी तो तू नहीं बैठ सकती। कौन रखेगा तुझे।" वह चुप होकर बाहर चला गया और सामने की घास छीलने लगा। फिर भी विभा के दुख के मारे उसकी खुरपी ठीक काम नहीं कर रही थी। वह बैठ गया। उसने पास पड़ी चिलम उठाई और अंटी की थैली से तमाखू भरकर पास ही अलाव के पास चला गया। वह बैठा तमाखू पीता रहा। एक बार विभा के जी में आया वह चिट्ठी रख ले और आने वाले भक्तों को उसे दिखावे। उसकी दुष्टता, बेईमानी, चरित्रहीनता का सारे हरिद्वार में डंका पीटे। वह क्रोध-प्रतिहिंसा से काँपने लगी। उसे लगा यदि विज्ञानानन्द उसके सामने होता तो वह उसकी खोपड़ी फोड़ देती। उसका मन विकराल राक्षस का रूप धारण कर रहा था। बहुत देर तक वह क्रोध के मारे पागल बनी रही। उसका मन उबल रहा था। फिर उसे खयाल आया—इससे विज्ञानानन्द का क्या बिगड़ेगा। कौन उसकी बात का विश्वास करेगा। सब उसी को थूकेंगे। उसी को बुरा कहेंगे। उसे दुष्टा, वेश्या, भ्रष्टा, चरित्रहीन कहकर पुकारेंगे। वह कहीं की भी नहीं रहेगी। वह चुप खड़ी अपने में भूली सोचती रही। न जाने कब तक खड़ी रही। इसी समय माली आकर बोला,—"बेटी, चिन्ता न कर तू मेरी कोठरी में रह। मैं किसी की परवा नहीं करता। तू मेरी बेटी के समान है। मैं भी क्या करूँ, नौकरी के पीछे इस साले बाबा के घर पड़ा हूँ। अभी तू उसी कोठरी में रह। जब कोई आवेगा तो मेरी कोठरी में चली चलियो। भला।"

उसने एक चिलम का कश लिया और घास छीलने बैठ गया। विभा अब भी खड़ी थी जैसे जड़ हो गई हो। माली की कुछ ही बातें उसकी समझ में आईं। अचानक बोली—

"बाबा, चिट्ठी मुझे दे दो।"

"चिट्ठी तू क्या करेगी?"

"ऐसे ही, लाओ।"

पहले माली के मन में आया चिट्ठी दे दे। पर बूढ़े के बहम ने संदेह का एक रूप धारण किया। वह बोला—"ना बेटी, मैं नहीं देने का। स्वामी की चिट्ठी है आकर पूछा तो मैं क्या कहूँगा। मैं तुझसे कह तो रिया हूँ कि मेरी कोठरी में रह। तू भी खा, मैं भी खाऊँगा। बख्त पै अपनी बहन को बुला लूँगा। सब कर जायगी। बच्चे को मैं ही रख लूँगा। बाबा का ही तो है। मेरे कोई है भी नहीं।" उसने भीतर ही भीतर एक खुशी का अनुभव किया। जैसे सचमुच उसकी पत्नी के, जो मर गई है, एक बच्चा भी हो गया है। वह बड़ा हो गया है। हैजे में मर भी गया है। विभा उसकी बहू है। यह उसी का बच्चा है। वह घास खोदता हुआ यही स्वप्न देख रहा था। अब उसकी खुरपी तेजी से घास छील रही थी। उसके अंग-अंग में स्फूर्ति भर गई जैसे गरीब को रास्ते में पड़ा मोती मिल गया हो। उसने एक बार विभा की ओर देखा। उसे लगा वह उसी की है, उसी के लड़के की बहू है। उसने आनन-फानन में लान की सारी घास छील डाली। उसके बाद विलायती मेंहदी के पेड़ों को हमवार करने लगा। देखते-देखते बाग की शक्ल निकल आई। उसने अब पेड़ों को पानी दिया। इधर-उधर फैली घास साफ की। सामने पेड़ से अमरूद तोड़कर विभा के पास पहुँचा।

"ले, खाले बड़े मीठे हैं।"

"नहीं बाबा, मैं नहीं खाती। नुकसान करेगा।"

"अरे, तो मैं दवा ला दूंगा। ले खा।"

विभा ने एक अमरूद खा लिया। मीठा तो था ही उसे अच्छा लगा। उसने चाहा एक और खा ले।

"नहीं नहीं, और नहीं, मेरी बेटी को और नहीं पचेगा। मैं आज शाम को······।"

"क्या।"

विभा ने पाया जैसे बूढ़ा उसे देखकर काफी खुश हो रहा है। वह जान न पाई ऐसा क्यों है ?

वह अब बाग में टहल रही थी। बूढ़ा न जाने कहाँ चला गया।

धूप में गरमी आ गई थी फिर भी वह बुरी नहीं लग रही थी। विभा चटाई

बिछाकर लान में लेट गई।

थोड़ी देर में ही उसे पेट में दर्द मालूम हुआ। वह उठकर बैठ गई। दर्द अब बढ़ रहा था। होते-होते वह बेचैन होने लगी। इसी समय विभा ने देखा बूढ़ा एक अधेड़ औरत के साथ आ रहा है। पास आकर बोला—"यही है मेरे बेटे की बहू। अरे क्या दर्द हो रहा है? हाय, मेरी बिटिया। देख तो दाई, क्या बात है?"

"मैं हटे जाता हूँ। चाहे तो तू इसे भीतर ले जा।"

विभा दाई के साथ भीतर चली गई। थोड़ी देर में आकर बोली, "अमरूद दिया है माली। मैं नुसखा बताती हूँ लाके पिला दे।"

"अच्छा, अभी ले। तू कभी-कभी आ के देख जइयो भला। तुझे पैसे दूँगा। चिन्ता मत करियो।"

"तेरे लड़के की बहू है?"

बूढ़े ने खुशी में सिर हिला दिया।

दाई बोली, "बड़ी मलूक है। लड़का कहाँ है?"

माली खुश होकर बोला, "बा···, बाहर। नौकरी पे।"

"चल खुश रहे। बड़ी भली है बिचारी।" बहू से बोली, "अनाप-शनाप मत खइयो भला। रात को ईसबगोल के साथ दूध दिया कर इसे टट्टी ठीक आवेगी। मैं देख जाया करूँगी। बाबाजी कहाँ हैं?"

"बाहर।"

दाई चली गई।

विभा के उदास मुख पर हँसी आ गई। बूढ़े की काल्पनिक खुशी के भोलेपन पर वह मुग्ध हो गई। थोड़ी देर में बूढ़ा दवा लेकर लौटा तो बोला, "अकल सठिया गई थी मेरी उस बखत पै, नहीं तो भला ये तेरे अमरूद खाने के दिन हैं। आज खिचड़ी बनेगी। रात को दूध।"

एक अधिकार का मद बूढ़े माली के मुख पर चमक गया। अब वह रह-रह कर विभा के हाल-चाल पूछता। शाम को पास के एक आदमी से जाकर विभा के लिये दूध बाँध आया। वह उसके भोलेपन पर भीतर ही भीतर फूल उठी।

फिर भी एक शूल उसके भीतर चुभ रहा था। जिसकी नोंक कभी मीठी बनकर चुभती थी। विज्ञानानन्द के सम्बन्ध में मिली औरतों के सम्बन्ध की जानकारी से उसका मन तिलमिला उठता। स्त्रीजनोचित एक बेबसी, बेचैनी से उसे उद्विग्न करती। उसके दिन बीतने लगे। बूढ़ा माली खुश था।

अचानक एक दिन सुबह की गाड़ी से अपने भक्त परिवार के साथ विज्ञानानन्द आ गया। तीन ताँगों में सब लोग विश्राम भवन के बाहर उतरे। दो स्त्रियाँ, दो लड़के, एक जवान लड़की और दो आदमी, एक नौकर। विज्ञानानन्द ने माली को पुकारा। नौकर की सहायता से सामान कमरे में रखवाया। उसने आने से पहले एक तार भी दे दिया था। उसमें विभा को हटा देने की बात थी।

"सब कमरे खाली हैं माली ?"

"एक कमरे में बीबी है अखीर के।"

"सब खाली कर दो। क्यों नहीं अब तक किया, मैंने लिख भी दिया था ?" कड़ककर उसने आज्ञा के रूप में कहा। हाल और उसके साथ के कमरे में उन लोगों को ठहराया। चाय और नित्य-कर्म से निबटकर उन लोगों ने आश्रम देखा और बीड़ी पीते घूमने लगे।

"अच्छी जगह है, बाग है, कूआँ है, कमरे भी अच्छे हैं।" एक ने कहा।

"कितना पैसा लगा स्वामीजी ?"

"ठीक तो याद नहीं है, कई बार में बना है। होगा पच्चीस हजार। एक संकीर्तन भवन बनाने की सोच रहा हूँ।"

"हूँ, ठीक है।"

धूप निकल रही थी। स्वामी ने कहा, "स्नान कर आइये।"

"हाँ, हाँ।" जैसे एक दम याद आ गया।

तैयारी करते आध घण्टा बीत गया। घूमती हुई एक स्त्री ने पूछा, "एक बाई भी है।"

"हाँ। वह माली के लड़के की बहू है। बीमार है विचारी।"

"क्या बीमार है ?"

"बीमार नहीं है, बच्चा होने वाला है।" दूसरी स्त्री ने उसी समय स्वामी

के सामने कह डाला।

विरक्त भाव से स्वामी बोला, "मुझे नहीं मालूम। माली ने प्रार्थना की थी मैंने कहा 'अच्छा।' खाली ही तो पड़ा रहता है मकान। नारायण, किसी के काम आवे तो अच्छा ही है।"

"हाँ और क्या, चलो जल्दी करो, नहा आवें।"

सब चले गये तो वह विभा के कमरे में गया। एक अतिरिक्त कमजोरी के भय से उसका मन भर रहा था। क्रोध भी जैसे लहरा रहा हो।

"कैसा जी है विभा ?"

विभा ने आश्रम में घुसते और कमरे के लिये माली को झिड़की देते सुना था। वह चुप रही। सोच रही थी जैसे कुछ अनहोना होने वाला है। अपनी कमजोरी और भय के स्तरों से जैसे लड़ रही हो। क्या करना होगा समर्पण या संघर्ष। मन के भीतर एक द्वन्द्व चल रहा था। शारीरिक कमजोरी दब जाती है यदि मन ताकतवर हो तो। इतने दिनों का संचित आक्रोश जैसे मूर्त्त-मान हो रहा था।

वह मुसकराया, "नाराज हो ?"

विभा ने देखा मुसकराट बनावटी है। इसके भीतर विष की चमक है। उसने नीरस आँखों से देखा जैसे बाहर से नहीं भीतर से उसे जानती हो।

"नाराज मैं किससे होती। मेरा अपना ही मुझ से नाराज है।"

"अच्छा हो तुम माली के कमरे में कुछ दिनों के लिये चली जाओ। वे भक्त लोग दो-तीन दिन रहकर ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला जायँगे। फिर कुछ दिन रहकर मंसूरी। तुम तो सब जानती ही हो।"

"मैं, क्यों ?"

वह पास आ बैठा। बोला कुछ भी नहीं। थोड़ी देर बाद उसने विभा के कन्धे पर हाथ रखा तो विभा ने झटक दिया।

"हम तो वही हैं विभा।"

"मैं कहीं नहीं जाऊँगी। मुझे पड़ा रहने दो। जाओ।"

वह उठकर कमरे की छत ताकता रहा। जैसे सोच रहा हो।

"तुम से हमेशा के लिये जाने को तो नहीं कह रहा। फिर तुम्हारा ही है सब। हम लोग इस बार फिर बाहर चलेंगे। थोड़े दिनों की बात है साधु के आश्रम में गर्भिणी स्त्री का क्या अर्थ लगाया जा सकता है यह तुम जानती हो।"

"तुम साधु हो विज्ञानानन्द ?" उसके मन में आक्रोश था।

उसने मन के भाव को दबाकर कहा—"भीतर से नहीं तो बाहर से तो हूँ। परिस्थिति विकट बनाने की अपेक्षा उसे सरल बनाने की आवश्यकता है। मुझे खेद है मैं तुम्हारे किसी पत्र का उत्तर न दे सका। काम ही ऐसा लगा रहा।"

"सुनो विज्ञानानन्द, मैं तुम्हें जान गई हूँ। अब सफाई मत दो। मुझे बहुत बड़ा भ्रम हुआ।"

उसे एक बार गुस्सा आया पर पीकर बोला, "नहीं, तुमने मुझे गलत समझा है।" वह उठा और बाहर माली के पास जाकर उससे बातें करने लगा। वह चाहता था ऐसी परिस्थिति न आवे।

फिर लौटा।

"मैंने निश्चय किया है एक नर्स तुम्हें सुबह-शाम देख जाया करेगी। पर एक शर्त है……।"

उसने आँखों से प्रश्न किया।

"यही कि तुम माली के कमरे में चली जाओ।"

"मैं नहीं जाउँगी।" उसने दृढ़ता के लिये पलँग का पाया पकड़ लिया।

"तुम्हें जाना होगा। मैं भेजता हूँ।" कहकर वह क्रोध से काँपने लगा।

फिर बोला, "तो तुम चाहती हो, मेरा अपमान हो, अपकीर्त्ति हो, मैं कहीं का न रहूँ ?" वह चिल्ला उठा।

"यही तुम्हारा वास्तविक रूप है। जो अब देख रही हूँ।"

"मेरा वास्तविक रूप तुमने देखा नहीं है। मैं बहुत खराब आदमी हूँ।"

जिन्होंने देखा है उनमें से कुछ अभी यहीं हैं विज्ञानानन्द!"

"इतना ?"

"इससे भी अधिक।" विभा को जैसे अपने प्राणों का मोह नहीं रहा।

"माली ! माली ! इस औरत को बाहर निकाल दो ।"

माली आ गया। वह चुप खड़ा था।

"क्या देखते हो ?"

"बीबी चल।" वह आगे बढ़ा।

जब वह नहीं हिली बैठी ही रही तब बोला—"ठहरो माली, तुम जाओ।"

"अच्छा रहो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। सुना तुमने।"

विभा ने आँखें ऊपर उठाकर उत्तर के लिये देखा।

"वचन दो कि इन यात्रियों में से किसी से कुछ न बोलोगी। माली की बहू हो, ऐसा कहोगी।"

"मैं कोई वचन नहीं दे सकती। मैं कुछ नहीं जानती।"

वह बिल का द्वार बन्द होने पर साँप की तरह क्रोध से फनफनाने लगा। थोड़ी देर के लिए अपने को भूल गया। फिर भी समझ नहीं पा रहा था, क्या करे। वह चाहता था कि इस समय चतुराई से काम ले, कोई हंगामा न खड़ा हो जाय। समय बीत रहा था। वे लोग आने वाले थे। इससे पूर्व ही कुछ फैसला कर लेना चाहता था। वह एक बार फिर बाहर गया। घड़ी में देखा, वे लोग अब आ ही रहे होंगे। आकर एक बार फिर विभा के सामने खड़ा हो गया। विभा समझ रही थी यह बेचैनी यात्रियों की दृष्टि में अपनी रक्षा के लिए है। वह और भी दृढ़ हो रही थी। इसलिए नहीं कि उसे इस कमरे से कोई मोह था। इससे पूर्व उसने सोच रखा था समय आने पर वह माली की झोंपड़ी में चली जायगी। किन्तु विज्ञानानन्द की माली को दी गई झिड़की सुनकर उसका मन विद्रोह कर बैठा। अब वह विज्ञानानन्द के बनावटी किन्तु बेचैन मन से खेलने लगी। उसने सोचा यही उसका मर्म स्थल है। विज्ञानानन्द जब लौटा तो वह उसे देखने लगी। कुछ देर तक देखने के बाद विज्ञानानन्द ने जमीन पर घुटने टेककर उसके पैर छुए। "मेरी लज्जा तेरे हाथ है विभा। मैं कहीं का नहीं रहूँगा। मेरा मान, प्रतिष्ठा, शील सब बह जायेंगे।" वह दृष्टि जमाकर विभा को देखने लगा। स्त्री तो थी ही, विभा बोली, "अच्छा, तो क्या सदा के लिये

तुम मेरी रक्षा करोगे ?"

"हाँ, सदा मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। वचन देता हूँ। मेरी भूल थी। माफ करो।"

यात्री लोग नहाकर आ गये थे। वह विभा की पीठ थपथपाकर चला गया। यात्रियों के नौकर ने भोजन बनाया। सबने खाया। लेटे। शाम को फिर घूमने निकल गये। काफी रात गये लौटे।

विज्ञानानन्द अब निश्चित था। विभा का मन रह-रह कर एक अज्ञात भय से भीत हो जाता। वह जानती थी कि यात्रियों के जाने पर विज्ञाननानन्द का वास्तविक रूप देखने को मिलेगा। कभी सोचती, नहीं ऐसा नहीं है अब विज्ञानानन्द का मन ठीक है।

शाम को नर्स आकर देख गई। माली अब भी कभी-कभी आकर खोज-खबर लेता रहता। वह चाहता था विभा उसकी झोंपड़ी में चली जाय। उसने एक बार कहा भी, "क्यों नाहक रार करे है ? यह स्वामी बड़ा दुष्ट है, मैं जानूँ हूँ विभा।"

विभा का मन हर तरह से जैसे अपने को तैयार कर रहा हो।

यात्री लोग ऋषिकेश गये तो दो दिन बाद घूमकर लौटे। स्वामी भी उनके साथ गया। विभा सुबह-शाम नर्स की आज्ञानुसार बाग में टहलती।

तीसरे दिन शाम को वह बाग में ही थी कि यात्रियों का दल आ गया। एक लड़के ने विभा को दूर से देखा,

"यह औरत ! स्वामीजी के यहाँ। कौन है ?"

लड़की जवान थी। उसने देखा तो पास चली आई। विभा अपने कमरे में लौट रही थी।

"आप यहीं रहती हैं ?"

"हाँ।"

"क्या करती हैं ?"

"स्त्री जो कर सकती है वही।"

"बीमार हैं क्या ?"

विभा कमरे में पलँग पर लेट गई। लड़की थोड़ी देर बाद फिर आई। लड़की अपनी उम्र की लड़की को देखकर चुप कैसे रह सकती है फिर विभा का सौन्दर्य शील उसी के समान तो था। उसने इधर-उधर की बातें कीं। बताया, वह बी० ए० में पढ़ रही है। दोनों भाई उससे छोटे हैं। माँ है, दूसरी मौसी। मौसा भी साथ हैं। बड़ौदे में उसकी कोठी है। एक मोटर। पिता कपड़े का काम करते हैं। अब विभा की बारी थी। वह चुप ही रही। सुषमा की माँ मौसी भी आ गईं। वे भी ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला, हरिद्वार में क्या-क्या देखा, कैसा लगा, बताने लगीं। स्वामी विज्ञानानन्द को खबर लगी तो वह भी उधर आ निकला। बड़ा बेचैन, बड़ा उद्विग्न। किसी न किसी बहाने कमरे के बाहर टहलता।

"तुम यहाँ कैसे रहती हो, यह तो साधु का आश्रम है?"

"हाँ।" विभा चुप रही। "कब तक ठहर रहे हैं आप लोग?"

"दो दिन के बाद मंसूरी जायेंगे। फिर एक सप्ताह बाद लौटेंगे, आये हैं तो मंसूरी भी देख लें। तुम्हें कितने दिन हो गये?"

"छः मास।"

"अच्छा है। मेरे तो कुछ भी नहीं हुआ। बड़े जतन किये। मालिक कहाँ है?"

"बाहर।"

"बाहर किस जगह?" क्या जवाब देती। एकदम बोल पड़ी, "पूना।"

"क्या करता है?"

"नौकरी।"

"हूँ।"

"क्या नौकरी?" मौसी पूछ बैठी। "मेरे देवर भी पूना में हैं।" विभा ने कोई उत्तर न दिया।

विज्ञानानन्द बीच-बीच में बाहर से प्रश्न पर प्रश्न होते सुनकर घबराया। एक दम कमरे में आकर बोला, "हमारे माली के लड़के की बहू है। अरे, बैठी रहो कोई बात नहीं, बिचारा माली बड़ा अच्छा है। बड़ा फेथफुल।"

उन सब का मन डूब गया। "माली की बहू नीच जात।" लड़की की माँ हैरान होकर बोली, "लगे तो कोई ऊँचे कुल की है।"

"हाँ।" मौसी बोली।

"पढ़ी-लिखी है माँ।" लड़की ने कह दिया।

उठते हुए बोली, "नहीं, माली की नहीं हो सके है। कुछ बात है।" एक सन्देह का अँकुर जमा। रात को सोते हुए उन्होंने अपने पतियों से कहा। कुछ लड़के बोले, कुछ लड़की, कुछ दुनियाँ देखे हुए औरतों ने अनुमान लगाया, कुछ संसार की व्यवहारिकता का दम भरने वाले आदमियों ने।

अँकुर में पौधा उग आया तो केन्द्र-विन्दु बना विज्ञानानन्द।

"मुझे तो कुछ दाल में काला दिखाई देता है।" पत्नी बोली।

"मेरा भी ऐसा ही अनुमान है।" मौसी ने समर्थन किया।

"दान, सोच-समझकर देना चाहिए। तीर्थों के इन साधुओं का क्या ठिकाना।"

"हाँ और क्या। मैं पूरी तरह देख लूंगा, तभी एक कमरा बनवाऊँगा।" पति बोला।

"किस तरफ को बनेगा?"

"सड़क की तरफ की जमीन पर ठीक रहेगा।"

"मैं दावे के साथ कह सकती हूँ यह इन स्वामीजी की ही औरत है।"

"ऐसा मत कहो स्वामीजी ऐसे नहीं है बड़े भक्त साधु हैं। मैं जानता हूँ।"

"तुम भोले हो।" स्त्री ने कहा, "यह स्त्री हर्गिज-हर्गिज माली की नहीं हो सकती।"

"झूठ है, सरासर झूठ। शक्ल-सूरत, कपड़े नहीं देखते। हमारी सुषमा से कम सुन्दर नहीं है बल्कि इससे रूप-रंग में इक्कीस है।" सुषमा की माँ उठकर बैठ गई।

"पूछा जाय स्वामीजी से।"

"वह कभी बतावेंगे, कैसी बात करो हो। मालिक पूना में नौकर है। मैंने माली से पूछा है। वह सहम गया एक बार तो। स्वामी माली को डाँट

रहा था।"

"व्यर्थ किसी को दोष देना ठीक नहीं है। हाँ तो, परसों मंसूरी कौन गाड़ी से चलना है।" काफी देर तक बातें होती रहीं। विज्ञानानन्द को यात्री-परिवार की बातें अचानक हाल-कमरे के बाहर घूमते हुए सुनाई पड़ीं। पहले से ही वह सन्देहशील था। इस बार उसे लगा जैसे उसकी सारी योजना मिट्टी में मिली जा रही है। कभी उसे अपने पर क्रोध आता और अपनी मूर्खता को कोसता, कभी माली को और कभी विभा को। वह कहता, क्यों नहीं वह एक गाड़ी पहले आ गया, तो यह कुछ भी न देखना पड़ता। वह विभा को बलपूर्वक मकान से बाहर कर देता। अत्यन्त भोग के बाद एक विरक्ति विभा की तरफ उसके मन में उभर रही थी। जैसे अब उसमें कुछ भी शेष नहीं था। निचुड़े हुए आम या नींबू की तरह विभा उसे दिखाई देती। वह सोचता रहा, सोचता ही जा रहा था। कभी क्रोध में आकर पैर पटकने लगता। जैसे यह स्वर्ण-अवसर उसके हाथ से जा रहा है। एक बार उसके जी में आया सेठ को जाकर समझावे, उसका सन्देह दूर कर दे। किन्तु उसके मन के भय ने स्वयं उसे भीत कर डाला। वह निर्बल हो गया। साहस जाता रहा। सत्य के सामने युद्ध करने, उसका सामना करने का साहस, औद्धत्य, चतुराई, कौशल जैसे निर्जीव हो गये। वह अपने से ही भय खाने लगा। फिर भी उसे क्रोध आ रहा था। वह बाहर आया तो माली को हुक्का भरकर फूँस की झोंपड़ी में जाते देखा। उसका अन्तर जैसे उबल उठा। जाते ही पैर की खड़ाऊँ मार कर उसने माली को रोका और गालियाँ देते हुए कहा, "माली के बच्चे, क्यों नहीं तूने इसे पहले निकाल दिया? बोल, साले देखूँगा तुम दोनों को। बदमाश, तूने मुझे कहीं का नहीं रखा। मेरी इज्जत, मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। ज़रा जाने दो दोनों को खोदकर न गाढ़ दिया तो कहना। अब जो मैं कहता हूँ सो कर।" माली भौंचक्का खड़ा था। वह नहीं समझ पा रहा था इसमें उसका कोई भी दोष है।

"इसे रातोंरात कहीं बाहर लेजा। फेंक दे। गंगा में डुबो दे। मार डाल। ले जा। अभी ले जा। मुँह बन्द करके गठरी में बाँधकर ले जा। जा।"

फिर नरम पड़कर बोला, "लेजा जल्दी मैं सौ रुपये दूँगा। समझा।"

माली बहुत देर तक चुप खड़ा रहा ।

"मुझे बचाले माली, मैं तुझे पाँच सौ रुपये दूँगा । मैं अब भी सब सँभाल लूँगा । जा ।"

उसने माली की ठोड़ी से हाथ लगाया । निहोरा करने लगा और क्रोध से काँपता ऊपर चला गया ।

माली ने विभा के कमरे में जाकर देखा तो वह जाग रही थी । उसने निहोरे से कहा, "चल जल्दी !"

"कहाँ ?"

"जहाँ मैं ले चलूँ ।"

"क्यों !"

"स्वामी तुझे मार डालेगा ।" इसके साथ ही उसने स्वामी की सब बात उसे सुना दी ।

विभा ने सुना तो थोड़ी देर के लिये सन्न रह गई । क्रोध, प्रतिहिंसा, घृणा उपेक्षा से वह भभक उठी ।

विभा अब आग बन गई थी । वह चाहती थी कि इन भक्तों से खुलकर सब कह दे । जैसे उसके भीतर का फटा पड़ रहा हो । आने से पहले तार की बात उसे याद थी । वह इस समय माली की बात सुनकर बहुत भीषण हो उठी। शिथिल होने पर भी उसे चैन नहीं मिल रहा था । साँसें भारी होकर क्रोध से लिपट जातीं । अपने नाश की भी उसे पर्वा नहीं थी । जैसे उस बीते सुख की सारी प्रतिक्रिया मूर्त्त होकर उसके अन्तरंग में ज्वाला बन गई हो । उसे लगा उसने अवसर हाथ से खो दिया । मालिक को पूना में नौकरी करने वाला बता कर उसने स्वयं अपने हाथों में कुल्हाड़ी मारी है । वह जैसे ही विज्ञानानन्द का खयाल करती वैसे ही अपने को भूलकर प्रतिहिंसा की आग में जलने लगती । नींद उसे नहीं आ रही थी । वह उठी और बाघिन की तरह कमरे में टहलने लगी । इसी समय चुपके से विज्ञानानन्द ने कमरे में प्रवेश किया ।

कमरे में क्रोध से फुफकारती विभा को टहलते देखा तो एक बार सहमा । फिर बनावटी मुसकान में बोला, "तुम अभी सोईं नहीं ? यह अच्छा ही हुआ ।

बैठ जाओ, एक बात कहनी है। बैठ जाओ विभा।"

विभा ने जैसे कुछ भी न सुना। वह टहलती रही। विज्ञानानन्द को उस रूप में देखकर वह और भी उग्र हो उठी।

"मेरी प्रार्थना है कि तुम न हो एक-दो दिन के लिये⋯⋯।"

"बाहर चली जाऊँ।" उसने गर्ज कर कहा, मैं नहीं जाऊँगी। मैं हर्गिज नहीं जाऊँगी। मैं ⋯तेरा पाप लेकर बाहर जाऊँ। उस समय नहीं सोचा।"

"मैं हाथ जोड़ता हूँ।"

"कितने दिन के लिये, जब तक यह यात्री बाहर नहीं चले जाते उसके बाद ⋯⋯। मैं जानती हूँ। शराब पिलाकर मुझे नरक में डालने वाले, मैं तुझे खूब जानती हूँ। साधु बना फिरता है। नीच, दुष्ट तूने मुझे कहीं का न रखा।" वह हाँफती रोने लगी। उसका स्वर प्रत्येक शब्द के साथ तेज से तेज़ हो रहा था। विज्ञानानन्द को कुछ न सूझा तो उठकर एकदम उसका मुँह बन्द कर दिया। वह छुड़ाने के लिये छटपटाने लगी। वह घसीटकर बाहर ले आया। कपड़े से मुँह बाँध दिया। वह फड़फड़ाने लगी जैसे बिल्ली के मुँह से चूहा या कसाई की रस्सी में गाय, जिसके मुँह पर तोबड़ा चढ़ा हो, बाँध दी गई हो। गुस्से में भरकर उसने माली के फूंस के दरवाजे में लात मारी और भीतर जाकर धम्म से पटक दिया। इसके साथ ही क्रोध से पागल होकर दो-तीन लातें और जमाईं। विभा बेहोश हो गई। उसका शरीर लुंज-पुंज करके माली की चादर लेकर गठरी बनाकर वह बोला,

"माली, लेजा इसे गंगा में डाल आ। रुपये दूँगा। लेजा अभी।"

अधनींदा माली भौंचक खड़ा था। संज्ञाहीन, गतिहीन कुछ भी न समझ पाया। एक बार धर्म-भीरु उस बूढ़े के प्राण काँप उठे। उसने ऐसा नहीं देखा था। स्त्री का इतना अपमान, इतनी लांछना, उत्तप्त पीड़ा से वह एक बार काँप उठा। अब स्वामी बाहर खड़ा था। जड़ की तरह। एक बार वह फिर आया,

"नहीं जाता तू। जा !" इसके साथ ही उसने पाया बाहर एक छाया उसे ही देख रही है। विज्ञानानन्द काँप उठा। बूढ़े को कुछ न सूझा जैसे उसकी

संज्ञा लुप्त हो गई। वह बिना कुछ कहे विभा की गठरी उठाकर चला,

जाते हुए बोला—"स्वामी जाता हूँ। मैं अब लौट कर नहीं आऊँगा। मैं नौकरी नहीं करूँगा। तू राक्षस है राक्षस।" वह चला गया। उसके शब्द हवा में गूँज रहे थे। गर्भ गिर गया। खून की धार मशक के पानी की तरह साथ-साथ बहती जा रही थी।

दूसरे दिन सवेरे ही यात्रियों ने सामान बाँध लिया। चुपचाप जैसे सबके मुँह किसी ने सीं दिये हों। विज्ञानानन्द ऊपर से देख रहा था। सेठ का परिवार बिना कुछ कहे ताँगे में बैठा स्टेशन की ओर चल दिया। विज्ञानानन्द ऊपर खड़ा था जैसे छत पर खड़े होने पर भी वह पाताल में हो, लज्जा क्षोभ के पाताल में।

आत्मानन्द साधु वेश में उज्जैन से चलकर नासिक, बम्बई, पूना और दक्षिण के प्रायः सभी प्रदेशों में प्रचार करता घूमता रहा। जगह-जगह वह साधुओं से मिलता उन्हें अपना उद्देश्य समझाता। अब पुस्तिका समाप्त हो गई थी। बार-बार पढ़ने के कारण वह सब विचार उसके मन में थे। वह व्यक्तिगत रूप से साधुओं से मिलता और उनकी मनःस्थिति देखकर बात कहता। प्रायः सभी उसकी बात से सहमत होते। अंग्रेजों के प्रति विद्रोह के लिये वे तैयार हो जाते, किन्तु कोई भी महन्त, मण्डलेश्वर या अखाड़ों का स्वामी उससे सहमत नहीं हुआ। सभी डरते थे। सभी में आगे बढ़कर लोहा लेने का अभाव था। फिर जो दो-चार साधु तैयार होते, वे मन से चाहते हुए भी आगे बढ़ने में असमर्थ थे। भोजन और आराम ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। साधुओं को न भोजन का अभाव था न कोई कष्ट। देश की चिन्ता द्वारा अपने को जोखिम में डालना उन्हें कोई बुद्धिमानी नहीं लगती थी। यात्रा में एक वृद्ध ने कहा, "साधुओं का काम अध्यात्म-चिन्तन है राजनीति नहीं। तुम व्यर्थ ही साधु-समाज को इस मार्ग पर ले जाकर उन्हें विचलित मत करो। यह हमारा काम नहीं है।"

आत्मानन्द तर्क करता—

"यदि हम देश का अन्न खाते हैं, उसका जल पीते हैं, उसमें रहते हैं तो उसके दु:ख-सुख का हमें क्या ध्यान न रखना चाहिये ?"

"हमारा देश सारा संसार है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' समझे। साधु तो रमता जीव है। न एसका कोई देश है, न जाति।"

प्राय: यही तर्क, यही बातें होतीं। खाना, दण्ड पेलना और सुबह-शाम आरती, गुरु सेवा के अलावा, निठल्ली बातें, गप्प मारना ही उनका काम रहता। बहुत से लोग बातों में उड़ा देते। कोई कहता,—"आत्मानन्द, क्यों जिन्दगी खराब करता है। चल, यहीं रह। गुरु-सेवा, मन्दिर की पूजा कर और मौज में खा, पहन।"

दूसरा उपदेश देता, "अरे तू मूर्ख है, हमें क्या लेना-देना दुनियाँ से, दुनियाँ ही तो हम छोड़कर आये हैं। कोई राजा हो कोई परजा। जाय भाड़ में अपने को क्या। अपने राम तो हरि भजन करने आये हैं। दरबार में प्रसादी मिलती है पा लेते हैं।"

तीसरा क्रोध में कह उठता—"अरे स्वामी, चौरासी लाख जोनियों के बाद यह आदमी की जून मिली है क्यों व्यर्थ झंझट में इसे खोवे है। जा अपना काम कर। नहीं तो कोई साधु मार बैठेगा। आया साधु को उपदेश देने। अबे लण्डी के, साधु को कौन उपदेश दे सके है। वह दुनियाँ को तारने वाला है हरि का प्यारा नन्द के दुलारे का दुलारा।"

एक ने आत्मानन्द की बातें सुनीं तो बोला—"चल-चल राजा के बर-खिलाफ बोले है, साले-कोई धूल-दच्छिना कर देगा।"

एक आश्रम में उसकी बातों से एक तूफान सा उठ खड़ा हुआ और यहाँ तक नौबत आ गई, लोगों ने कहा,—"कोई भेदिया है। पुलिस को बुलाकर पकड़वा दो। सब आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा जब चूतड़ों पर पुलिस के डंडे पड़ेंगे। जा भाग।" और आत्मानन्द को निकाल दिया।

फिर कुछ स्थानों पर उसे सफलता मिली। महन्त ने सहानुभूति दिखाई।

"हमारा क्या है आज मरे कल दूसरा दिन। देश के लिये कुछ करके मरें तो इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है, तुम जब कहो तैयार हैं। जहाँ

कहो चलें। कहो यहीं जिले के दो-चार अंग्रेजों को मार दें। पता भी न लगेगा।"

आत्मानन्द ने समझाया—"आप तैयार रहें। स्वामी हरिशरणानन्द, चिदम्बरं के कार्यक्रम को समझाते हुए उन्हें वह यथासमय सूचना देगा।"

आत्मानन्द पहले तो प्रचार के लिए घूमा। फिर बनों का सौन्दर्य, झीलों, तालाबों, नदी के तटों पर बने आश्रमों ने उसे आकर्षित किया। शान्त, सुन्दर, स्वच्छ स्थानों पर वह ठहर जाता। उस एकान्त में प्रकृति के सौन्दर्य में रम जाता। उसे लगता जैसे घूमने में कष्ट होते हुए भी अति आनन्द है। साधुओं के मठ प्रायः शहर से दूर थे। उनमें वातावरण की स्वच्छता उसे मुग्ध कर लेती। उसने माना बहुत कम सफलता उसे मिली है किन्तु मनुष्य के मन का ज्ञान उसे हुआ है। जैसे हर आदमी अपने में, अपने सुख में डूबा हुआ है। उसका आध्यात्मिक विकास चाहे हो या न हो किन्तु हर एक को शान्ति चाहिए, इच्छा की पूर्ति चाहिये। जीवन का वह रस चाहिये जिसके लिए उसकी आत्मा तड़पती है। सब आदमियों में किसी न किसी प्रकार की भूख है, वह उसी को शान्त करना चाहता है। तृप्ति के लिए दौड़ रहा है। तुष्टि फिर भी नहीं है। प्रत्येक मनुष्य का अपना सीमित दायरा है। वह उसी के चारों ओर घूम रहा है, उसी के पाने में उसके जीवन की 'इति' है। 'इति' उसे फिर भी प्राप्त नहीं होती कि बीच में ही वह समाप्त हो जाता है। अध्यात्म ज्ञान एक सहारा है, जिसके द्वारा बिना काम किये, बिना संघर्ष में पड़े वह रहना चाहता है। अधिकतर साधु बिना सोचे-समझे इस सरल जीवन के शिकार हो रहे हैं। उसने बहुत कम लोगों में अपने ज्ञान के प्रति, अपने ध्येय के प्रति उत्कट लगन पाई। उसने देखा ज्यादा संख्या में लोग गड्डलिका की तरह उसमें बह रहे हैं। शायद ही कुछ को वह मिला होगा, जिसके लिए वे बैठे हैं, घर छोड़कर आये हैं। कोई न कोई कष्ट उन्हें गृहस्थ-जीवन में मिला है। किसी की स्त्री मर गई है। किसी से कमाई नहीं की गई, पेट नहीं भरा गया तो इस सरल मार्ग को अपना लिया है। हाँ, बूढ़े, निर्जीव, संसार से संतप्त, और वे लोग जिन्हें वास्तविक शान्ति की खोज है, अवश्य ऐसे हैं जो सच्ची शान्ति, सच्चा सुख चाहते हैं। ऐसे आदमियों में

उसे अधिकतर पढ़े-लिखे, वकील, ज्ञानी, पंडित, डाक्टर, जज, वास्तविक लगन के लोग मिले ।

इसके अतिरिक्त कुछ परम्परा से साधु बने हैं क्योंकि उनके गुरू उन्हें निरीह अवस्था में पकड़ लाये, चेला मूँड लिया तो वे साधु हो गये। उनके संस्कार में साधु दर्शन रम गया । ऐसे लोग इधर-उधर हाथ मारकर वासना तृप्ति कर लेते हैं । कुछ ने वैभव-विलास में अपने को तृप्त कर लिया है । बड़े-बड़े मकान बनाकर, अपना वैभव बढ़ाकर, साधुता का प्रदर्शन करने के बहाने अपनी इच्छाओं को पूरा कर लिया है। प्रत्येक का जीवन कामना की पूर्ति है, एक रट है; जिसमें वह चल रहा है । वह बैठा सोचने लगता । ये भिखारी, लूले, लँगड़े अपाहिज, अंधे, कोढ़ी इनका भी एक दल है । दूसरी ओर यह साधु वर्ग । फिर बूढ़े आदमी, बूढ़ी स्त्रियाँ, बालक, बालिकाएँ, इनमें से कितने लोग ऐसे हैं जो वास्तविकता को जान सकते हैं । फिर उनके साधन, ज्ञान की प्यास का अभाव । ऐसी दशा में कितने लोगों में देश के प्रति, समाज के प्रति कोई सद्भावना उत्पन्न हो सकती है ? उसे लगा जैसे सारा देश अज्ञान, अंधकार के आवरण से ढका है । यही कारण है लुटेरों के रूप में, व्यापारी के रूप में बाहर की जातियों ने आकर देश को दबोच डाला, पीस दिया । इन्हीं दिनों एक महन्त की शिकायत पर वह नज़रबन्द कर दिया गया ।

पुलिस के अधिकारी ने उस पर दया दिखाई और चेतावनी देकर छोड़ दिया। आत्मानन्द ने समझा यह भी उसके काम का एक अंग है । जेल, मार-पीट, तिरस्कार, अपमान सभी कुछ उसे सहना है ।

वह रिहा हुआ तो उस समय वह नदी के किनारे आश्रम से सटे एक घाट पर बैठा था । कुछ साधु पास ही भजन-पूजन कर रहे थे। साँझ ऊपर से घिर रही थी । आश्रम के मन्दिर में आरती की तैयारियाँ हो रही थीं । एक पुजारी पूजा के बर्तन माँजने आया तो वह नाटक का एक गीत गुनगुनाता बर्तन माँजने लगा । पास ही बुर्जी पर बैठे एक अधेड़ साधु ने कहा, "अरे रामोदार, यह साधुओं के गाने लायक गीत है क्या रे ?"

"साधुओं के क्या दिल नहीं है बाबाजी ।"

"दिल है तो छोकरी भी करेगा क्या ?"

"मिल जायगी तो क्या छोड़ दूँगा ।"

"ब्याह करले वैराग छोड़ दे ।"

"वैराग छोड़कर किया तो क्या किया, मजा जब है वैरागी भी बना रहूँ और औरत भी मिले जैसे परमानन्द दास ने करी ।"

"परमानन्द दास तो साला खे खाता फिरे है । उसने तो सम्प्रदाय को कलंक लगाया तो क्या तू भी करेगा ?"

"क्यों नहीं करूँगा । बड़े बाबाजी ने करी, छोटे ने भी थोड़े दिन रखी, हूँ तो मैं उन्हीं का चेला ।"

वह गुनगुनाता चला गया । साधु आत्मानन्द को देखकर बोला, "सुना तुमने, ऐसे है ये लोग । मैं कहता हूँ खे खा न तो सालो, वैरागी क्यों हुए । गिरस्त करते । क्यों आये यहाँ । सब एक से एक हैं । और तो और बड़े बाबाजी को भी तो साले दोख लगावे हैं । तुम यहाँ क्या करने आये हो जी ?"

"ऐसे ही दर्शन करने ।"

"और भी कहीं गये होगे ।"

"हाँ, बहुतसी जगह । मैं घूमता ही रहता हूँ ।"

"क्या देखा ? कौनसा संप्रदाय अच्छा देखा ? वैरागी तो डूब गये ।"

आत्मानन्द चुप हो रहा । इसी समय जटा बढ़ाये तुलसी की मोटी माला पहने दो महात्मा आकर बैठ गये । पहले वाला बाबाजी पूछने लगा,

"आ गये बाबा, जय सीताराम !"

"जय सीता राम, बाबाजी !"

"क्या हुआ फैसला ?"

"इकत्तीस तारीख पड़ी है अगले महीने की । रस्ते में ठाकुर मिल गया । हमने कही, साले, तेरा कुल डूब जायगा, मन्दिर की जमीन तेरे बाप ने दी, अब छीनता है ।"

फिर हमने कही, "बाबाजी महाराज ने कहा है सुपरीम कोरट तक लड़ेंगे ।

समझी क्या है तूने ।"

"हाँ हाँ क्यों नहीं। कहो तो रातोंरात घर में आग लगवा दूँ। हमारा क्या कर लेगा कोई।"

इसके साथ बैठे-बैठे उसने बहुत सी फोश गालियाँ ठाकुर के लड़के को दे डालीं। फिर बोला—"चलूँ दूध का इन्तजाम करना है। कल भण्डारा है न। पाँच सौ मूर्तियों का भोजन है।"

"क्या-क्या प्रसादी बन रही है ?"

"खीर, मालपुआ बस।"

"जय सीताराम, मौज ही मौज है। इन्ने राधोदास ने कई, एक दिन जिला में ठहरकर नकल ले लो। मैंने कई बाबा का काम है बड़े बाबाजी का, चलना ही पड़ेगा तुम जानो।"

"तो कल सवेरे ही लौट आते बाबा।" दूसरे ने अपनी बात के समर्थन में कहा। "चलो ठीक है आज ही आ जाये तो ठीक भया।"

"सीताराम सीताराम।" कहकर बाबाजी उठा तो गाय ले जाते एक ग्वाले से बोला, "अबे ओ देवकी के सुपूत, कल दूध चाहिये बे, सीताराम, कल बाबाजी का भण्डारा है सुनी के नईं।"

"कित्तौ दूध चहिये बाबा ?" देवकी के लड़के ने पूछा।

"बारा मन तो होय। सब ग्वालेन सों कह दीजो सीताराम। दूसरे गाँव में भी जाना पड़ेगा। तू कितना दे सके है बाबा ?"

"तीन मन हो जायगा बाबा। हमारे यहाँ तो।"

"भला रे भला, और नहीं क्या ?"

"खैरपुर, रामपुर, अभयगंज से ले आओ।"

"अच्छा बाबा।"

वह उठा और चल दिया। दो बाबा और साथ गये।

बाहर से आये दोनों बाबा लोगों ने कहा, "पाँच सौ तो बहुत हैं बाबा।"

"अरे तू क्या जाने, जब बाबा का सुरगवास भया हा तब दो हज्जार बैरागी परसादी पाने कूँ बीस-बीस कोस से आये हे। अब के कम हैं।"

दूसरे दिन दल के दल वैरागी साधु सबेरे से ही आ गये। कड़ाह चढ़े। माल पुआ बने। एक-एक ने कस-कस के खाया। खीर के साथ मालपुए पेट में ऐसे उतर रहे थे जैसे गारे के साथ ईंटों की तह जम रही हो। रात के बारह बजे तक भोजन हुए। कुछ लोगों ने इतना खाया कि वहीं जमीन पर मुर्दे की तरह पड़ गये। साधुओं के अलावा गाँव के चौधरी, बड़े-बड़े जमींदार, व्यापारी, सेठ, ब्राह्मण आये। इन लोगों ने चढ़ावा चढ़ाया। सबेरे से ही घड़ों भंग बनी। चरस, गाँझे के दम लगे। एक तरफ खाना बनता रहा दूसरी तरफ रामायण की कथा चलती रही। आत्मानन्द ने पूछा, "कितने ऐसे भण्डारे होते हैं वर्ष में ?"

"चार।"

"सब मिलाकर कितना खर्च हो जाता है इन सब में।"

'अबे, हम क्या बनिये हैं जो हिसाब करें। सब हनुमानजी करें हैं, सीताराम।"

दूसरे दिन चलने लगा तो आत्मानन्द नदी पार के दो साधुओं का दृश्य देख कर इतना हँसा शायद उससे पहले इतनी हँसी उसे कभी नहीं आई थी। वह घाट के किनारे था। पास ही एक बाबा धूनी रमाये बैठा ताप रहा था। इतने में एक साधु नहाकर ठिठुरता आया तो धूनी के पास जाकर हाथ तापने लगा। थोड़ी देर बाद नहाये साधु ने ठिठुरते पैर आग के सामने फैला दिये। धूनी वाले साधु ने देखा तो तड़ से चीमटा उठा कर साधु को मारते हुए कहा, "मूरख, धूनी को पैर दिखाता है। देखता नहीं धूनी में वासदेव (अग्नि) है।"

दूसरे ने क्षमा माँगी और बोला, "गलती हुई बाबा, माफ करो।" साधु चुप हो गया। सर्दी पड़ रही थी। धूनी वाले बाबा को पीठ में सर्दी लगी तो धूनी की तरफ पीठ करके लेट गया। दूसरे बाबाजी ने देखा तो चीमटा उठाकर तड़ से जड़ दिया, "वासुदेव को पीठ दिखाता है।" बदला लेने की खुशी में वह हँस पड़ा—"अबे तो क्या तेरी धूनी है लण्डी के। मेरी धूनी है चाहे जो करूं। बड़ा आया।" चोट खाया बाबा अपनी पीठ सहला रहा था।

नहाकर आने वाले ने आग से चिपटकर जटाएँ खोल दीं। पानी की बूँदें राख पर गिरने लगीं। जटाएँ फैलने से कुछ बूँदें आग में भी गिर रही थीं। पहले

ने मौका ताका और एकदम चीमटा उठाकर साधु के सिर में जमाया।

"लण्डी के, मेरी वासदेव बुझाता है जटा से पानी डालकर। मूरख, जटा सुखानी है तो बाहर सुखा, चल भाग।"

दूसरा साधु जवान था। उसे गुस्सा आया तो धूनी की लकड़ी उठाकर उसे मारने को तैयार हो गया।

"बड़ा आया धूनी वाला। धूनी क्या तेरे बाप की है। अभी जला दूंगा।" दूसरा डर गया। फिर हिम्मत बाँधकर खुशामद करने लगा।

"लछमनदास, तू तो वैसे ही नाराज होवे है। मैंने क्या कही बच्चा, बैठ, धूनी ताप, तेरी ही धूनी है। ले ताप ले।"

"अब वे दोनों तापने लगे। थोड़ी देर में दोनों इस तरह बात करने लगे जैसे कुछ भी न हुआ हो। दोनों ने भरी चिलम में कस-कसकर दम लगाये तो नशे से आँखें चढ़ गई।

इसी समय कुछ यात्री उधर से निकले। कुछ स्त्रियाँ भी साथ थीं। तो दोनों घूरने लगे। मुँह से सीताराम की रट लग रही थी।

दोनों ऐसे बैठ गये जैसे सचमुच ही पहुँचे हुए साधु हों। एक बूढ़ी स्त्री ने भभूत माँगी तो जवान ने चुटकी उठाकर देते हुए कहा—"बाबा की धूनी है। चौरासी लाख जून से होकर निकली है। लेजा माई, राम लछमन इसी से हुए हैं। दो सौ साल से बाबा इसी तरह तप रहे हैं।"

"दो सौ साल से। बाबा इतने बूढ़े हैं?" स्त्री ने आश्चर्य से पूछा।

"देखती है सामने बड़ का पेड़। यह इसी धूनी का बच्चा है।"

यात्री लोग स्तब्ध खड़े सुन रहे थे। उन्होंने पेड़ को झुककर प्रणाम किया।

"जा, एक पत्ता तोड़ ला बच्चा!"

एक गया और नीचे गिरा पत्ता उठा लाया। तो उसने डाँटकर कहा, "जा तेरे बच्चा, होके गिर जायगा।"

"क्या मतलब?"

"तेरे कोई औलाद नहीं है?"

"हाँ महाराज।"

"तो तूने गिरा हुआ पत्ता उठाया है। हमारा बरम्ह बोलता है तेरे बच्चा होगा पर गिर जायगा।"

दूसरे ने पूछा—"क्या गर्भ गिर जायगा ?"

"गरभ-अरभ क्या बोलता है बाबा के सामने। भसम ले जा, सवा पाँच सेर का चूरमा हनूमान को चढ़ाना, समझा। और सवा रुपया। जा नहीं गिरेगा। मंगलवार को माई को भेज देना। एक बार और भसम ले जायगी। कहाँ रहते हो तुम लोग ?"

"रहते तो दूर हैं। यात्रा में आये हैं। धर्मशाला में ठहरे हैं।"

"कब तक रहोगे ?"

"कल जाने की सोच रहे हैं।"

"तो मंगल तक वास करके जाना। परसों मंगल को आना। मंगल होगा।"

सास, बहू और लड़का एक रुपया धूनी पर चढ़ाकर चले गये।

बड़ के पेड़ के पास वह धूनी थी। पास ही फूँस की कुटिया। उसके साथ मैदान में दो गायें बँधी थीं। सामने छोटा सा पक्का हनूमानजी का मन्दिर था। उसके साथ सटा हुआ पक्का कूआँ। पश्चिम की तरफ हरा-भरा टीला, पूर्व में सामने नदी। आत्मानन्द मन्दिर के चबूतरे पर बैठा यह सब देखता रहा। गाँझे की पत्तियाँ तोड़कर लाते हुए जवान साधु से उसने पूछा,

"आप ही इस मन्दिर की पूजा करते हैं ?"

"हाँ बाबा। क्या करें।"

"और यह बूढ़े बाबा ?"

"इनकी कुटिया है। इसमें रहते हैं। अभी आये हैं। कोई दो-तीन बरस से।"

"आप तो कहते थे यह बड़ का पेड़······"

हँसकर बोला, "अरे ऐसे ही है। जंगल है। कुछ न कहें तो यहाँ कौन आवे। दो-चार साधु इधर-उधर से आ जाते हैं। भंडारा चलता है। मधुक्कड़ी का प्रबन्ध भी तो हो।" उसने बाबा की धूनी के पास जाकर एक गाँझे का दम लगाया और उठकर गायों की सानी करने लगा। दूसरा बाबा उठकर मन्दिर के पीछे चला

गया। बड़ा रमणीक स्थान था। चारों ओर जंगली फूलों की झाड़ियाँ थीं। टीलें के पीछे गाँव के लोगों के जानवर चर रहे थे। पास ही एक जल-कुण्ड में कमल खिले थे। उसने देखा, दिन में रह-रहकर उस स्थान पर यात्री आते रहते हैं और कुछ न कुछ मन्दिर में चढ़ा जाते हैं। निरन्तर मन्दिर के घंटे की आवाज गूँजती रहती है। गाँव के लोग भी शाम, सुबह, दोपहर बड़ के पेड़ के नीचे नदी के किनारे बैठे रहते हैं। सामने गाँव की स्त्रियाँ घाट पर नहाती पानी भरती हैं। जरा दूर हटकर कुछ और झोंपड़े साधुओं के हैं। उनमें कुछ गृहस्थ-वैरागी भी हैं। कुछ लोग गिरोह बनाकर दूर-दूर माँगने जाते हैं और दो-तीन मास बाहर बिताकर घर लौटते हैं। उन्हीं साधुओं में एक दल ऐसा भी है जो हारमोनियम, तबले, मंजीरे के साथ रामायण की कथा बाहर जाकर करता है, और खूब कमाकर लाता है। ऐसे लोगों के पक्के मकान हैं, स्त्रियाँ हैं, बच्चे हैं। पूरे गृहस्थ हैं लेकिन बाना वैरागियों का है। नदी के किनारे दूर तक ऐसे लोगों की बस्ती बसी है। इस तरह कमाना-खाना ही उनका पेशा है जो वंश-परम्परा से चला आ रहा है।

यह निकम्मा अंग मेहनत करके खाने वालों की अपेक्षा काफी मजे में है। न इन्हें आज की चिन्ता है न कल की। जैसे रामकृष्ण की अर्चना की विरासत इन लोगों को ही मिली है, जिसने युग-युगान्त से ऐसे लोगों के भरण-पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया है। जैसे कमल की पंखुड़ियों से वासना का कीड़ा चिपट गया हो जो लगातार रस चूसकर मोटा हो रहा है। कल के सूरज का प्रकाश ही आज की एक रोशनी हो। आज का दिन महत्त्वहीन है, निकम्मा है, अंधकारमय है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन एक पुरानी डोर से बँधा हुआ है। इसीलिए हम वर्तमान में जो कुछ देखते हैं, पाते हैं, मानते हैं, विश्वास करते हैं उसकी दृष्टि हमें उस प्राचीन से मिली है। उसी दृष्टिकोण से हम आज को नापते हैं। कितना विचित्र है यह सब। वर्तमान के संघर्ष के धक्के में हम अतीत को सँजोये चलते हैं। जैसे अतीत ही हमारे जीवन का सूत्रधार है, दृष्टि है, विश्वास है, नाप-तौल है। जो धुँधला पड़ गया है उसी से हमें जैसे एक रस मिलता है।

नदी के किनारे घूमता हुआ थककर आत्मानन्द बैठ गया। उसने सोचा

जैसे सारे जगत को अतीत की परछाईं ने घेर लिया है, कितना छल है, कितनी भ्रान्ति है इस विचार में ? तो क्या यही संस्कृति है, जो धरोहर की तरह हमें अपने साथ लिये चलती है, मुक्त नहीं होने देती, आज को नया आज मानकर नहीं चलने देती, उत्साह नहीं देती। माला में टूटे दानों को भी हम सँजोये चले जा रहे हैं ?

नदी का हल्का ठंडा पानी नीली चटकदार चादर ओढ़े बह रहा था। फूलों के गुच्छों की तरह हवा के झोंके आ रहे थे। लहरें नाच रही थीं वर्तमान की खुशी से फूली हुई सी। आकाश में बादलों की परछाइयाँ पानी की गोद में झिलमिला रही थीं। पास ही एक बाबा बैठा जोर-जोर से गा उठा।

"हरी हर, हरी हर, हरी हर हरी, मेरी बेर क्यों देर एती करी।"

उसकी फटी आवाज फूटे ढोल-सी बोल रही थी। आत्मानन्द का ध्यान टूटा। वह उसे ही देखने लगा। उससे जरा हटकर एक औरत गाय को पानी पिला रही थी। गाय न जाने कैसे रस्सी तुड़ाकर भागी तो बाबाजी को कुचलती चली गई। एकदम वह चिल्ला उठा—उसने औरत को गाली दी। गाय भागती-भागती दूर जाकर खड़ी हो गयी। बाबाजी की टाँग कुचल गई। वह एक बार बेहोश-सा हो गया। औरत ने चुपचाप भागकर गाय को पकड़ा और चली गई। यह वही बाबा था जो सवेरे धूनी रमा रहा था। आत्मानन्द ने कराह सुनी तो उधर गया। देखा, सचमुच गाय का खुर उसकी जाँघ पर पड़ा है। उसका कराहना सुना तो लछमनदास दौड़ा हुआ आया। बाबा चिल्ला रहा था। दोनों उसे उठाकर धूनी पर ले गये। आत्मानन्द से सारा माजरा सुनकर वह बाबाजी हँसता हुआ बोला, "अब क्यों रोता है हरी ने सुन लिया, वस हो गया। चल। ठीक हो जायगा। परसादी तैयार है।"

उसी समय दूर कहीं से लड़ने की आवाज सुनकर बोला—"रामदास की महरिया को उड़ा ले गया है उसी की लड़ाई है।"

"कौन ?"

"भरतदास का मँझला बेटा और कौन, बूढ़े से रखा जाता तो रहती। जवान छोकरी को शहर से भगा लाया। शत्रुघनदास ले उड़ा। बहुत दिनों से दाँत थे उस पर छोकरे के। माल उसका जो खाय। सो ले उड़ा। क्या बताऊँ मैं

ही रह गया।"

वह खाना परोस रहा था। बूढ़े बाबा के सामने रोटी रखकर वह आप खाने बैठ गया। खाते-खाते कहने लगा,

"अब मैं भी एक करूँगा बाबा। रोज रोटी नहीं बनती सुसरी।"

मोटे-मोटे पाँच-छ: टिक्कड़ दाल के साथ खाकर लछमनदास ने बड़ा लोटा पानी पिया और काम समेटने लगा। बूढ़ा रह-रहकर दर्द से कराह रहा था। लड़ाई काफी रात तक होती रही। लछमनदास का मन न माना तो वह देखने चला गया। उसने लौटकर बताया, "बूढ़े ने भरतदास का सिर फोड़ दिया है। भरत के बेटों ने पुलिस में रपट लिखाई है। भरत की महरिया ने रामदास के हाथ में काट लिया है। उसकी दाढ़ी नोच ली है। वह भी पुलिस में गया है। अब लगेंगे हजार पाँच सौ। दोनों मालदार हैं देखें कौन जीतता है।" बूढ़ा अब भी कराह रहा था। लछमन बोला, "बूढ़ा बाबा, क्यों मरा जाय है। गाय का खुर लगा है पवित्तर हो गया। चल जा, सो जा, धूनी के पास। धूनी की भसम लगा ले। जा।"

इसके साथ ही वह मन्दिर के आँगन में टाट बिछाकर चिलम पीने लगा। आत्मानन्द रात बिताकर दूसरे दिन आगे चल दिया।

वह कई दिनों से सोच रहा था। इस तरह मारे-मारे फिरने से अब कोई फायदा नहीं है। वह स्वामी हरिशरणानन्द के पास लौट जाना चाहता था पैसा उसके पास था नहीं। कपड़े भी फट गये थे। एक कम्बल, लँगोटी और एक कमंडल। यही सामान लिये घूम रहा था। दिन में पैदल चलता, रात को जहाँ कहीं जगह मिल जाती सो रहता। जहाँ मिल जाता खा लेता। इसी बीच एक बार बिना टिकट रेल पर चढ़ा तो उतार दिया गया। फिर मौका पाकर चढ़ा तो पुलिस ने पीतल का कमंडल बेचकर किराया वसूल किया। जिस जगह उसे उतारा वह एक छोटा सा स्टेशन था। चारों ओर घना जंगल। रात का समय। दिन भर का भूखा आत्मानन्द गेट के जँगले के पास जाकर बैठ गया। कमरे में स्टेशन मास्टर काम कर रहा था। पास ही एक खलासी कम्बल बिछाए लेटा था। इसी समय पाइण्ट्समैन ने आकर बाबू से बात करके, खाने की पोटली

खोली कि किसी काम से बाबू ने उसे बुलाया। वह रोटी वैसी ही उठाकर कमरे में पड़ी संदूक पर रख गया तो आत्मानन्द ने देखा चार मोटी रोटियां हैं उस पर प्याज की दो-तीन गाँठें रखी हैं। पाइण्ट्समैन देर तक न लौटा तो आत्मानन्द से न रहा गया। वह सोच रहा था रोटी माँग लेगा। लेकिन मालिक चला गया था। कई दिन से भूखा था। उस समय भी भूख तेजी से लग रही थी। वह अपने को रोककर मालिक की प्रतीक्षा करता रहा। जैसे वे चार-पाँच रोटियाँ शरीर के भीतर उबल उठते प्राणों का सहारा हों। वह बैठा रहा। सामने आ पड़े अनन्त वैभव की तरह वे रोटियाँ उसे खींच रही थीं। जैसे उनके एक-एक ग्रास में आत्मानन्द के प्राण धारण का विश्वास जम रहा हो। वह बैठा रहा। वह आदमी अब भी नहीं आ रहा था। न जाने कहाँ चला गया। एक-एक क्षण उसे भारी असह्य हो रहा था। उसने डरते-डरते दो रोटी उठाकर खाना शुरू कर दिया। खतम करके वह बची हुई रोटियाँ लेने के लिए उठा ही था कि पाइण्ट्समैन ने आकर उसका हाथ झँझोड़ते हुए गाली दी। एक थप्पड़ भी मारा। वह चुपचाप मार खा रहा था। बाबू ने देखा तो वह भी आ गया। सोता हुआ खलासी भी जाग गया। आत्मानन्द का चेहरा उस समय मैले कपड़ों, बढ़ी दाढ़ी और कमजोर शरीर से भयावना हो उठा था। बाबू ने ठोकर मारी, खलासी ने दो-तीन थप्पड़ जमाये। पाइण्टसमैन ने गालियाँ दीं। आत्मानन्द फिर भी चुप था। इसी समय पाइण्टसमैन ने बची हुई रोटियाँ उसके सामने फेंकते हुए कहा, "ले खा ले, न जाने कौन है ?"

नीरस और रुआँसी आँखों से देखते हुए उसने फेंकी हुई रोटियाँ उठा लीं और खाने लगा।

"कौन है तू ?"

आत्मानन्द पहले कुछ न बोला। फिर पूछने पर उसने कहा, "भूखा। मैं भूखा हूँ।"

"कहाँ से आया ?" स्टेशन बाबू ने पूछा।

खलासी बोला, "बिना टिकट गाड़ी में से अभी उतरा है।"

पाइण्ट्समैन को दया आई, बोला,

"ग्रार खायगा ?"

"नहीं, पानी ।"

उसने कमरे में भरी बाल्टी उठाकर पानी पिलाया । ग्रात्मानन्द ग्रब स्वस्थ हो गया था । बाबू ग्रब भी बैठा गालियाँ देता कह रहा था "बन्द कर दो साले को। चोर है ।"

वे दोनों ग्रात्मानन्द को देख रहे थे । एक बोला,

"साधु है, साधु ।"

"मैं ग्रसाधु का काम करके साधु कैसे हो सकता हूँ ।" उसने लम्बी ग्राह भरकर कहा ।

बाबू ने पीठ मोड़कर सामने देखते हुए पूछा,

"कहाँ से ग्राया है ?"

"घूमता ग्रा रहा हूँ बाबा ।"

"साधु रमते राम हैं। फकीर का क्या घर होता है बाबूजी ।"

"ऐसे ही साधुग्रों ने देश का नाश कर रखा है ।" इतना कहकर बाबू ग्रपने काम में लग गया ।

"मैं भी यही मानता हूँ ।" ग्रात्मानन्द बीच में ही बोल उठा ।

"तो साधु क्यों बना ?" काम करते हुए बाबू ने रजिस्टर में नजर गढ़ाये ताने से पूछा ।

"मैं साधु कहाँ हूँ ।"

"तो क्या है ?"

"ढूंढ रहा हूँ साधु कहाँ हैं ?"

"मुझे फकीरों से घृणा है ।"

"मुझे भी ।"

"तू तो चोर, उठाईगीरा है न ?"

"कुछ समय पहले था, ग्रब नहीं ।"

"ग्रब सेठ है ।" बाबू कहकर हँसा ।

"ग्रब ग्रादमी हूँ । मुझे दुख है इस बिचारे की रोटियाँ मुझे इस तरह

चुरानी पड़ीं। पर क्या करता, मजबूरी, भूख मनुष्य को बुरा बना देती है। बाबू मैं भी उसका शिकार हो गया था।"

"समझदार मालूम होता है।" बाबू ने एक नजर डालकर टेढ़ी गर्दन से कहा। "दुनिया में समझदार बहुत कम हैं। जो हैं उन्हें लोग नासमझ कहते हैं। आप तो समझदार हैं न बाबू। नायण्टी परसेण्ट सबनार्मल, मुश्किल से एक परसेण्ट नार्मल।" आत्मानन्द ने उत्तर दिया।

तार की खटखट सुनकर बाबू चुपचाप उधर चला गया। खलासी खुर्राटे ले रहा था। उसी के पास भूखा पाइण्ट्समैन पड़ा था। बाबू ने तार खटखटा कर पाइण्ट्समैन को जगाया। जो दो-एक मुसाफिर न जाने कहाँ से रात में खिड़की पर आ गये थे उन्हें टिकट बाँटे।

"कितनी देर में गाड़ी आ रही है?" एक यात्री ने पूछा।

"आध घण्टे में।"

"मैं भी हरिद्वार जाना चाहता हूँ बाबू।" आत्मानन्द ने कहा।

"क्या कहा, नायण्टी परसेण्ट सबनार्मल?"

"हाँ, एक परसेण्ट नार्मल।"

"कैसे?"

"अब यही लो, आप पढ़े-लिखे हैं फिर भी आप में मनुष्यता का अभाव है। आप से यह अपढ़ ही अच्छा है जिसने मुझ भूखे का खयाल करके बाकी बची रोटी भी दे दी। यह दया का भाव ही है। मनुष्यता दया, क्षमा का ही दूसरा नाम है. आपने यह भी जानने की कोशिश नहीं की, आखिर क्यों मैंने चुराकर रोटी खाई। न आपने उसका मूल कारण खोजा न कुछ, एकदम मार बैठे। जैसे मैं मनुष्य न होकर पशु हूँ।" बाबू आत्मानन्द की बात सुनकर थोड़ी देर के लिए सकते में पड़ गया। उसे लगा सचमुच जो यह कह रहा है वह ठीक है। मुझ में और इस अपढ़ आदमी में क्या अन्तर है। इसके साथ ही उसे ध्यान आया यह पढ़ा-लिखा भी है। बात भी पते की करता है। वह ढीला पड़ा। अंग्रेजी शब्दों का भी उस पर प्रभाव पड़ा।

"तो तुम अंग्रेजी जानते हो।"

"तो क्या आप अंग्रेजी का एक-आध शब्द बोलने भर से मेरा महत्त्व आँकते हैं ? महत्त्व भाषा का नहीं विचार का होता है। विचार की मौलिकता मनुष्य के विकास की कसौटी है।" यह दूसरा विचार-शर था जो आत्मानन्द ने सहज भाव से छोड़ा। बाबू देर तक उसका मुँह ताकता रहा। पाइण्ट्समैन ने लालटेन उठाई और चलते हुए बोला, "यह पढ़ा लिखा साधु है मुसीबत का मारा विचारा।" आत्मानन्द की ओर देखकर बोला—"जाना हो तो बाबू साहब गाड़ी में बिठा देंगे भला, इनके लिए यह मामूली बात है हम रेल के आदमियों को किराया नहीं देना पड़ता। रिश्तेदार भी बिना टिकट चलते हैं।"

वह चला गया तो बाबू बोला, "कहाँ जाना है ?"

"सोचता हूँ हरिद्वार चला जाऊँ। वहाँ मेरे गुरु हैं।"

"क्या करते हैं ?"

आत्मानन्द हँसा। "साधु जो करता है वही वे करते हैं किन्तु वे साधारण साधु नहीं हैं। वे भी तुम्हारी तरह स्टेशन मास्टर थे। उन्होंने एक अंग्रेज की दुष्टता देखकर हत्या कर दी, वे बड़े देश-भक्त भी हैं।"

"हत्या करने से ही देश-भक्त हो गये ?" मजाक में उसने कह दिया।

"यह भी देश-सेवा है। दुष्ट को मारना। क्या तुम भी वैसा कर सकते हो ?"

गाड़ी का सिगनल हुआ।

"गाड़ी आ रही है। मैं टिकट कलक्टर या गार्ड से कह दूँगा। सहारनपुर तक पहुँच जाओगे। वहाँ से कोई इन्तजाम कर लेना।" कहकर खिड़की पर आये लोगों को टिकट बाँटने लगा। यथासमय गाड़ी आई तो रेल बाबू ने आत्मानन्द को गाड़ी में बिठा दिया।

गाड़ी में बैठा आत्मानन्द यह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि रात को उसने जो रोटी चुराकर खाई वह अनुचित किया। वह उसका औचित्य भी सिद्ध नहीं कर सका। वह सोच रहा था एक बार स्वामीजी से मिलने और यशोदा को देखने के बाद वह कोई काम करेगा। इस तरह व्यर्थ जीवन बिताने से कोई लाभ नहीं है। क्या काम करेगा यह वह निश्चय नहीं कर पाया।

उसे लगा यह जीवन सचमुच पलायनवादी का जीवन है। इस यात्रा में ही बनावटी अध्यात्म से उसका विश्वास उठ गया था। वह कहता परोक्ष की चिन्ता में जीवन के अमूल्य क्षणों को खो देना भयंकर भूल है। परोक्ष कमजोरी का सहारा है। जो प्रत्यक्ष के संघर्ष से जी चुराने पर पैदा होता है। जीवन कमजोरी नहीं है। जीवन-शक्ति है, अदम्य शक्ति का पुंज। उसके दुरुपयोग से ही भय की भावना तथा मन में कमजोरी जागती है। वह अब कमजोर नहीं रहना चाहता। उसने पाया जैसे अपने को न पहचानना ही कमजोरी है। कोई भी बन्धन कोई भी अस्थायी आकर्षण उसे रोक न सकेगा। यह सब वह सोचता जा रहा था। सहारनपुर के स्टेशन से बाहर निकला तो उसने देखा ब्रह्मानन्द के साथ कुछ साधु भी उतर रहे हैं।

ब्रह्मानन्द ने आत्मानन्द को देखा तो पास आकर पूछने लगा—"अरे तुम कहाँ से आ रहे हो?"

"मेरी पहली यात्रा ही चल रही है भाई।"

"क्या मिला, सचमुच तुमने इतने दिन व्यर्थ गँवाये। मैं तो उसी समय समझ गया था इस काम में कुछ नहीं रखा। मैंने तो छोड़ दिया।"

"अब कहाँ हो?"

"वृन्दावन में एक गद्दी का महन्त हो गया हूँ। काफी सम्पत्ति है, पूरा मालिक हूँ।" उसने विस्तार से बताया कि एक बार बड़े महन्तजी ऋषिकेश आये तो उनसे मेरी बात हुई। जब तुम्हारे दल की मैंने निस्सारता देखी तो सब छोड़ कर वृन्दावन चला गया। स्वामीजी उन दिनों बीमार थे। उन्होंने मुझे देखते ही आश्रय दिया। और भी दो-एक चेले थे किन्तु स्वामीजी मेरी योग्यता पर प्रसन्न हुए। सब के विरोध करने पर भी उन्होंने मुझे अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया। एक दिन अचानक उनकी मृत्यु हो गई। वे लिखकर दे गये थे, उसी के आधार पर सरकार ने निर्णय दिया और मैं महन्त बन गया।"

"अब कहाँ जा रहे हो?"

"हमारे गुरु-भाई को गद्दी दी जा रही है उसी उत्सव में आया हूँ। ये लोग मेरे शिष्य हैं। चलो तुम भी चलो। बातें होंगी"

ब्रह्मानन्द आत्मानन्द का हाथ पकड़कर ले चला। आश्रम में मण्डलेश्वर तथा अन्य साधु दूर-दूर से आये थे। खूब रौनक थी। बहुमूल्य सामग्री एक ओर सजी थी। विशाल हाल में बड़े-बड़े गाँव-तकियों का सहारा लिये साधु स्थूलकाय, कृश, जटाधारी, मुण्डित बैठे थे। ब्रह्मानन्द पहुँचा तो सबने उसका स्वागत किया। महन्तजी गले मिले।

यथासमय मण्डलेश्वर ने नये चेले का अभिषेक किया। स्नान के बाद नये गेरुए वस्त्र पहनाये। गले में रुद्राक्ष की माला, हर रुद्राक्ष में सोने की चिप्पियाँ जड़ी हुई थीं। फूलों का हार, रेशमी पगड़ी पहनाने के बाद पूजा विधि आरम्भ हुई। हवन हुआ। मण्डलेश्वर ने सबके सामने कहा—"आज से धीरानन्द इस गद्दी के स्वामी हुए। यह अपने गुरु की परम्परा को कायम रखते हुए साधु धर्म का पालन करेंगे।"

भावी महन्त ने मण्डलेश्वर की बात दुहराई। प्रतिज्ञा की। सब लोगों ने तिलक लगाये। मालायें पहनाईं। भेंट चढ़ाई गई। लगभग दो घण्टे तक कार्य होता रहा। नगर के भक्तजनों ने अपनी श्रद्धा के अनुसार भेंट दी। बाजे बजे। अब धीरानन्द महन्त थे। वे सबसे गले मिले। बूढ़े साधुओं को नमो नारायण कहकर प्रणाम किया फिर शिव के मन्दिर में शिवलिंग को दूध चढ़ा कर विधि-वत् पूजा की।

उस दिन के भोजन का क्या कहना था। विविध स्वादु भोजनों से सब को तृप्त कराया गया। गरीब भिखमंगों को भी भोजन मिला। ब्रह्मानन्द काफी व्यस्त रहा। शाम के समय उसे कुछ अवकाश मिला तो वह आत्मानन्द के पास आकर कहने लगा—"सुनो आत्मानन्द, तुम चाहो तो तुम्हें मैं महन्त बनवा दूँ। सम्पन्न गद्दी है। महन्तजी भी सौभाग्य से यहीं हैं। वे चाहते हैं कोई पढ़ा-लिखा लगन का चेला मिला जाय। तीन गाँव हैं। पन्द्रह हजार की वार्षिक आमदनी है। सब गुण तुम में हैं। कहो, क्या कहते हो। करूँ बात ? जिन्दगी भर मारे फिरने से यही अच्छा है कि कहीं जम जाओ। मौज करो। रही बात विद्रोह की वह सब फिजूल है। जो तुम्हारा काम है वह करो। साधु जीवन बड़े पुण्य से मिलता है मैं चाहता हूँ इस अवसर को हाथ से न जाने दो।"

"मैं स्वामीजी से मिलना चाहता हूँ पहले ।"

"तो मिल लो उनसे भी । कहो तो बात करूँ । यह साधु लोग ऐसे-वैसे को चेला नहीं बनाते । तुम्हारा सौभाग्य है । मैं कहूँगा तो मान जायँगे । जरा अपढ़ हैं । वैसे चेलों की कमी नहीं है । बहुत से मारे-मारे फिरते हैं ।"

"नहीं, मुझ से यह सब नहीं होगा ।"

"अरे तो तुम्हें करना क्या है । कुछ काम भी तो हो ।"

"इसीलिये मुझे यह काम पसन्द नहीं है । मैं इस जीवन से घृणा करता हूँ । यह बेकाम का जीवन है ।"

ब्रह्मानन्द की भौंहें तन गईं । बोला, "तो ठीक है मारे फिरो, भूखे मरो । मुझे क्या । मैंने तो तुम्हारे ही भले के लिये कहा है ।"

वह चुप हो गया । आत्मानन्द ने जो कुछ सबेरे से देखा था उससे उसे और भी विरक्ति हुई । उसे लग रहा था कितना आडम्बर है इस जीवन में । इसी समय वे महन्त भी आ गये जो एक अच्छे चेले की तलाश में थे । बूढ़ा थलथल शरीर, आँखों पर चश्मा, नशे में धुत्त । आते ही बोले,

"कहो महन्तजी, क्या हो रहा है ?"

"आइये, विराजिये स्वामीजी ।"

उसने अपने पास का आसन खाली कर दिया । वे डगमगाते बैठ गये ।

"आज भवानी का रंग तेज है भैया । न जाने कहाँ की पत्ती पिलादी । अब बहुत नहीं सहारी जाती । फिर भी तुम जानो होश नहीं खोया है ।"

"हाँ, हाँ, आप क्या साधारण हैं ।"

महन्तजी बातों में फूले तो कहने लगे, एक जमाना था जहर की लकीर सिल पर खिचवाकर पीता था । मजाल है चढ़ जाय चेतन खो दे । और तुम से क्या कहूँ । एक बार मैं साँप का बच्चा निचोड़ कर पी गया । तीन दिन तक होश नहीं भया । चौथे दिन उठा । और कोई होता तो 'टें' बोल गया होता महन्त ब्रह्मानन्दजी, मेरे ही पौरख थे जो सँभाल गया ।"

ब्रह्मानन्द ने पूछा--"कैसे-कैसे, क्या जान-बूझकर पी गये आप ?"

"नहीं भैया, कुछ दिनों मेरा नियम रहा कि सवेरे चार बजे उठकर भंग

छानता था। रोज रात को हँडिया में आधा पाव भाँग भिगो दी और उठकर पीस डाली तब जंगल जाता था। एक दिन न जाने कैसे हँडिया में साँप का बच्चा गिर गया। मैंने अँधेरे उठकर उसको भी भाँग के साथ निचोड़ डाला। बस, फिर क्या था।"

"तो नशा उतरने के बाद मालूम हुआ होगा कि साँप का बच्चा भाँग में गिर गया।"

"अरे, नहीं वहीं हमारा एक साथी था उसी ने देखा। वह तो समझ गया था कि बाबा सुन्दरगिरि मरा, अब क्या बचेगा। पर जब मेरा नशा उतरा तब उसने बताया।"

"धन्य हैं आप।" ब्रह्मानन्द ने हँसकर कहा।

"अरे अब क्या धन्य है ब्रह्मानन्दजी। पाँच-पाँच सेर दूध एक जगह खड़ा पी जाता था। आध सेर घी, सेर-सवा सेर मलाई मामूली बात थी।"

"यह शरीर उसी समय का है।"

"सौ से ऊपर हूँ। हाँ, अब भी बराबर वाले का हाथ पकड़ लूँ तो छूट नहीं सकता। जब जवान था तो एक बार बड़े महन्तजी के जमाने में चोर आ गये तो अकेले मैंने ही तीन चोरों को पकड़ लिया। जब और लोग आ गये तभी उन्हें छोड़ा। एक घण्टे तक तीनों से लड़ाई होती रही। तभी से मेरा बायाँ हाथ टूटा है।"

"महन्त ने हाथ दिखाया।"

महन्त ने आत्मानन्द को देखकर पूछा, "यह कौन है?"

"आत्मानन्द।"

"कहाँ के हैं?"

"ऋषिकेशवाले स्वामी हरिशरणानन्द के पास रहे हैं।"

"वह जो राजद्रोही है। मूर्ख, साधु कुल-कलंक।"

ब्रह्मानन्द चुप रहा। आत्मानन्द से न रहा गया तो बोला—"वे असाधारण स्वामी हैं महन्तजी।"

"अरे मैं जानता हूँ उस लफंगे को। एक अंग्रेज को मारकर साधु हो गया

वह । उसने साधुओं को कलंकित किया है । क्या नाम है तुम्हारा" ?

"ब्रह्मानन्द ने उत्तर दिया, आत्मानन्द ।"

"हाँ, तो आत्मानन्द, तुम्हें क्या वही गुरु मिला । वह तो राजद्रोही है ब्रह्मानन्दजी । मैंने ही उसे बचाया नहीं तो लटक गया होता फाँसी पै ।"

"आपने कैसे बचाया ?"

"हम सब जानते थे । हमें उसने एक बार यही काम करने को कहा तो हमारे गुरु ने हमें चेताया—'ऐसा काम नहीं करना बच्चा । हमारे शास्त्रों में राजा कैसा भी हो है तो राजा ही । और हमें क्या लेना-देना है ।' मैं उस समय जवान था । वह तो रेल मास्टर था साधु हो गया न जाने कैसे ? साधु भेस में सब छिप जाता है भैया । यह भेस है ही ऐसा । गंगाजल है गंगाजल, इसमें गन्दा पानी भी शुद्ध हो जाता है । उसने मेरे ऊपर ऐसा चक्कर चलाया वह तो कहो, भाग्य था सो बच गया । नहीं तो क्या मैं आज महन्त होता ? शिव ! शिव ! हाँ, तो क्या तुमने भी किसी को मारा ?"

"मैं तो उनको महान् मानता हूँ महन्तजी । उनके अपने जीवन का एक-एक क्षण देश की सेवा में बीता है ।" आत्मानन्द बोल पड़ा ।

"देखो जी क्या नाम है तुम्हारा मेरे सामने उस नीच का नाम न लेना । मैं जानता हूँ वह कितना बना हुआ है । वह नीच, कुकर्मी, हत्यारा कहीं का ।" बहुत देर तक वह गाली देता रहा । आत्मानन्द से न रहा गया तो बोला—

"चुप रह बदमाश कहीं का ।"

आत्मानन्द की तेज डाँट से एक बार वह सहमा फिर गाली देने लगा । "मुझे बदमास कहता है । बदमास, मैं बदमास हूँ । एक सौ बरस का बूढ़ा । बदमास । ठहर, तेरी ऐसी की तैसी । साले, जान न ली तो कहना ।" वह तो आगबबूला हो गया । जैसे पागल हो गया हो । लोग समझाते, शान्त करते पर जैसे उसके हृदय में प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी । इसी समय एक व्यक्ति जो पास बैठा था बोल पड़ा—"वे तो मर गये अब ।" आत्मानन्द को गहरा धक्का-सा लगा । पूछा,

"कब ?"

"एक महीना हुआ।"

ब्रह्मानन्द ने सुना तो उसे भी दुःख हुआ। महन्त भंग के नशे में आत्मानन्द और सब को बुरा कह रहा था। ब्रह्मानन्द ने पूछ दिया—"आपकी निगाह में कोई अच्छा आदमी है महन्तजी ?"

"अच्छा, अच्छा तो अपना आप है किसी ने कहा है, मुझ से बड़ा कौन। इसीलिये तो गीता में कहा है, 'सिबोहम्' मैं सिव हूँ। साच्छात् भगवान सिवजी। वह इतना कहकर ठठाकर हँस पड़ा। चश्मे में भी आँखें नशे से झूम रही थीं। थोड़ी देर बाद फिर ध्यान आया तो देर तक आत्मानन्द को गाली देता अनाप-शनाप बकता रहा फिर उठकर साधुओं की दूसरी मण्डली में जा बैठा।"

आत्मानन्द ने पूछा—"इसी का चेला होने को कहते थे आप ?"

"नशे में है वैसे मन का साफ है।"

"मन के साफ क्या ऐसे होते हैं।" मेरी तो इससे एक दिन भी नहीं पट सकती।"

सुन्दरगिरि ने आत्मानन्द के सम्बन्ध में सब जगह फैला दिया कि वह राजद्रोही है। अंग्रेज़ों को मारकर आया है। बड़ा खतरनाक है। थोड़ी देर में ही हर साधु छिपकर उसे देख गया। एक भय का वातावरण सारे आश्रम में फैल गया। सुन्दरगिरि ने महन्त पर जोर दिया कि यह आदमी यहाँ रहा तो तुम सब मारे जाओगे। भला इसी में है कि रातोंरात पुलिस को खबर करके इसे पकड़वा दो। रात के बारह बजे तक सब के मुँह पर आत्मानन्द की चर्चा रही। महन्त भी डर गया। सुन्दरगिरि से न रहा गया तो वह दो चेलों के साथ पुलिस स्टेशन गया। वहाँ उसने बताया कि "आश्रम में एक आदमी बीसों अंग्रेजों को मार कर आया है। आश्रम खतरे में है।"

उस समय हैड कानिस्टबिल ड्यूटी पर था। उसने सुना तो थानेदार को बुलाया। थानेदार घबड़ा गया। उसने उसी समय सुपरिटेण्डेण्ट को खबर दी। वह अंग्रेज था। रात के चार बजे कुछ पुलिस के आदमियों ने आश्रम को घेर लिया। आत्मानन्द पकड़ लिया गया। जिस समय आत्मानन्द को पुलिस ले जा रही थी उस समय सुन्दरगिरि कह रहा था—

"साला, साधु बना फिरे है कुल-कलंक। ले जाओ इसे, फाँसी दे दो।"

गाली से भी जब शान्ति न मिली तो उसने आत्मानन्द के जाते-जाते मुँह पर थूक दिया और दो-तीन थप्पड़ जड़ दिये।

आत्मानन्द कई दिनों तक थाने में बन्द रहा। मजिस्ट्रेट के सामने निरपराध सिद्ध होने पर भी उसने बातचीत से ही उसे क्रान्तिकारी मानकर अनिश्चित अवधि के लिये नजरबन्द कर दिया।

ब्रह्मानन्द ने बहुत हाथ-पैर मारे। लोगों को समझाया किन्तु कोई भी उसकी मदद करने को तैयार न हुआ। उसे रह-रहकर लगता जैसे आत्मानन्द को स्टेशन से यहाँ लाकर वही उसके जेल जाने का कारण बना है। अब उसकी आँखों के सामने निरपराध, देश-भक्त, सच्चे आत्मानन्द की मूर्ति नाचती रहती। कुछ दिनों के सहयोग में ही उसने आत्मानन्द को पहचान लिया था। उस समय उसकी बात से असहमत होते हुए भी उसके प्रति मन में एक आदर का भाव था। वह मानता था मनुष्यता के लिहाज से आत्मानन्द उससे बहुत ऊँचा है। यही सब विचार अब उभर-उभरकर उसके सामने आते। उस दिन आत्मानन्द ने उसके कहने पर भी मण्डली के साथ भोजन नहीं किया था। बाजार से चने लाकर उसने खा लिये थे। उसने कहा था, "बिना परिश्रम किये इस तरह का भोजन पाप है। मेरा इसमें कोई सहयोग नहीं है। मैंने पिछले दिनों चुराकर रोटी खाई। वही मुझे जला रही है, आदि आदि।"

ब्रह्मानन्द बहुत देर तक इस तरह की बातें सोचता रहा। उसने माना, आत्मानन्द के कंकाल शरीर में जैसे सत्य सब ओर से चमक रहा हो। पुलिस के पकड़कर ले जाने पर भी आत्मानन्द दुखी नहीं था। भय जैसे उसे छू नहीं गया। जाते समय जब ब्रह्मानन्द ने उससे कहा, आत्मानन्द, मुझे दुख है कि मैंने तुम्हें इस मुसीबत में डाला तब उसने उसी सहज भाव से कह दिया—"काश! मैं कुछ कर पाता।" और चला गया।

उत्सव के बाद भी ब्रह्मानन्द सहारनपुर में कई दिन ठहरा। उसने वकीलों से सलाह ली, अफसरों से मिला। उसे मालूम हुआ राजद्रोह के मामले में सरकार बहुत कम किसी की सुनती है। मिलने के लिये कई प्रार्थना-पत्र भेजने पर

भी उसे इजाजत नहीं मिली। उसने वाइसराय के नाम आत्मानन्द की निरपराधिता सिद्ध करते हुए एक प्रार्थना-पत्र भेजा। उसका भी कोई जवाब न मिला। अन्त में वह हारकर वृन्दावन लौट गया।

आत्मानन्द अब मेरठ जेल में था। जिस दिन आत्मानन्द को मुक्ति मिली उसी दिन और भी कैदी रिहा हुए। बातों-बातों में उसे एक व्यक्ति के मुंह से चिदम्बरं का नाम सुनाई दिया। आत्मानन्द की उत्सुकता बढ़ी। वह उस समय निरपेक्ष भाव से यह सोचता हुआ बाहर दरवाजे पर खड़ा था कि कहाँ जाय। उसने सुना तो उन लोगों के पास गया। एक से पूछा—"क्या चिदम्बरं को आप जानते हैं ?"

"सुना है कोई राजनीतिक कैदी है।"

"तो फिर क्या बात है उसके सम्बन्ध में ?"

"उसे फाँसी हो रही है।"

"क्यों ?"

"यह तो नहीं मालूम, ऐसे ही उड़ती खबर है। और भी हैं।"

आत्मानन्द जड़ की तरह खड़ा रहा। वे लोग चले गये। फाटक पर सन्तरी खड़े पहरा दे रहे थे। उनमें से एक ने देखा तो बोला,

"फाटक से हट जाओ !"

"क्या चिदम्बरं को फाँसी हो रही है ?"

"हमें क्या मालूम। यहाँ तो रोज ही ऐसा होता है। जाओ।"

वह हटकर एक कोने में खड़ा हो गया। आत्म-बेसुध-सा काफी देर तक खड़ा रहा तो एक सन्तरी ने उसे वहाँ से भी हटा दिया। उस समय कई बड़े अफसर आ-जा रहे थे। उनके बाद कुछ सिपाही। वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे, किस से पूछे। बेचैनी और घबराहट से उसे पसीना छूट रहा था। पैर काँपने लगे थे। वह बाहर जाकर एक कोने में बैठ गया। आँखें खुली होने पर भी चिदम्बरं की मूर्ति उसके सामने नाचने लगी। उसे ध्यान आया चिदम्बरं बड़ा वीर है। प्रथम बार जब उसने चिदम्बरं को देखा था तभी पाया उसकी आँखों में एक उज्ज्वल प्रकाश लहराता रहता है।

कर्त्तव्य के लिये दृढ़ता, आत्म-संयम, लगन, स्फूर्ति का जैसे वह एक अद्‌भुत ज्योति-पुंज है। उसे फाँसी हो रही है, उसे फाँसी हो रही है, उसे फाँसी दी जा रही है फाँसी,......चिदम्बरं को, क्यों, रोम-रोम से यह प्रश्न उसकी आत्मा, मन में गूंजने लगे। वह सोच रहा था निश्चय ही उसके द्वारा कोई महाकाण्ड घटित हुआ है। चिदम्बरं असाधारण व्यक्ति है। वह और भी बेचैन हो उठा। वहाँ काफी भीड़ थी। लोग कैदियों से मिलने के लिये खड़े थे। वह अपने में खोया खड़ा था। वह भीड़ चीरकर सड़क पर आकर खड़ा हो गया। फिर फाटक के पास गया। उस समय जेल का एक नौजवान अधिकारी निकला। वह उसके पीछे हो लिया। जरा दूर चलकर बाहर बनी कोठियों की तरफ बढ़ा तो वह भी पीछे चला। नौजवान ने पीछे मुड़कर उसे आते देखा तो खड़ा होकर पूछने लगा—

"क्या है, इधर क्यों आ रहा है ?"

हाथ जोड़ते हुए उसने नरम शब्दों में कहा,

"आपसे एक बात पूछनी है, यदि कष्ट न मानें तो......"

वैसे ही कड़े चेहरे से उसे घूरकर बोला,

"तू अभी रिहा हुआ है ?"

"जी।"

"क्या है ?"

"सुना है, चिदम्बरं को फाँसी हो रही है।"

"कौन चिदम्बरं।" फिर जैसे याद आ गया।

"अगले सप्ताह।" वह चल दिया।

वह उसके पीछे दौड़ा। "क्या मैं उसे देख सकता हूँ ?"

"नहीं, वह राजनीतिक कैदी है। उसने अंग्रेजों की हत्या की है।" कहकर वह सामने की कोठी में चला गया।

घर में घुसते ही कुछ बच्चों ने बाहर से घेर लिया। वह उन्हें थपथपाता प्यार करता घर में घुस गया। आत्मानन्द एक पेड़ के नीचे खड़ा रहा। उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। क्या करे। उसके पैर मन-मन के भारी हो रहे थे।

चिदम्बरं की चिन्ता ने उसे अभिभूत कर दिया। "क्या एक बार भी उसे नहीं देख सकता ?"

अफसर थोड़ी देर बाद कोठी के बरामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठ कर अखबार पढ़ने लगा। कुछ कैदी पास आकर खड़े हो गये। एक ने खाने का कुछ सामान लाकर सामने पड़ी मेज पर रख दिया। एक कैदी ने आत्मानन्द को देखा तो साहब से कहा—अखबार से नजर उठाकर उसने आज्ञा दी—"भगा दो इसे।"

दूर से ही कैदी ने ललकारा—"भाग जा यहाँ मत खड़ा हो, जा।"

आत्मानन्द फिर भी खड़ा था अभिभूत, स्तब्ध, निश्चल, दिग्भ्रान्त सा। साहब ने देखा तो अपने आप चिल्लाया, "गया नहीं, भगा दो इसे।"

कैदी नौकर दौड़ा हुआ आया और एक थप्पड़ उसने आत्मानन्द के मुँह पर मारा।

आत्मानन्द रिरियाता बोला, "मेरे एक भाई को फाँसी हो रही है। मैं उससे मिलना चाहता हूँ।"

"अरे तो क्या वह यहाँ है।" धीरे से उसने कहा, "साहब के पैरों पड़ जा। वही कर सकें हैं।"

आत्मानन्द दौड़ कर आया और बरामदे की सीढ़ियों पर सिर टिका कर बोला,

"क्षमा करें, अब आपका ही सहारा है।"

नौजवान की पत्नी भी बाहर आ गई थी। वह उठा और धमकाता बोला,

"जायगा कि नहीं बदमाश।"

पत्नी बीच में पड़ी। वह नरम हुआ। फिर बोला, "ऐसे पचासों आते हैं।"

"फिर भी सुन तो लो, क्या कहता है। हाँ, क्या है बोल ?"

"मैं चिदम्बरं को देखना चाहता हूँ एक बार।"

पत्नी के पूछने पर नौजवान ने बताया तो बोली—

"साहब कहते हैं—तुम नहीं मिल सकते। वह राजनीतिक कैदी है। तुम कौन हो उसके ?"

"मैं एक बार उसे देखना भर चाहता हूँ। बड़ी कृपा होगी।"

"वह साधु है अगर तुम रिश्तेदार होते तो मिल सकते थे।" नौजवान ने कहा।

फिर बोला, "तू भी तो राजनीतिक कैदी है। जा, चला जा, क्यों मेरे ऊपर मुसीबत डाल रहा है।" वह उठकर खड़ा हो गया। "जा भाई।"

"क्या किसी तरह नहीं मिल सकता?" एक निराशा भरी आवाज में उसने दुहराया। पत्नी नौजवान का मुँह देख रही थी।

"हो सके तो कोई इन्तजाम कर दो। फाँसी हो रही है तो कोई भी मिल सकता है।"

नौजवान आत्मानन्द से बोला—"तुम कौन हो?"

"वह मेरा साथी है।"

"कैसा साथी?"

आत्मानन्द घबराया। क्या उत्तर दे। बोला, "मैं भी संन्यासी हूँ वह भी संन्यासी है। हम दोनों साथ रहे हैं।"

"अच्छा, एक प्रार्थना-पत्र लिखकर दे दो। उससे पूछा जायगा, मैं कोशिश करूंगा। जाओ।"

आत्मानन्द लौट आया। बाजार जाकर उसने कागज खरीदकर प्रार्थना-पत्र लिखा और जेल के आफिस में दे आया। उसने वृन्दावन ब्रह्मानन्द को तार दिया। वह उत्तर के लिये धर्मशाला में ठहर गया। उसका सारा दिन बड़ी बेचैनी से कटा। न उसने कुछ खाया, न पिया। चुपचाप धर्मशाला के दालान में बैठा चिदम्बरं के सम्बन्ध में सोचता रहा। थका होने पर भी उसे नींद नहीं आई। जब-तब उसे लगता चिदम्बरं का जीवन सफल हो गया। न जाने वह किस दशा में क्या सोच रहा होगा? ब्रह्मानन्द को तार मिला तो पहली गाड़ी से चल पड़ा। मेरठ में उसकी गद्दी के एक सेठ भक्त थे। वह सीधा उनके घर पहुँचा और आदमी भेजकर उसने आत्मानन्द को बुलाया।

फटेहाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, बिखरे बाल, पिचका, कान्तिहीन चेहरा अपने में खोया बेसुध-सा आत्मानन्द आया तो ब्रह्मानन्द देखता रह गया। सेठ के यहाँ उसे इस दशा में प्रवेश करते देखकर उसमें आत्मानन्द के प्रति उपेक्षा का भाव

जागा। उसे लगा, इसके कारण हो सकता है सेठ उसे भी हीन समझे। किन्तु अब क्या हो सकता था। वह रूखे भाव से उसे देखता रह गया जैसे उसे जानता ही न हो। उसने आत्मानन्द से बैठने को भी नहीं कहा। खड़े ही खड़े आत्मानन्द बोला—"चिदम्बरं को फाँसी दी जा रही है अगले सप्ताह।"

"क्यों ?" वह चौंककर खड़ा हो गया।

आत्मानन्द हँसा, "शायद देश-भक्ति के कारण, मैंने उससे मिलने का प्रार्थना-पत्र दिया है। सेठ भी वहीं बैठा था। आत्मानन्द की देश-भक्ति की बात सुन कर वह घबरा गया। बोला कुछ भी नहीं। ब्रह्मानन्द भी कुछ न समझ सका। आत्मानन्द से उसे ऐसी बात सुनने की आशा नहीं थी। इसी बीच सेठ ने कहा, 'स्वामीजी, यह कौन है, देखिये, हम लोग······।"

"घबराइये मत सेठजी, मैं इनसे बाहर बात करता हूँ। ब्रह्मानन्द सेठ के बड़बड़ाने पर आत्मानन्द को बाहर बाग के कोने में ले गया।"

"तुम्हें मालूम होना चाहिये मैं कहाँ ठहरा हूँ। उसके सामने·····, हाँ, अब कहो।"

आत्मानन्द को परिस्थिति का ज्ञान हुआ जैसे सोकर उठा हो। उसने विस्तार से कह दिया। ब्रह्मानन्द बोला—"हम जिस जगह ठहरे हैं उसको देखते हुए चिदम्बरं से मैं नहीं मिल सकता। न मैं उसके सम्बन्ध में कुछ सुनना ही चाहता हूँ। यह मेरी प्रतिष्ठा, गद्दी के महत्त्व का प्रश्न है। तुम चाहो तो मेरे साथ वृन्दावन चल सकते हो। मैं दो-तीन दिन रहकर वृन्दावन लौटूंगा। इसके साथ ही उसे ठहराकर वह अन्दर गया और बाहर आकर उसने बीस रुपये आत्मानन्द को दिये। "लो कपड़े बनवाओ और अपने को ठीक करो।" आत्मानन्द हतबुद्धि सा खड़ा रहा। ब्रह्मानन्द से इस प्रकार के व्यवहार की उसे आशा नहीं थी। उसने रुपये नहीं लिये।

"क्यों, क्या बात है ले लो काम आवेंगे ?"

"मुझे तुम्हारे रुपये नहीं चाहियें। मुझे कुछ नहीं चाहिये।" इतना कहकर वह चलने लगा। जब वह कोठी के फाटक से बाहर होने लगा तो ब्रह्मानन्द ने फिर बुलाया।

आत्मानन्द बोला—"जो कुछ कहना है वहीं से कहो। मैं अन्दर नहीं आ सकता।" वह चला आया। निराश, क्षुब्ध ब्रह्मानन्द के अतीत स्नेह से टूटा वह पागल की तरह चला जा रहा था। विक्षिप्त-सा धर्मशाला में अपनी जगह आकर लेट गया। अब वह अपने भाग्य और ब्रह्मानन्द के व्यवहार पर क्षुब्ध था। उसे लगा उसने ब्रह्मानन्द को अपना समझकर कितनी भूल की है। क्षोभ से उसका मन जलने लगा। उसने पाया, आज वह कितना निरीह है, कितना व्यर्थ है ? जैसे बिना सहारे, बिना आश्रय के वह अगाध, अपार समुद्र में डूब रहा है। इसी समय धर्मशाला का आदमी आकर कह गया था, दो दिन हो गये, कल वह धर्मशाला छोड़ दे।

इससे उसे और भी धक्का लगा। उसने जेब टटोली तो उसमें चार आने पड़े थे। वह उठा और बाहर जाकर चने और गुड़ ले आया।

धर्मशाला के दालान में उसे आलमारी मिली थी। कुछ यात्री आ गये तो मुनीम ने दरवाजे के पास जगह देते हुए कहा, "तुम्हारे पास सामान नहीं है दरवाजे के पास बैठ जाओ। यह आलमारी खाली कर दो।"

आत्मानन्द दरवाजे के पास चला गया। दूसरे दिन सबेरे धर्मशालावाले ने फिर कहा—

"जाओ, तीन दिन हो गये।"

"मैं एक चिट्ठी की इन्तजार में हूँ।"

"कहाँ से आयगी ?"

"जेल से।"

"क्या मतलब ?" धर्मशाला का मैनेजर चौंका।

"मेरे एक भाई को फाँसी हो रही है। उससे मिलने को मैंने प्रार्थना-पत्र दिया है।" मैनेजर फाँसी का नाम सुनकर जैसे निर्जीव हो गया। उसे लगा, ऐसे आदमी का भाई है तो अवश्य यह भी डाकू, हत्यारा, चोर होगा। उसके मन में आया चिल्ला पड़े। पुलिस को बुला ले। फाँसी शब्द से ही वह डर गया था। इसी समय आत्मानन्द बोला—"मैनेजर साहब, घबराइये मत, मैं चोर, हत्यारा नहीं हूँ।"

"मेरा भाई देश-भक्त है। इसी की सजा उसे दी जा रही है।"

पास ही एक आदमी खड़ा सुन रहा था। बोल पड़ा—"पढ़े-लिखे की भाषा बोलता है। अवश्य कोई पढ़ा-लिखा है मैनेजर साहब।" वह फिर भी मुँह लटकाये निस्तब्ध खड़ा था। जैसे उसे होश आया। वह साथी पास सरक आया।

"क्या नाम है उनका?"

आत्मानन्द ने देखा, आदमी समझदार है सहानुभूति के शब्द सुनकर जवाब दिया।

"स्वामी चिदम्बरं।"

"क्या मदरासी है?"

"संन्यासी है।"

"तुम्हारा नाम?"

"आत्मानन्द।"

"क्या केस है?"

पूरी तरह मैं भी नहीं जानता। मैं भी परसों ही जेल से रिहा हुआ हूँ।

"किस जुर्म में पकड़े गये थे?"

"राजद्रोह में।"

"क्या किया था?"

"जो राजद्रोही करते हैं।"

वह आदमी आत्मानन्द को ध्यान से देखने लगा।

"कुछ खाया है?"

"कल चने खाये थे।"

"हूँ आइये, आप मेरे साथ आइये।"

"कहाँ?"

"मैनेजर बोल पड़ा, जाओ महाराज जाओ। ये पण्डित हैं। बड़े आदमी हैं।"

आत्मानन्द पीछे-पीछे चल पड़ा। थोड़ी दूर गली में एक मकान का दरवाजा खुलवाकर उसने बैठक में बिठाते हुए कहा—"यहाँ रहिये। मुझे अपना

ही समझें।"

काफी सजी हुई बैठक थी। किनारे पर एक पलँग, तीनों तरफ कुर्सियाँ। बीच में छोटी मेज। दीवार में बड़ी-बड़ी तस्वीरें। हवादार कमरा देखकर आत्मानन्द कुर्सी पर जा बैठा।

"मैं प्रयत्न करूंगा आपकी चिदम्बरं से मुलाकात हो जाय।"

"आप कौन हैं ?"

"मैं।" वह हँसा, थोड़ी देर बाद बोला, "आपका भक्त।"

आत्मानन्द थोड़ी देर के लिए संकोच में पड़ गया। गंगा में डूबने के समय से लेकर आज तक वह, कान्ता के घर को छोड़कर ऐसे घर में नहीं ठहरा था। उसे लग रहा था, जैसे यह सब उसके लिए अकल्प्य है, सब अनुमानातीत। कितना लम्बा समय दूसरी दुनियाँ को पार करके आज वहाँ लौटा है जहाँ की उसे कभी आशा नहीं थी। घर की दीवारें, सजावट का सामान जाना-सा लगा। जैसे कोई एक युग के बाद जेल से लौटा हो। वह समझ नहीं रहा था, एकदम यह कैसे हो गया। वह नवयुवक भीतर जाकर एक दूध का गिलास और कुछ सूखी मेवा ले आया। "लीजिए, आप ने खाया भी नहीं है। अब भोजन बनेगा तब तक यह ले लीजिए।" वह भूखा तो था ही खाने लगा। दूध पीकर जैसे उसकी चेतना जागी। इतना स्नेह बहुत दिनों के बाद मिला था। वह भीतर ही भीतर उत्फुल्ल हो उठा।

"क्या मैं अपने हितू का नाम जान सकता हूँ ?"

"देवेन्द्र शर्मा।"

"बहुत ठीक, बड़ा आभारी हूँ।"

आत्मानन्द बैठा रहा। शर्मा ने कहा, "नहाने के लिए पास के कमरे में पानी है। उसके साथ टट्टी।" इतना कहकर भीतर चला गया। आत्मानन्द के कपड़े काफी मैले थे। एक धोती थी। लँगोटा पहने वह स्नानागार में जाकर कपड़े धोने लगा। धोती उसने सुखा दी बाहर आँगन में। नंगे बदन एक परना पहनकर वह बैठक में आ बैठा। शर्मा उसी समय एक धोती ले आया।

"आज बहुत दिनों बाद नहाया हूँ। कपड़े नहीं थे।"

"चाहें तो हजामत बनवा लीजिए।"

"नहीं, ऐसे ही ठीक है। कृपा करके चिदम्बरं से मिलने की व्यवस्था कर दीजिये। उससे मिलने के बाद चला जाऊँगा।"

"कहाँ?"

"ऐसे ही कहीं न कहीं तो जाना ही पड़ेगा। आप को कब तक कष्ट दूँगा।"

शर्मा फिर किसी काम से उठ गया। आत्मानन्द आलमारी में रखी किताबें देखने लगा। हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत कई भाषाओं की पुस्तकें थीं। किताबें रख कर वह लेट गया। इन पिछले दिनों के घटना-चक्र का खयाल करके वह सोच रहा था, जहाँ मनुष्य के प्रयत्न के द्वार बन्द हो जाते हैं वहाँ प्रकृति एक नया द्वार खोल देती है। जैसे कोई अजानी गति उसे एक जगह से दूसरी जगह ले जा रही हो। स्टेशन पर उतरते ही ब्रह्मानन्द का मिलना, साधु-समागम, फिर पकड़ा जाना जैसे सब अपने आप होता जा रहा है। आज भी कोई सहारा न दीखने पर उसने एक सहारा पा लिया। किसने किया सब? मनुष्य के कर्तव्य के प्रति पूरी निष्ठा रखने पर भी उसने पाया कोई अज्ञात शक्ति उसे कहीं से कहीं ले जाकर पटक देती है। वह अज्ञात क्या है, कौनसा बन्धन है जो उसे चला रहा है? क्या है यह सब, ईश्वर, माया, भाग्य। वह हँसा, जीवन से पलायन करते ही मनुष्य इधर-उधर मारा फिरता है। लोहे को पानी की धार नहीं बहा पाती जब कि लकड़ी बहती रहती है। कमजोरी ही मनुष्य का लकड़ी होना है जिनके सामने ध्येय होता है कोई भी गति, कोई भी प्रवाह, उनको अपने स्थान से विचलित नहीं करता। वह अब तक बहा ही है। उसे चिदम्बरं का खयाल आया। न जाने क्या किया होगा चिदम्बरं ने। निश्चय ही उसके भीतर की दृढ़ता ने उसे सार्थक बना दिया। जीवन यही है। चिदम्बरं नगण्य होते हुए भी महान् है। उसने स्वतन्त्रता की आग को जलाये रखा है, किन्तु वह······आत्मानन्द आत्म-मंथन में डूब गया। यथासमय शर्मा भोजन ले आया। भोजन करते समय भी वह सोच रहा था। खाने के बाद वह लेटा तो उस समय भी वह अपने जीवन का 'स्टाकटेकिंग' करता रहा। शर्मा उसे अपने में खोया पाता तो कुछ पूछने की इच्छा रहते हुए चुप हो जाता। उसके (शर्मा के) मन में रह-रहकर यही विचार

आता, यह व्यक्ति अवश्य कोई रहस्यमय है। क्या ही अच्छा हो वह खुले और अपने सम्बन्ध में कुछ कह सके।

सम्पन्न परिवार में जन्म लेने के कारण देवेन्द्र शर्मा को कोई चिन्ता नहीं थी। तीन बड़े मकानों का किराया आता। पढ़ने-लिखने का शौक था। सभा-सोसाइटी में जाता और देश-भक्ति का शौकीन। जैसे यह भी कोई नशा या नाटक का खेल था। इसीलिये आत्मानन्द को देश-भक्ति में सजा हुई यही विचार उसके लिये काफी था। इसकी सूचना उसने बाहर जाकर अपने मित्रों को दे दी। बड़ा उत्साह था उसमें, उसे कभी-कभी लगता जैसे आत्मानन्द को अपने यहाँ ठहराकर ही कोई बड़ा काम कर डाला है। पाँच-छः बजे शाम को जब कई मित्र आये तो उसने स्वामीजी का परिचय सबको देते हुए सब के सम्बन्ध में बताया। सभी नवयुवक थे। एक बजाज की दुकान करता था। दूसरा कहीं नौकर था। तीसरा कालेज में पढ़ता था। एक रिटायर्ड पड़ौसी थे। इसी समय रिटायर्ड बोले, "स्वामीजी, आप तो देश-देश घूमे हैं। क्या अनुभव है आपका ?"

"भाई, जिन्दगी रात-दिन की तरह है, सुख-दुख से भरी। एक वाक्य में यही इसका उत्तर है। मैंने तुम संसारी लोगों की तरह पेट के लिए कोई काम नहीं किया है। मैं साफ पानी में तैरती, उछलती-कूदती, मछलियों की तरह तट से संसार को देखता रहा हूँ। इससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य प्रयत्न-शील है।"

किसी की कुछ समझ में नहीं आया। बजाज का लड़का बोला—"जैसे हम कपड़े को फाड़कर दो टुकड़े कर देते हैं इसी तरह दो टूक बात कहिये ?"

"तुम क्या मानते हो। तुमने भी तो जीवन पाया है, क्या अनुभव है तुम्हारा ?" वह ही-ही करके हँसा। नौकरी करने वाला बोला, "जिन्दगी एक रट है बस। सभी एक रट में पड़े हैं। जो इस रट से बाहर निकलता है वही कुछ नया कर दिखाता है।" "हाँ, जैसे साफ शीशे में सब साफ दिखाई देता है इसी तरह एक कोई ऐसा होता है जिसमें देश के दुख, त्रास-कष्ट, आचार, पुराने विचार, रूढ़ियाँ प्रतिबिम्ब पाती हैं वही उनके दोष समझकर यथार्थ चिकित्सक की तरह जीवन में नये मोड़ देता है। बुद्ध, शंकर ऐसे ही थे।" आत्मानन्द ने बीच

में बात काटकर कहा। फिर कहने लगा—

"फिर भी मैं मानता हूँ कि सम्पूर्ण सृष्टि में आकर्षण-विकर्षण, संश्लेषण-विश्लेषण का संघर्ष चल रहा है। आज जिस चीज को हम आवश्यकता उपयोगिता के कारण ग्रहण करते हैं कल उसके प्रति अरुचि, अतृप्ति हो जाती है। हम उसे छोड़ देते हैं। प्रत्येक ग्रहण का अन्त त्याग है। जो इस नियम को नहीं मानता, रूढियों से चिपका रहता है वह नष्ट हो जाता है।"

देवेन्द्र शर्मा ने कहा—"बात तो बहुत बड़ी है किन्तु उदाहरण देकर समझाइये।"

आत्मानन्द बोला, "यही उदाहरण लो, साधु धर्म एक समय आत्मोन्नति के लिए था। फिर उसने विदेशियों के भारत पर आक्रमण के समय राजनीतिक रूप लिया। वह देश के लिये, धर्म के लिये लड़ा, इस तरह उसने देश की रक्षा की किन्तु आज वह एक रूढ़ि है, एक परम्परा है जिसमें अब जीवन का रस नहीं बहता। कुछ उन थोड़े लोगों को छोड़कर जो सच्चे अर्थ में आध्यात्मिक शान्ति चाहते हैं शेष अपंग, मेरुदण्डहीन, अंध-परम्परा के अनुयायी हैं।"

रिटायर्ड सज्जन ने कहा,—"आपकी बात ठीक हो सकती है, किन्तु क्या ये हमें धर्म का उपदेश देकर हमें धर्म-निष्ठ नहीं बनाये रखते?"

'वे स्वयं क्या हैं यह भी कभी आपने देखा है, उनका जीवन कैसा है? क्या कीचड़ में फँसा व्यक्ति दूसरे को कीचड़ से निकाल सकता है?"

"तो हम ही कौन अच्छे हैं। हमारा गृहस्थ समाज ही कौन जागरूक है। विदेशियों का शासन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हमारे देश का व्यक्ति आत्म-चेतना-वंचित, व्यामूढ है।" देवेन्द्र शर्मा बोला।

रिटायर्ड व्यक्ति विदेशियों के शासन की बात सुनकर बोला, "और कोई बात करो देवेन्द्र लल्ला। कोई धर्म की बात हो जाय, कोई कथा वार्ता।"

"धर्म का रूप यदि देश-भक्ति है तो बड़ा विशाल है। केवल कथा-वार्ता तक ही वह सीमित नहीं है।" कालेज का विद्यार्थी बोला।

"ना भैया, ऐसी बात मत करो।" वह रिटायर्ड उठकर चलने लगा।

आत्मानन्द ने हँसकर कहा—"हाँ महाशय जी, ये लड़के विद्रोही हो गये

हैं। आपके साथ इनकी पटरी नहीं बैठ सकती।"

वह कहने लगा—"मैं रिटायर्ड आदमी हूँ, सरकार से पेन्शन पाता हूँ। कल को पेन्शन बन्द हो जाय तो क्या करूँगा, कैसे रहूँगा?" वह उठकर चला गया।

"देखा आपने, यह हमारे बूढ़ों का जीवन है। सारी जिन्दगी रिश्वत लेकर चार मकान बनाये। बहुत सा रुपया है बैंक में। अब भी पेन्शन की चिन्ता है। लड़कों को नौकर करा दिया है। खाता-पीता आदमी है।"

कालेज के लड़के ने उसी समय कहा—"तुम्हारी बात दूसरी है देवेन्द्र, करूँगा मैं भी यही। बी० ए० की परीक्षा देकर नौकरी खोजूंगा। ब्याह हो ही गया है। अब मैं भी नौकरी करूँगा। सरकार की चापलूसी, खुशामद, बेईमानी, मेरा भी यही काम होगा।"

बजाज लड़के ने कहा—"मैं तो स्वतन्त्र हूँ। चाहे जो कुछ करूँ।"

तो उसने कहा—"तुम्हारी स्वतन्त्रता उसी समय तक है जब तक ठीक से दुकान चलती है। क्या तुम दुकान छोड़कर देश का कोई काम कर सकते हो?"

"क्यों नहीं कर सकता, चाहूँ तो रुपया तो ऐसे काम में दे ही सकता हूँ।"

"देवेन्द्र बोला, तो इन (आत्मानन्द) के एक साथी को फाँसी हो रही है। रुपया दो तो हम लोग अपील करें।"

"कैसे, कौन है वह?"

आत्मानन्द ने समझाया तो बहुत देर तक चुप रहने के बाद कहने लगा—"देवेन्द्र, तुम तो जानते हो मैं चाचा के कहे बिना कुछ भी नहीं कर सकता। सौ-पचास की बात हो तो चुराकर दे दूं। वह जाहिर न करना, मैं पचास दे दूंगा।"

आत्मानन्द ने उसी समय कहा—"नहीं रहने दो। चिदम्बरं स्वयं अपील नहीं करना चाहेंगे। चिदम्बरं देश के लिये फाँसी पर चढ़ रहे हैं।"

देवेन्द्र बोला—"आत्मानन्द भी इसी कारण जेल गये थे।" लोग भयभीत हो गये। स्वयं देवेन्द्र पर भी वातावरण का प्रभाव हुआ। वह सोचने लगा, हो सकता है मुझ पर इस आदमी के कारण कोई आपत्ति आ जाय तो क्या करूँगा? लेकिन बाहर से अपने को उसे दृढ़ बनाते हुए कहा—"मैं इन बातों की पर्वा नहीं

करता।"

"किस बात की?" बजाज का लड़का पूछ बैठा।

"अरे तुम नहीं जानते। देवेन्द्र को किसी की क्या परवाह है। खाता-पीता आदमी है।"

कालेज का लड़का कहने लगा, "तो फिर आज क्या प्रोग्राम है?"

"देवेन्द्र ने बात टालकर दूसरा प्रसंग छेड़ते हुए कहा—मैं तो आज नौटंकी देखना चाहता हूँ। चलो न, मजा रहेगा।"

"अरे यार है तो ठीक।" बजाज के लड़के ने कहा।

"स्वामीजी, आप भी देखिये न। बड़ा मजा आवेगा।" बजाज का लड़का बोला।

"क्या?"

"नौटंकी का खेल हो रहा है। आज रात को। बाहर से मण्डली आई है।" नौकर लड़के ने कहा।

देवेन्द्र अपने विचारों में खो गया। बोला कुछ भी नहीं।

आत्मानन्द ने उत्तर दिया—"जो मैं देख रहा हूँ वह किसी खेल से कम नहीं है। आप लोग देखिये।"

देवेन्द्र का नौकर दूध और जलपान लाया। सब लोग खा-पी कर हा हा-हू हू करते चले आये। देवेन्द्र सब को विदा करके लौटा तो आत्मानन्द ने कहा—

"चिदम्बरं से मिलने के लिये क्या आपने कोई प्रयत्न किया, कह रहे थे न?"

"कल कोशिश करूँगा। मेरे एक जान-पहचान के हैं उनसे कहूँगा।"

"आप उदास हैं?"

"नहीं तो।" जैसे चौंककर देवेन्द्र ने जवाब दिया।

"देखिये, मेरे कारण आप पर कोई विपत्ति नहीं आनी चाहिए। मेरा क्या है।"

"मैं भी यही सोचता हूँ। यहाँ पास ही थानेदार रहते हैं।"

"तो मैं चला जाऊँ ?"

"मैं धर्मशाला में आपका प्रबन्ध किये देता हूँ। बुरा न मानिये। मेरा नौकर आपको खाना पहुँचा दिया करेगा।

"नहीं, नहीं आप ज़रा भी चिन्ता न करें। मैं अभी जाता हूँ।"

वह आँगन में सूखती धोती उठा लाया।

"ठहरिये, मैं जाकर मैनेजर से कह आता हूँ। वह ठहरने का प्रबन्ध करदे तब जाइये।"

थोड़ी देर बाद लौटकर उसने बताया, "ऊपर एक कमरा खाली है उसी में रहें।"

"ठीक है।"

"आपको अनुचित तो नहीं लगा। मैं मजबूर हूँ।"

"नहीं, नहीं, ऐसी क्या बात है। मैं तो फक्कड़ आदमी हूँ। न कोई आगे, न पीछे। आप मेरे कारण कष्ट में क्यों पड़ें ?"

देवेन्द्र शर्मा को अपने ऊपर ग्लानि हुई। एक बार उसने हिम्मत की, फिर अनागत भय से डर गया। खाना खिलाकर उसने आत्मानन्द को धर्मशाला में पहुँचा दिया।

देवेन्द्र शर्मा के नहीं, स्वयं उसके निरन्तर प्रयत्न से एक दिन उसे चिदम्बरं से मिलने का समय दे दिया गया। देवेन्द्र शर्मा उसके पास आकर मिल जाता। आत्मानन्द को उसने कुछ कपड़े भी लाकर दे दिये।

उस दिन शाम के चार बजे वह चिदम्बरं से मिला। कई फाटक, कई मैदान पार करके दो सिपाहियों के साथ वह उसकी कोठरी के पास पहुँचा। चिदम्बरं भीतर कोठरी में बैठा था। सूचना पाकर वह जंगले के पास आ गया। उस समय शायद वह कुछ पढ़ रहा था। चिदम्बरं को देखते ही जैसे आत्मानन्द का मन भर आया। उसने पीछे होकर आँखें पोंछीं और आगे बढ़ा।

"कहो आत्मानन्द, कैसे हो ? कुछ सफलता मिली ?"

"साधारण-सी, नहीं के बराबर। तुम, मैंने जेल से छूटने पर सुना ?"

"तुम जेल कैसे गये ?"

"वैसे ही एक साधु महन्त ने मुझे शहीद बना दिया। सरकार ने शक में पकड़ लिया। अपनी कहो।"

"जो है सब के सामने है। मैं प्रसन्न हूँ चाही मौत मुझे मिल रही है। जीवन बेकार हो गया था। कोई मार्ग भी नहीं सूझ रहा था।" चिदम्बरं ने प्रसन्न मुद्रा में कह डाला।

"किन्तु तुमने तो कुछ भी नहीं किया ?"

"जो किया उसका पता सरकार को बहुत देर बाद मिला। मेरे जेल में रहते। खैर, कोई बात नहीं। मैं प्रसन्न हूँ। मैं चाहता हूँ स्वतन्त्रता का दीपक जलता रहे। क्या तुम उसे जला सकोगे आत्मानन्द ?"

"मैं उस आग की तरह हूँ जो धुआँ देती है खुलकर जल नहीं पाती। फिर भी······।"

"धुआँ समाप्त होने पर आग जलती है। धोंकते रहो।"

इसी बीच जेलर जो उनकी बातें सुन रहा था बोला, "ऐसी बात मत करो कोई और बात कहना हो तो कहो।"

"मैं तुम्हें अन्तिम बार प्रणाम करने आया हूँ तुम महान् हो चिदम्बरं।"

"स्वामी हरिशरणानन्द की जलाई हुई आग है। वह जलती रहनी चाहिये।" चिदम्बरं ने जेलर की बात की परवाह बिना किये कहा। "तुम प्रतिज्ञा करो आत्मानन्द ! मुझे मरते समय शान्ति मिलेगी।"

"मैं यत्न करूँगा। लाओ पैर बढ़ाओ, अपने चरणों की धूल दो।" आत्मानन्द झुका तो जेलर ने रोक दिया।

"कोई और बात करो। नहीं तो चलो।" वह आत्मानन्द को हटाने लगा तो चिदम्बरं बोला, "तुम तो भारतीय हो जेलर, क्या तुम्हारे मन में कोई ऐसा विचार नहीं उठता।" चिदम्बरं ने अंग्रेजी में जेलर को एक डाँट लगाई। बोला, "मैं मर रहा हूँ तुम्हारे लिये, तुम्हारी सन्तान के लिये क्या तुम इतने नामर्द हो कि मुझे बात भी नहीं करने देते ?"

जेलर नर्म पड़ा और बोला, "मैं चाहता हूँ यह आत्मानन्द बेमौत न मरे। मुझे आप जो बात करते हैं उसकी रिपोर्ट लिखनी होगी।"

"तो ठीक है मेरी बात लिखो। आत्मानन्द की नहीं।"

आत्मानन्द ने फिर दुहराया, "मुझे इनके चरणों की धूल लेने दो जेलर, मैं और कुछ नहीं चाहता। जेलर, कृपा करो मुझे चिदम्बरं के पैर छू लेने दो।"

जेलर चुप हो गया।

आत्मानन्द ने चिदम्बरं के पैर छुए तो पकड़े रह गया। उसके आँसू चिदम्बरं के पैर पर गिर रहे थे। चिदम्बरं ने जंगले से हाथ बाहर निकालकर उसके आँसू पोंछे।

"रोओ मत, अभी माँ को बहुत से बलिदानों की जरूरत है आत्मानन्द !"

आत्मानन्द ने देखा चिदम्बरं के चेहरे पर न चिन्ता है न दुःख।

वह वीतराग साधु की तरह गम्भीर है।

"मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ चिदम्बरं।" इतना कहकर उसने दो अमरूद कुर्ते की जेब से निकाले और चिदम्बरं के हाथ में दे दिये।

जेलर लपका, "ठहरो, इस तरह इसे कोई चीज नहीं दी जा सकती। मुझे दो। देखकर दिये जायेंगे। उसने अमरूद ले लिये और अच्छी तरह से देखकर चिदम्बरं को दे दिये।

"लो, खा लो।"

आत्मानन्द बिना बोले खड़ा चिदम्बरं को देखता रहा।

"कल अन्तिम दिन है।" चिदम्बरं ने कहा। "इस समय तक सब समाप्त हो जायेगा।"

आत्मानन्द चौंका—"कल ही क्या ?"

"सबेरे आठ बजे।" फिर थोड़ी देर बाद बोला।

"विभा मिली, उसका ध्यान रखना। स्वामीजी अन्त समय मुझ से कह गये थे।"

"कौन विभा ?"

'नहीं जानते, यशोदा।"

"कहाँ है वह ?" आत्मानन्द जैसे चौंका।

"स्वामी विज्ञानानन्द के आश्रम में हरिद्वार में मैंने उसे छोड़ा था। पता

लगा लेना। मैं प्रसन्न हूँ आत्मानन्द, अत्यन्त प्रसन्न; मेरा जीवन सफल हो गया।"

"संसार तो नहीं जान पाया।"

"अज्ञात के रजिस्टर में मेरी बलि दर्ज हो गयी है। यही बहुत है। पूरी संख्या होने पर स्वतन्त्रता की देवी उस बलि से जन्म लेगी, चिन्ता मत करो।"

आत्मानन्द उसे ही देख रहा था। चिदम्बरं के मुख पर चिन्ता की रेखा आई जैसे वह अपने लिए नहीं किसी और के लिए व्यग्र है। वह अपने में तन्मय हो गया। थोड़ी देर बाद उसने आत्मानन्द को देखा और मुस्कराते हुए कहा—"मुझे याद रखना आत्मानन्द।"

"तुम अमर हो।"

"मैं प्रसन्न हूँ। जाओ। प्रसन्न रहो। जो कुछ तुम से हो सके देश की सेवा करो। देश आज बलिदान चाहता है। बलिदान, बलिदान।" वह एकदम जोर से चिल्लाया—"बलिदान?"

जेलर ने सिपाहियों की ओर इशारा किया। आत्मानन्द मौन-मूक, स्वप्न में अभिभूत की तरह खड़ा रहा। सिपाहियों ने हाथ पकड़ा और ले चले। "स्वतन्त्रता देवी की जय हो!" कहकर चिदम्बरं चिल्लाया। जैसे बन्दूक छूटी हो। जब आत्मानन्द बाहर आया तो फाटक के बाहर एकदम फूटकर रो पड़ा। होश आने के बाद कल का उसे ध्यान आया।

न जाने कब तक वह खड़ा रहा। इसी समय उसने देखा देवेन्द्र शर्मा उधर ही आ रहा है।

"क्या मिल चुके?"

"हाँ।"

"मुझे मालूम ही नहीं हुआ। कैसे हैं? मैं तो इसीलिये आया था।"

आत्मानन्द से कोई उत्तर न पाकर उसे ही देखने लगा। आत्मानन्द के पैर डगमगा रहे थे जैसे गिर पड़ेगा। देवेन्द्र ने सँभाला और एक ताँगा करके धर्मशाला में ले गया। स्वामी आत्मानन्द मुर्दे की तरह आँखें फाड़े देख रहा था निर्जीव, निरीह प्राणी की तरह। देवेन्द्र ने हिलाकर पूछा, "कैसा जी है?"

"ठीक हूँ मुझे अकेला छोड़ दो। जाओ।"

वह कुछ भी न समझ सका। इतना ही जान पाया कि इसे सदमा बैठा है। वह दरवाजा बन्द करके घर से एक गिलास दूध लेकर लौटा। साथ में उसकी माँ भी थी पैंतालीस साल की तेजस्विनी औरत। सफेद कपड़े पहने चश्मा लगाये।

"यहीं है।"

देवेन्द्र की माँ ने पास जाकर ध्यान से देखा और उसे हिलाकर बोली—

"क्या है, क्या बात है बेटा ?"

आत्मानन्द को जैसे होश हुआ। वह उठकर बैठ गया। "कुछ नहीं।"

"मैं देवेन्द्र की माँ हूँ। घबरा गये। एक वह बहादुर है और एक तू ······ ले दूध पी।"

जानकी ने दूध का गिलास उसके मुँह से लगा दिया।

"हिम्मत कर ऐसा क्या। मर्द बच्चा होके घबरावे है। उसे तो देख जो मर रिया है। जाने कौनसी भागवन्ती माँ होगी उसकी। उठ, चल और खा पी।"

आत्मानन्द को चैतन्य हुआ। रुआँसा होने पर भी उसने अपने को रोका। स्वस्थ हो गया। बोला—"मैं उसे कुछ अच्छे फल भी नहीं दे सका। दो पैसे जेब में थे। दो अमरूद दे आया। लेकिन उसे इसकी चिन्ता नहीं है। वह वीर है, सच्चा साधु।"

"सच्चा साधु तो है ही, कौन है वह ?"

आत्मानन्द ने माँ-बेटों के सामने जितना जानता था इतिहास सुनाया। दोनों तन्मय होकर ध्यान से सुनते रहे। नींद से जागे हुए वे दोनों सुनकर कुछ देर चुप रहे। माँ जानकी ने कहा—

"आत्मानन्द महाराज, तुम धन्य हो।" इतना कहकर वह उसके पैरों पर गिर पड़ी।

"हैं हैं यह क्या करती हो माँ ?"

जानकी ने बताया, "उसके परदादा भी इसी तरह सिपाही विद्रोह में मारे गये थे। दादा भी पागल बने फिरते रहे। मालिक डाक्टर थे, वे बीमारों को

सेवा करते-करते छूत की बीमारी में मर गये। तब से स्कूल में लड़कियों को पढ़ाती हूँ। बाहर गई थी आज दोपहर में आई हूँ। देवेन्द्र ने बताया तो मैंने इसे फटकारा। चलो, तुम घर पर रहना। मेरे ऐसे भाग कहाँ जो तुम्हारे जैसों की चरण-धूल मेरे घर में पड़े। चलो।"

थोड़ी देर बाद लड़के से बोली, "अपने रामभजन सेठ के यहाँ वृन्दावन के एक महात्मा साधु कथा करते हैं। बहुत अच्छा बोलते हैं। आत्मानन्द तुम भी चलो। कथा सुनना। बड़ा आनन्द आवे है। मन बहलेगा। घर में रहना।"

आत्मानन्द ने सुना तो चुप हो रहा।—देवेन्द्र कह रहा था, "सुना है बड़े विद्वान महात्मा हैं।"

"मैं जानता हूँ स्वामी ब्रह्मानन्द।" आत्मानन्द ने कहा।

"तुम कैसे जानते हो ?" जानकी ने पूछा।

"ऐसे ही।" वह मुस्कराया और चुप हो रहा। "चलो न।" जानकी ने अनुरोध किया।

"नहीं, अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आज ही जाऊँगा।"

"कहाँ ?"

"हरिद्वार चिदम्बरं का एक काम अधूरा पड़ा है उसे पूरा करूँगा।"

"क्या काम है ?" जानकी ने पूछा।

"पहले तो एक बहन को देखना है, फिर देखूँगा उसकी जलाई आग को कैसे सुरक्षित रख सकता हूँ।"

दोनों चुप हो गये। रात को आत्मानन्द भोजन करने गया तो जानकी ने दो सौ रुपये के दो नोट उसे देते हुए कहा, "रख लो, बहन के काम आवेंगे।"

मना करने पर भी रुपये उसे रखने पड़े। जानकी का आग्रह ही ऐसा था।

माँ-बेटों के कहने पर वह रात को नहीं गया। दूसरे दिन जब चिदम्बरं फाँसी के तख्ते पर चढ़ाया जा रहा था उसी समय आत्मानन्द आत्म-विभोर धर्मशाला से निकला। वह सोचता जा रहा था, एक प्राणी ने अज्ञात रूप से देश के लिये अपना बलिदान कर दिया। कोई भी नहीं जान सका। कौन था वह, कहाँ से आया, क्या करके उसने प्राण दिये। जिन रजिस्टरों में उसकी मृत्यु दर्ज है वे

मूक हैं, मौन, अजिह्व, अवाक्, अस्पन्द, अगतिक। फिर भी उसकी मृत्यु ने वातावरण में गर्मी पैदा कर दी है जो किसी भी दिन भड़क उठेगी। उस समय जेल की दीवारें, फाँसी की भूमि, उसकी साक्षी देंगी, धरती काँप उठेगी, आकाश गरज उठेगा, नदियाँ उत्ताल होकर गायेंगी। वे हथकड़ियाँ टूटकर, वह रस्सा झीना होकर, बिखरकर उसके बलिदान का गीत गायेंगे। चलते-चलते वह खड़ा हो गया, जैसे उसका मन बोल उठा—'स्वतन्त्रता देवी की जय।' अमर शहीद चिदम्बरं, चिदम्बरं, चिदम्बरं। उसे लगा जैसे उसके हृदय से फूटकर वह आवाज सारे वायुमंडल में फैल गई। वह बहुत देर तक खड़ा रहा। उसे लगा जैसे सड़क के किनारे के पेड़-पत्तियाँ, हवा की लहरों में झूम-झूमकर चिदम्बरं के बलिदान को दुहरा रही हैं। जैसे आत्मानन्द का मौन मूक मन निरन्तर उसी आवाज को दुहराये जा रहा है। बोलता जा रहा है, पुकारता जा रहा है। उसी का एक नशा अदम्य रूप से उसके शरीर में भर रहा है। न जाने वह कब तक इसी दशा में सड़क के किनारे, वृक्ष के नीचे, हिलती हवा के साथ नाचती शाखाओं पर थिरककर चिदम्बरं का अमर नाम सुन रहा है। चिदम्बरं, चिदम्बरं ?

शाम के पाँच बजे उसी दिन आत्मानन्द हरिद्वार विश्राम भवन में पहुँचा तो कोठी के सामने बाग में एक आदमी से उसने विभा के सम्बन्ध में पूछा। काफी देर तक घूरकर देखते रहने के बाद उसने जवाब दिया,

"वह, यहाँ नहीं है।"

"कहाँ है ?"

"तुम कौन हो ?"

"उससे मिलना है।"

"तुम उसके हो कौन ?" उसने जोर देकर पूछा।

"नहीं बता सकते तो कह दो मेरा इतिहास पूछने की क्या जरूरत है।"

एक दूसरा आदमी जो उसे बात करते देखकर पास आ गया था, बोला, "इस सड़क से सीधे चले जाओ एक फर्लांग दूर सीधे हाथ को फूँस का एक झोंपड़ा पड़ेगा। उसी में है वह। बीमार है। यहीं का माली है जिसके यहाँ है वह।"

आत्मानन्द बताये हुए मार्ग से झोंपड़ी के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। बाहर एक आदमी बैठा हुक्का पी रहा था।

"विभा से मिलना है।"

वह उठ खड़ा हुआ। इशारा करते हुए उसने कहा, "इधर चले जाओ।"

फूंस का दरवाजा हटाकर भीतर घुसा तो देखा, जर्जर, पीली, कृशकाय बीमार एक स्त्री लेटी है। शायद उसकी आँखें बन्द थीं। मुँह पिचक गया है। चेहरे पर मृत्यु की छाया नाच रही है।

बूढ़े ने कहा—"यही है।"

आत्मानन्द बिना कुछ बोले खड़ा रहा। फिर बाहर आकर बूढ़े के पास बैठ कर धीरे से पूछने जगा—

"कब से बीमार है?"

"बहुत दिनों से।"

"क्या बीमारी है?"

"तुम कौन हो?" हुक्का गुड़गुड़ाकर आत्मानन्द की ओर देखते रहने के बाद बोला,

"कोई भी हो। बड़ी जवाँमर्द औरत है। बड़ी बहादुर। अब मर रही है। मैं भी कहाँ तक इलाज करूँ। गरीब आदमी हूँ। हस्पतालवाले बदमाश हैं। तीन-तीन घंटे खड़े रहो तब दवा की बारी आवे है। तब एक दिन इसने कहा—"मैं दवा नहीं पीऊँगी बाबा। अब दवा मत लाओ।" बूढ़ा आदमी हूँ चला जाता नहीं। काम कोई है नहीं। उसने इसे मारा, मैं उठा लाया। मैंने कई, बेटी, कुछ परवाह नहीं है। बीबी के गहने बेचकर तेरा इलाज करूँगा। तो मैंने सब गहना बेचा। अब एक वैद का इलाज चल रहा है तुम जानो। पर है बड़ी हिम्मत की लड़की। तुमसे झूठ नहीं कहूँगा ऐसी लड़की मैंने नहीं देखी। इसने नाकों चने चबा दिये स्वामी के। वो भी क्या कहेगा कोई मिली। नातक़ा बन्द कर दिया इसने।"

वह फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

"कहाँ से आये हो?" माली ने पूछा।

"कौनसे वैद्य का इलाज है ?"

"अरे, वो ही कनखलवाले वैद जी का, बड़े अच्छे हैं। बिचारे दवा भी मुफ्त देवें हैं। एक बार मैंने हाथ जोड़ के कई, वैदजी, विभा बहुत कमजोर है आ नहीं सके है, तो देख भी गये तुम जानो।"

"कुछ फायदा है?"

"हो हीगा। कुछ फायदा नहीं हुआ तभी तो हस्पताल से ले आया। वैसे तुम जानो फायदा तो मुझे कुछ भी दीखे नहीं है। नसे में पड़ी रेवे है।

आत्मानन्द उसकी पूरी बात नहीं समझ पाया। सोचकर पूछने लगा, "किस स्वामी ने मारा ?"

"अजी वही थारा विज्ञानानन्द। मैं भी तो उसी के काम करूँ था।"

"क्या बिगाड़ा विज्ञानानन्द ने इसका ?"

उसने घूरते हुए कहा—"और औरत का क्या बिगाड़ता। औरत के पास और है ही क्या, वही बिगाड़ा। पहले तो पास रखा। मंसूरी, बम्बई न जाने कहाँ-कहाँ लियों फिरा फिर तुम जानो वही हुआ। गरभ रह गया बिचारी के।'

वह हुक्का खतम करके एक कोने में रख आया। और मूँज इकट्ठी करके रस्सी बंटने लगा। आत्मानन्द व्यग्र हो उठा, पूछा।''

"फिर ?"

"फिर क्या था, स्वामी चावे था या निकल जाय। इस तरह एक दिन भगत मण्डली के साथ आ धमका।"

बूढ़े ने सारी कहानी सुनादी। मूँछों से ढके पोपले मुँह से जो कुछ उसने कहा वह अस्पष्ट और बेतुका था। बातें करते उसकी आँखें चमक उठतीं। उसने थोड़ा-बहुत समझा। आत्मानन्द एक बार फिर भीतर गया। वह उसी तरह आँखें बन्द किये पड़ी थी। बूढ़ा बाहर निरन्तर बोलता जा रहा था। अपने आप प्रश्न करता और उत्तर देता। इसके बाद अपना दुःख रोने लगा। आत्मानन्द बाहर आकर बोला,

"दवा दी ?"

"अरे हाँ, याद ही नहीं रही तुम जानो। वह उठा हिलते हाथों से दवा की

पुड़िया खोली तो वह आधी गिर गई। आत्मानन्द ने दूसरी पुड़िया खोलकर पूरी दवा दी। बूढा कह रहा था, "देख, बेटी, कोई आये हैं।"

"कैसा जी है यशोदा, मैं आ गया हूँ।"

यशोदा ने आँखें खोलीं, मानों आँखों से प्रश्न किया हो।

"मैं कमल हूँ।"

नाम सुनकर भी जैसे उसे कोई खुशी नहीं हुई। उसने आँखें बन्द कर लीं। वह गूदड़ वाली खाट पर लेटी थी। कमल वहीं बैठ गया।

"नाराज हो यशोदा, मुझे बड़ा दुख है। मैं पापी हूँ। मुझे क्षमा कर दो।"

काफी देर बाद उसने आँखें खोलीं और निरन्तर देखते रहकर धीमी और टूटी आवाज में जवाब दिया,

"मैं कौन हूँ क्षमा करनेवाली। मैं कौन हूँ। जाओ देश-सेवा करो।" थोड़ी देर बाद उसने कहा,

"थोड़े दिन की हूँ। थोड़े दिन की।" उसने आँखें बन्द कर लीं। कमल अपने को न सँभाल सका। उसके आँसू यशोदा के फैले सूखे, कंकाल हाथों पर गिरने लगे टप-टप। वह निढ़ाल पड़ी थी। देखने पर लगता था प्राण कहीं कोने में चिपक रहे हैं। किसी भी समय बाहर आ सकते हैं। उस मुर्दे चेहरे पर मक्खियाँ बैठ रही थी। उसमें इतनी सामर्थ्य भी नहीं की कि उड़ा सके। मिट्टी के बर्तन में एक तरफ पानी रखा था। पास ही थूकने था राख भरा फूटा कुल्हड़। चारों तरफ धूल, कूड़े का ढेर। दूसरे कोने में जलाकर बुझाई दो-तीन लकड़ियाँ, उसके पास हाँडी और पीतल की परात। कलछी, तवा, चीमटा। लगता था चूल्हा बहुत दिनों से पोता नहीं गया। झोंपड़ी के धुएँ से काले तिनके साँप के बच्चों की तरह नीचे लटक रहे थे। फूंस की टट्टी को हवा ने काफी झकझोर डाला था। सरसराती हवा से सीलन भरे गूदड़ों पर पड़ी यशोदा काँपती रहती। निराशा, बेबसी की लाश मानो दरिद्रता के कफन से ढकी पड़ी हो। पेड़ों की सूखी पत्तियाँ फूंस की दीवार के झरोखों से हवा के साथ आकर यशोदा के सिरहाने रो रही हों। थेगड़ी लगी पतली मैली रजाई के ऊपर मिलिटरी में इस्तेमाल किया जाने वाला कम्बल उसके ऊपर पड़ा था, जिसमें काफी छेद थे।

कमल ने देखा तो उसका मन और भी भारी हो उठा।

काफी देर बाद यशोदा ने आँखें खोलीं।

"कहाँ था अब तक ?"

"काफी मुसीबतों में रहा। तुम्हारे अच्छे होने पर सुनाऊँगा। मैं वैद्य के पास जा रहा हूँ।"

"रात हो रही है। तुम भी कुछ खाओगे।" बूढ़े ने पूछा।

"नहीं। यशोदा क्या खाती है ?"

"दूध पीवे है।"

"तो मैं दूध ले आऊँ। कहाँ मिलेगा ?"

बूढ़े ने बताया तो कमल बर्तन लेकर दूध लेने चला गया। दूध लाकर गर्म करके देते हुए बोला—"लो यशोदा, पियो।"

यशोदा ने लेटे-लेटे लोहे के चमचे से दूध पिया और पड़ी रही। कमल ने बूढ़े के कहने पर भी कुछ नहीं खाया केवल थोड़ा दूध ले लिया।

यशोदा कभी-कभी जागती फिर कमजोरी और बीमारी में सो जाती। कमल उसी की खाट के पास कम्बल बिछाकर नीचे बैठ गया। एक तरह से बूढ़ा निश्चिन्त हो गया था। वह भी पास ही टाट पर गूदड़ ओढकर सो गया और खुर्राटे लेने लगा।

दूसरे दिन कमल वैद्य के पास दवा लेने गया तो वैध ने कहा—"बचने की आशा कम है। दो ही बातें हो सकती हैं या तो इसके शरीर में किसी का रक्त दिया जाय अथवा कीमती दवा। दवा तुम दे नहीं सकते तो हस्पताल ले जाकर अपना खून दे दो।"

"आप कीमती से कीमती दवा दीजिए मैं खर्च दूँगा।" वैद्य ने उसे देखा तो बोला—एक रुपये की एक खुराक है। चार खुराक रोज देनी होंगी। पन्द्रह दिन तक। ऊपर से फल और दूध।"

"मुझे स्वीकार है।"

"कौन है तुम्हारी यह ?"

"बहन।"

"तो ठीक है ले जाओ। ईश्वर ने चाहा तो एक महीने में चलने-फिरने लगेगी।"

कमल ने दवा के दाम दिये और बोला—"वैद्यजी, मेरी यह बहन जी जानी चाहिए। मैं आपका बड़ा आभारी होऊँगा।

"जी जायेगी, जाओ। नियम से दवा दो।"

कमल ने यशोदा का दूध बढ़ाया और दवा दी। वैद्य ने जो फल बताये थे वह भी देने लगा। सवेरे से शाम तक बैठा दवा देता और पथ्य की व्यवस्था करता। एक सप्ताह में ही अन्तर दिखाई देने लगा। बूढ़े ने देखा तो बोला—"पहले तो मरी पड़ी रेवे थी अब तो देखे भी है, कुछ-कुछ बोले भी है। चल जी जाय तो अच्छा ही है।"

बूढ़ा अब खुश था। वह दिन भर मूँज की रस्सी बटकर शाम को बेच आता। जरा दूर एक कोठी में उसे काम भी मिल गया था। दोनों समय की रोटी बनाने के बाद वह बाहर ही रहने लगा। कमल बाजार से एक लोहे की अँगीठी, कोयले ले आया। उसी पर सब चीजें गरम करता। दिन-रात एक करके वह यशोदा की सेवा करने लगा। अब यशोदा बैठने भी लग गई थी। कमल टाट लपेट कर उसके बैठने के लिए तकिया बना देता तो वह बैठी रहती। वह धीरे-धीरे स्वस्थ हो रही थी। कमल की तत्परता सेवा को देखकर एक दिन यशोदा बोली—

"मुझे वचन दे कमल, तभी मैं जी सकूँगी।"

"मेरा सम्पूर्ण तेरे ही लिये है यशोदा, बस, तू जी उठ। मैं और कुछ नहीं चाहता।"

इतना कहकर उसने दवा की पुड़िया देकर ऊपर से शहद चटा दिया। कुल्ला कराते हुए बोला—"सच्चा सुख मुझे अब मिल रहा है।"

"मैं हार गई कमल। उस धूर्त विज्ञानानन्द से हार गई।"

"मैं सुन चुका हूँ।"

"किसने कहा ?"

"तेरे बाबा ने सब सुनाया।"

"मेरे बाबा ने ?"

"हाँ।"

"इसी ने मुझे अब तक जिन्दा रखा है। कितना भला है, कितना निष्कपट। यह मनुष्य नहीं है। ऐसा आदमी मैंने जीवन में नहीं देखा कमल !"

"सब ही ऐसे हों तो संसार स्वर्ग न बन जाय।"

"हाँ और क्या।"

बूढ़ा बीच में थका हुआ आया तो यशोदा बोली, "बाबा, अब मैं रोटी बनाया करूँगी। तू खाइयो।"

बूढ़ा हँसा, "पहले ठीक तो हो ले मेरी बेटी, और मेरे है ही कौन, एक बहन है और तू। आज विज्ञानानन्द मिल गया तो पूछने लगा। मैंने कहा, ठीक हो रही है तेरी छाती पर मूँग दलने को। ऐसे थोड़े ही छोड़ूँगा। हजार पाँच सौ न लिये तो मेरा नाम नहीं। तू जरा ठीक हो जा। अखाड़े के महन्त के पास ले चलूँगा तुझे, तब वो देगा। मैंने कई मेरी तनखा तो दे दो बाबाजी! तो बोला, अच्छा। चलो अब अच्छा तो कहा। दुखी है आजकल। बदनामी क्या कम हुई है।"

और भी बहुत सी बातें करता रहा। यशोदा अब धीरे-धीरे चलने लगी थी। कमल एक दिन चुपके बाजार से कंघी और तेल खरीद लाया। उसने घड़े में गरम पानी किया और यशोदा से बोला—"आज तेरा सिर धोना है नहा तू लेना!"

"तू धोवेगा।" कहकर वह मुसकराई।

"और कौन धोवेगा?"

"मैं एक औरत को बुला लूँगी, पास ही रहती है।"

"हाँ, मैं बुला लाता हूँ।" बूढ़े ने तत्काल कहा, और बुलाने चला गया।

झोंपड़ी के पीछे धूप में यशोदा का सिर धोकर औरत ने नहलाया तो वह बैठी बाल सुखाती रही। बूढ़े और कमल दोनों ने मिलकर खाना तैयार किया। यह महीनों के बाद यशोदा के खाना खाने का पहला दिन था।

एकदिन वह पूरी तरह स्वस्थ हो गई तो बूढ़ा बोला, "चल, अब विज्ञानानन्द से कहें।"

कमल ने उत्तर दिया—"बाबा, हमें उसके पैसे नहीं चाहियें।"

"क्यों क्या हर्ज है ?"

"नहीं।"

"तो कैसे गुजारा होगा भैया कमल ?"

"मैं मूँज कूटकर दिन में रस्सी बँटा करूँगा बाबा, तुम शाम को बेच आना।"

बूढ़े ने आश्चर्य में पड़कर कहा—"क्या कहता है तू !"

"मैं ठीक कहता हूँ। हम थोड़े में गुजारा कर लेंगे बाबा और तुम्हारी सेवा करेंगे।"

"मेरी सेवा ?"

"हाँ, तुमने मुझे इसीलिए तो जिन्दा किया है।" यशोदा ने अँगीठी जलाते कह दिया और हुक्का भरकर बाबा के पास ले आई।

यह पहली बार था कि बूढ़े ने यशोदा का भरा हुक्का पिया। वह गद्गद् हो उठा। खुशी के मारे उसकी आँखों में आँसू आ गये।

विज्ञानानन्द एक सबेरे घूमता हुआ उधर आ निकला तो यशोदा बाहर बैठी थी। बूढ़ा हुक्का पी रहा था। कमल एक तरफ मूँज कूट रहा था। यशोदा का रूप-रंग उभरकर पहले से भी दुगना हो गया था।

उसने सड़क पर से देखा तो खड़ा हो गया। उसे आश्चर्य हो रहा था। उसने सुन रखा था विभा इस बीमारी से बच नहीं सकती। वहीं से बोला, "कैसी हो विभा ?"

बूढ़ा उठकर खड़ा हो गया—"स्वामीजी, मेरी तीन महीने की तनखा दे दो। कहो तो आऊँ।"

विभा ने कोई उत्तर न देकर मुँह फेर लिया।

"नाराज है। मेरा सब कुछ उजाड़कर भी नाराज है।" विज्ञानानन्द ने विभा के रूप पर अभिभूत होकर कहा।

बूढ़ा बोल पड़ा—"बिटिया, अखाड़े के महन्त के पास जा रही है। तभी पता लगेगा किसने किसको उजाड़ा है स्वामीजी ?"

"जाओ, सब लोग जाओ। जो कुछ इससे हो सके कर लो। मैं विश्राम भवन बेच कर जा रहा हूँ। देखूँगा फिर मेरा कोई क्या बिगाड़ लेगा।"

कमल मूँज कूटना छोड़कर आ गया।

"कहाँ जा रहे हैं स्वामीजी ?"

"कहीं भी।"

"चिदम्बरं की हत्या करके उसे फाँसी पर चढ़ाकर।"

"क्या ?"

"चिदम्बरं को फाँसी दे दी गई। एक मास से ऊपर हो गया मेरठ जेल में।"

विज्ञानानन्द चिदम्बरं को भूल गया था। उसे यह खबर सुनकर कोई आश्चर्य न हुआ। यह समाचार कमल के मुख से अचानक निकल गया।

यशोदा बोली,—"क्या यह सच है कमल ?"

कमल ने निरपेक्ष भाव से कड़े स्वर में कहा—"स्वामी विज्ञानानन्द ने उस की हत्या की है। उसे फाँसी पर चढ़वाया है।"

स्वामी बोला, "झूठ है, मैंने कुछ भी नहीं किया। मुझे कुछ भी नहीं मालूम।"

फिर सहमकर बोला, "मुझे सुनकर बहुत दुःख हुआ है। तुम ?"

"मैं आत्मानन्द हूँ।"

आत्मानन्द का नाम उसने स्वामी हरिशरणानन्द के आश्रम में सुन रखा था। बोला—

"तुम कब आये ?"

यशोदा ने क्रोध में भरकर कहा, "हत्यारा !"

विज्ञानानन्द चुपचाप बिना कुछ बोले फनफनाता लौट गया।

यशोदा के प्रसंग को लेकर विज्ञानानन्द का काफी अपमान अनादर हुआ। गुजरात में उसके भक्त नाराज हो गये थे। उन्हीं से उसे काफी धन मिलता था। हरिद्वार में लोग उसे घृणा से देखते। निरंजनी अखाड़े के महन्त ने उसे बुलाकर बहुत फटकारा था। उसने कहा था—"साधु का बाना छोड़कर गृहस्थ हो जा। नहीं तो मार डालेंगे।" और साधुओं ने भी उसकी काफी भर्त्सना की। एक तरह से हरिद्वार में उसका कोई आदर नहीं रह गया था। जब निराश होकर उसने एक-दो

व्यक्तियों से विश्राम भवन बेचने की बात की तो अखाड़े वालों ने संदेश भेजा—"साधु का मकान बिक नहीं सकता। जो कोई खरीदेगा उसे उसका फल भोगना पड़ेगा।" विज्ञानानन्द से भी उन्होंने यही कहलवाया।

विज्ञानानन्द घबरा गया। अपमान लांछना से उसने बाहर निकलना छोड़ दिया। अब वह आश्रम में पड़ा रहता।

मरती यशोदा को कमल नये जीवन की तरह उत्साह, स्फूर्ति के रूप में मिला। उसकी सेवा ने यशोदा के मन का मैल कपड़े पर रेह लगाने की तरह धो डाला। विज्ञानानन्द के काम से उसे घृणा होती, उसका मन भर-भर आता किन्तु कमल के निश्छल व्यवहार, उसकी सेवा ने धीरे-धीरे सब भुला दिया। बूढ़ा अब काफी प्रसन्न था। वह बैठा-बैठा हुक्का पीता और उन दोनों को देख कर मन ही मन उत्फुल्ल होता रहता। एक दिन कमल बाहर से आया तो उसके उदास रूप को देखकर यशोदा ने पूछा—"क्या बात है कमल, क्यों उदास है?"

"ऐसे ही?"

"तो भी मुझ से कह।"

"क्या कहूँ, मुझे रह-रहकर चिदम्बरं का ध्यान आता है। उसने जो कुछ मुझ से मरने के एक दिन पहले कहा क्या मैं उसे पूरा कर सकूँगा, यही सोचता रहता हूँ।"

"क्या कहा था उसने?"

उसने उसी उदासी में भरकर कहा, "नहीं, कुछ नहीं।"

"मुझ से नहीं कहेगा तो और किससे कहेगा। क्या मैं तेरी कोई नहीं हूँ?"

यशोदा कमल के पास आकर खड़ी हो गई। उसकी आँखों में झाँकती बोली, "कह न?"

उसने कहा था, "मेरे बलिदान के दीपक को जलाये रखना बस, यही मैं तुझ से चाहता हूँ। आत्मानन्द।" लेकिन यहाँ आकर मुझे लगता है मेरी उसके सामने की गई प्रतिज्ञा न जाने कहाँ चली गई है। मैं उसके लिये कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ।"

यशोदा ने सुना तो चुप रह कर बोली—"क्या मेरे कारण तू डर रहा है?

मेरे जी में भी यही है। मैं उसे जानती हूँ एक बार उसने मुझ से भी ऐसा ही कहा था। मैं तो राग-रंग में भूल ही गई। तू ही नहीं मैंने भी उसे वचन दिया था।"

कमल जैसे भीतर ही भीतर एक प्रकाश पा गया। "हाँ, यशोदा, हमें कुछ करना होगा। मैं दिन-रात यही सोचता हूँ।"

"मैं तैयार हूँ मुझे अब कोई लालसा नहीं है तेरा स्पर्श पाकर मेरे मन के सब पाप धुल गये हैं कमल।"

"तो चलो हमें उसकी जलाई ज्योति को कायम रखना है।"

"यह बूढ़ा।"

"वह काम इसकी सेवा से ऊँचा है।"

"नहीं, मैं इसको इस तरह नहीं छोड़ूँगी। यह मेरे बाप के समान है।"

"फिर ?"

वह चुप होकर सोचने लगी।

रात में जब बूढ़ा लेटा तो यशोदा उसकी पीठ दबाने पहुँची। बूढ़ा, उठ बैठा। "बेटी, यह क्या करती है ? क्या मुझे तेरी सेवा की जरूरत है। मेरी बहन आ रही है। उसके भी कोई नहीं है। चाहता हूँ वह भी रहे तुझे तकलीफ तो नहीं होगी ?"

"मुझे क्या तकलीफ होगी बाबा ? आने दो।"

"हाँ, मैं तुझे तकलीफ में नहीं देख सकता। तू तो मेरी बेटी है न।" न जाने क्या सोचकर थोड़ी देर बाद बोला—

"एक बात कहूँ।"

"कहो न ?"

"मानेगी।"

"क्यों नहीं मानूंगी।"

"तिरबाचा भर कि मानेगी।"

"न जाने तुम क्या कहोगे।"

कमल वहीं पास बैठा था बोल पड़ा—"मान ले यशोदा।"

"देख अब तो कमल भी कहे है।"

"मैं मानूंगी।"

"तू कमल से ब्याह कर ले। बस, मुझे और कुछ नहीं चाहिए।"

यशोदा एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ी "बस, इतनी-सी बात।"

"हाँ, मैं सोच रहा था न जाने तू माने कि नहीं।"

यशोदा ने कमल की ओर देखा।

"अब बोल।"

यशोदा मुसकराने लगी। उस लालटेन के प्रकाश में बूढ़े ने देखा और यशोदा के गाल पर हल्का-सा थप्पड़ मारकर बोला, "हाँ, बस अब मान जा। क्यों कमल ? क्या सलाह है ?"

"जैसा तुम कहो।" कहकर यशोदा ने मुँह फेर लिया।

"ला हाथ।" कहकर बूढ़े ने यशोदा का हाथ पकड़ा और कमल को घसीट कर दोनों का हाथ मिला दिया, "बस, हो गया। हमारे दूसरा ब्याह इसी तरह होवे है।" बोलता-बोलता वह गद्गद् हो उठा, "मेरे मन की हो गई। अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। जिस दिन से मैंने तेरी रच्छा का बोझ लिया था उसी दिन से सोच रहा था, सूरजमुखी-सी इस लाड़ली को किसी भले आदमी के हाथ सौंप दूँ फिर मुझे कुछ भी परवाह नहीं है। तुम दोनों सुखी रहो।"

दोनों ने बूढ़े के पैरों में सिर रख दिया। बूढ़े की आँखों में प्रसन्नता के आँसू छलक उठे। उसने दोनों के सिर अपने हाथों से मिला दिये। अपनी अंटी से पाँच रुपये निकालकर बोला, "लो इसकी मिठाई खाना।"

"नहीं बाबा रहने दो। हम भी तो तुम्हारे ही हैं।" कमल ने जोर दिया।

"देख, मना मत कर, ले ले। मेरा जी इस बखत पै खुश है। ले ले।"

यशोदा ने रुपये ले लिये।

"अब एक बात है।"

"क्या ?"

"यह झोंपड़ी तुम्हारे लायक नहीं है। तुम जाओ, घर बसाओ। कमाओ और खाओ। कभी-कभी मुझे देख जाना।"

"क्यों ?" यशोदा ने कहा—"हमें निकाल रहे हो बाबा ?"

"नहीं, मैं जानूँ हूँ तुम अच्छे घर के हो।"

"मेरी छोटी बहन आ रही है। झोंपड़ी छोटी है। भगवान तुम्हारा भला करे। जाओ। खाओ, खेलो। यशोदा को तुमने बचा लिया। मेरा भार हल्का हो गया। जवान आदमी हो जमीन पर पैर मारोगे तो पानी निकल आवेगा।"

कमल ने माना बूढ़ा सच कह रहा है। फिर उद्देश्य के प्रति अनुरक्त उसका मन जो यशोदा को समर्पण नहीं कर पा रहा था, कर्त्तव्य से अभिभूत हो उठा। किसी का भार न उठाकर जीवन को सफल माननेवाले कमल ने अपने को मोड़ा, और एक परीक्षाग्नि की आहुति में उसने अपने को डाल दिया। यज्ञ की वेदी में मुँह खोलकर घी से भरे नारियल की तरह वह यशोदा के प्रति प्रेम से देदीप्त हो उठना चाहने लगा। परीक्षा प्रारम्भ हुई।

यशोदा ने कमल को देखा तो पाया एक छायामय दीप्ति उसके चेहरे पर फैल रही है। एक उल्लास उसके भीतर गुदगुदा उठा है। बूढ़ा निर्द्वन्द्व था। कमल पत्र की तरह निर्लेप, जो अपनी सेवा की सुगन्ध उड़ाकर निर्बन्ध हो चुका था। करुणा, दया के साथ एक अलिप्त भाव उसकी आँखों में चमक रहा था। उसकी बूढ़ी बहन ही अब ऐसी है जिसको उसे पार उतारना है। दूसरे दिन सवेरे वीतराग की तरह वह उठा और जाते हुए बोला,

"मैं काम पै जा रहा हूँ। बहन को लेकर लौटूँगा। जाने की तैयारी कर रखना हाँ।"

कमल देख रहा था—पैंसठ-सत्तर के बीच झूलते उस अपढ़ किन्तु सरल बूढ़े में दूसरे को अपनापन सौंप देने के अलावा और कुछ नहीं है। पुस्तक का एक-एक अध्याय पूरी तरह समझकर याद कर लेनेवाले विद्यार्थी की तरह वह आगे बढ़ रहा है। काल की सीमा में अपने हर काम को बाँटकर वह एक के बाद दूसरे में (काम में) कर्त्तव्य की स्फूर्ति पाता जा रहा है। कर्मयोगी है बूढ़ा। उसके भीतर की चेतना उद्दीप्त हो उठी। कमल एक के बाद एक निश्चय कर रहा था। यशोदा ने पूछा—

"क्या करोगे ?"

"कुछ न कुछ अवश्य करेंगे। तुम्हारा हाथ पकड़ा है न ?"

"हाथ तो छूट भी सकता है।"

"जानती हो हाथ में मांस है, नसें हैं, मज्जा है, खून है, प्राण हैं सभी कुछ तो। हाथ से ही तो मैंने तुम्हें पाया है। वह कैसे छूटेगा ?" कहकर कमल मुसकराया।

"न जाने कैसे लगता है बाबा ने मुझसे पूछा भी तो नहीं। तुम्हें दे दिया।"

"तो क्या बाबा को तुमने दान का अधिकार नहीं दिया था, अब सोच रही हो ?"

"नहीं, ऐसा नहीं है। मैं सोचती हूँ न जाने तुम्हें कैसा लगा हो ?"

"जैसा लगना चाहिये वैसा ही।"

"एक भार।"

"मन का, शरीर का नहीं। तुम मेरी परीक्षा हो। तुम चाहो तो उसे मैं उठा लूँ।"

"उठा सकोगे, डर लगता है ?"

"मुझे कमजोर समझती हो ? आश्वासन दो तो······।"

"नारी का अपना दान के सिवा और क्या होता है यह मैं नहीं जानती।"

"आज जानता हूँ जो कुछ वह देती है उसमें क्या नहीं होता ?"

"सभी तो वह होता है जो चेष्टा करने पर लौट नहीं पाता।" यशोदा ने बात को बढ़ाते हुए अपने में खोकर कहा।

कमल चुप होकर सोचने लगा।

उसी समय कुछ बूँदें गिरने लगीं। दोनों भीतर झोंपड़ी में चले गये। यशोदा बोली—"एक बात कहना भूल गई। शिवानन्द इन दिनों कई बार आया।"

"क्या कहता था ?"

"उन दिनों मैं बहुत बीमार थी। तब एक बार आकर बाबा को कुछ रुपये दे गया था।"

"फिर।"

"फिर दूसरे-तीसरे आता और देखकर चला जाता।"

"कल फिर आया था तुम्हें पूछ रहा था। अब बहुत सुधर गया है।"

"बुरा नहीं है कि आदमी अच्छा बने।"

"कहता है तू मेरी बहन है यशोदा। संन्यासी हूँ नहीं तो मैं सेवा करता।"

"कैसी सेवा, क्या चाहता है वह ?"

"जाने क्या चाहता है ? आज मैं तुम्हें पाकर सार्थक हो गयी।"

"ठहरो, मुझे सोचने दो। मैं सोचता हूँ······।"

"हाथ पकड़ने के बाद भी क्या सोचोगे ?"

"नहीं, उसने कहा न, संन्यासी हूँ नहीं तो सेवा करता। अब भी बहुत देर नहीं हुई है।"

"पागल हो तुम।"

"क्यों ?"

"मुझे गंगा में फेंक जाओ। पहाड़ की चोटी से गिरा दो। मैं मना नहीं करूँगी।"

यशोदा कमल को देखने लगी। कमल ने यशोदा का हाथ पकड़कर चूम लिया।

"समझ गया।"

यशोदा आत्म-विभोर होकर कमल की गोद में गिर गई। वह उसके बालों पर हाथ फेरने लगा। यशोदा ने लेटे-लेटे कमल के गले में हाथ डालकर उसका मुँह अपनी ओर खींचकर कहा—

"देखो, मेरी तरफ देखो। अब भी कुछ सन्देह है, मैं तुम्हारी हूँ कमल, केवल तुम्हारी।"

कमल ने सुना तो भीतर से भर उठा। एकदम विज्ञानानन्द उसकी आँखों में जैसे झाँक गया। जैसे उसका विश्वास हिल रहा हो। अचानक यशोदा को जैसे ध्यान आया। वह उठकर बैठ गई।

"मैं पतित हूँ कमल। मैं तुम्हें धोखा नहीं देना चाहती। क्या इतने पर भी तुम मुझे······।"

"स्वीकार करता हूँ, यदि तुम्हें स्वीकार है। पुरुष जाति ने जो तुम्हारा

अपमान किया है, लांछना दी है मैं उसी का प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। तुम्हें देखकर लगता है जैसे मनुष्य की कुरूप वासना के अंगार तुम्हारे शरीर से झड़ रहे हैं। हाय, पुरुष कितना पतित है।"

"मैं भी उतनी ही अपराधिनी हूँ कमल। गहरी और तूफानी नदी के किनारे खड़ा कोई जैसे अपने आप कूद पड़े तो समें नदी का दोष है क्या, यह मेरी ही कमजोरी है कि मैं ····· ?" वह कातर हो उठी।

कमल सोचकर बोला, "कमजोरी एक लचक है चेतन की, उसमें सौन्दर्य रहता है। मनुष्य इस्पात नहीं है, वह सहृदय है ?"

"नहीं, मुझे उसका दुःख है।"

"यह विज्ञानानन्द की मूर्खता है कि अपने देय के प्रति सचेत नहीं रहा ! इसमें दुख की कोई बात नहीं है।" यशोदा कमल की ओर देखकर सोच रही थी, अजीब उदारता है इसमें !

वह एकबारगी सुबुक उठी।

यशोदा ने अपने आँसुओं से कमल के पैर धो दिये। उसी समय शिवानन्द ने आवाज लगाई, और भीतर चला आया।

"अरे कमल ?"

"ओ : आओ शिवानन्द। बैठो ?" दोनों गले मिले।

"कैसा जी है यशोदा ?"

"ठीक हूँ।"

"दूसरा जन्म पाया बेचारी ने मैं मजबूर था। आश्रम के विरुद्ध था, न ?"

"संन्यास ले लिया है ?"

"हाँ। स्वामी हरिहरानन्दजी ऋषिकेश छोड़कर गंगोत्री चले गये। आश्रम का ट्रस्ट बन गया। अब वहाँ औषधालय है। संन्यास मैंने इच्छा से ले लिया है कमल, स्वामीजी की परीक्षा में पास होने पर।"

उसने बताया, कमल के बाद किस तरह वह यशोदा के प्रति आकृष्ट रहा। फिर सब छोड़कर बाहर घूमने चला गया। बहुत कुछ सोचता रहा। काफी उत्तप्त रहने के बाद लौटा और संन्यास लिया। तब से यहीं गंगा के किनारे

एक महन्तजी के पास है।

"क्या करता है ?"

"साधना। तू सुना।"

कमल ने आदि से अन्त तक सब कह डाला। यशोदा दोनों की बातें सुन रही थी। बूढ़े के मुँह से यशोदा की बात सुनकर शिवानन्द उछल पड़ा, "यह बहुत ठीक हुआ। मैं तुम दोनों को बधाई देता हूँ। मेरी बधाई लो।"

कमल ने देखा शिवानन्द भीतर-बाहर से एक होकर बोल रहा है।

इसी समय बूढ़ा अपनी बहन के साथ आया। उसके सिर पर गठरी थी। बहन ने रजाई ओढ़े हुक्का हाथ में लिए झोंपड़ी में प्रवेश किया और इतने आदमियों को देखकर उसकी आँखें कपार फोड़ गईं। भाई ने देखा तो बोला, "ये लोग आज ही चले जायेंगे सिब्बी।"

सिब्बी रजाई उतारकर हुक्का भरकर पीने बैठ गई। नीरस आँखें, सूखा लकड़ी-सा शरीर, काली लम्बी देह। सत्तर के आस-पास। यशोदा ने पैर छुए तो बिना बोले सिर हिलाकर आसीस दिया।

"कहाँ रे हैं ?"

बूढ़े ने हुक्का उसके हाथ से छीनकर इशारे से बताते हुए कहा—"इसकी बहू है। अब तक बीमार थी।"

बुढ़िया कुछ न बोली केवल घूरती रही जैसे भीड़ उसे अच्छी नहीं लग रही है।

"सब निचोड़ लिया होगा इस निपूते का। ये मरा है ही ऐसा।" एक उपेक्षा से उसने भाई की तरफ देखा। हुक्का पीकर उसने चिलम उलट दी और उसी से आग बुझाने लगी। झोंपड़ी में फटे जूते के कीचड़ से फर्श पर निशान पड़ गये तो यशोदा को साफ करते देखकर बोली।

"रहन दे, या क्या कोई बड़े आदमी का मकान है। हम तो मट्टी के हैं। हमें नईं है कोई दुख री।"

जूते उसने वहीं उतार दिये और पसरकर बैठ गई। उसको देखने से लगता था जैसे यशोदा और कमल के बैठे रहने से उसे बेचैनी हो रही है।

"जायँ क्या बाबा ?" कमल ने पूछा ।

"हाँ, जाना तो पड़ेगा, भाई । खुश रहो ?" कुछ देर बाद तीनों के चलने पर बूढ़ा बाहर तक आया और यशोदा की पीठ थपथपाकर बोला।

"गलती माफ करियो बेटी !"

"नहीं, बाबा ऐसा क्यों कहते हो ।" कह कर यशोदा बूढ़े से लिपट गई । जैसे बेटी बाप के घर से जा रही हो । बूढ़े को लगा जैसे सचमुच उसका संचित कुछ खो रहा है । एक स्फूर्ति उसके भीतर से बाहर जा रही है । बूढ़ा बहुत देर मुँह बाये खड़ा रहा । बाहर से शान्त पर भीतर से······।

दो दिन शिवानन्द के आश्रम की एक कोठरी में रहकर कमल ने पास ही एक मकान ले लिया । निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर पाठशाला में बच्चों को पढ़ाने की एक नौकरी भी मिल गई । शिवानन्द ने अन्न, बर्तन, कपड़े अपने आश्रम के भंडार से दिलवा दिये । गंगा के किनारे के पास वह एकान्त स्थान था । आम, जामुन, पीपल, बड़ के पेड़, पियाबाँसा, झरबेरी की झाड़ियाँ। सामने विशाल नील धारा की हरी-भरी उपत्यका को चूमती पर्वतमाला । ऊपर एक चोटी पर चण्डी देवी का मन्दिर । नीचे तराई में गौरीशंकर का स्थान चमक रहा था। बीच मैदान के रेत में लुढकते गोल-गोल पत्थर और चाँदी की मोटी तागड़ी-सी पतली नील धारा का प्रखर वेग । हरे रंग की टोपी पहने काले तनेदार पेड़ जैसे अफ्रीका के लोगों की सेना खड़ी हो, पहाड़ हरियाली की चादर ओढ़े सो रहे हों । विचित्र दृश्य था ।

पाँच-छः दिन में ही यशोदा ने घर बना लिया ।

बीमारी के बाद यशोदा का सौन्दर्य और भी निखर गया था । आँखों में नई चमक, नया मद, नई दीप्ति, नई उमंगों, नई भावनाओं, नये उत्साह में भरकर उसने नये घर में प्रवेश किया । नवजीवन की प्रखर नदी में यौवन की स्नेह-धार उसके अंग-अंग में लहराने लगी । अतीत उसके सामने एक गोताखोर के सिर की तरह कभी-कभी झाँक उठता तो वह अपने को सँभालती और कमल की

अनुरागी निश्छल आँखों में अपने को, अपने अहं को, स्वार्थ को डुबोकर सब भूल जाती। कमल ने जैसे सर्वांग से सम्पूर्ण चेतन से उसको अभिषिक्त कर दिया। उसने यशोदा के अन्तहीन, अपार, अकूल यौवन-सागर में अपने को डुबो दिया जैसे जीवन की डाकगाड़ी रात के कुहासे को चीरती उमंगों की पटरी पर वेग से दौड़ रही हो। अहं का संयम और सीमा का बाँध तोड़कर खंड-खंड चेतन से यशोदा की आपुलक, अन्तर्दीप्त चेतना में कमल ने अपने को मिला दिया। दोनों एक हो गये। जैसे दोनों एक होने के लिए ही बने हों। नये सूर्योदय की तरह अतीत की रात के निश्चेतन खंड जागरण में स्वप्न की तरह बह गये। वाक्, काय, मन की एकत्व अनुभूति में एक रस, एक ज्ञान होने पर भी वह एकता निर्लज्ज नहीं बन पाई। कमल की सात्विकता ने जल में गोता लगाने के लिए प्रवेश करने पर शरीर पिंड को ही बाहर से भिगोया। फिर भी ऐसा नहीं लग रहा था कि वह भिन्न है। उधर यशोदा को लगा जैसे कमल अतीत के साथ भविष्य को भूल गया है। उसके सामने केवल वर्तमान ही वर्तमान है, असीम वर्तमान, सीमाहीन अखण्ड प्रत्यक्ष। इस तरह यशोदा ने संशय, विकल्प, सन्देह के संकुचित ज्ञान खण्डों से अलिप्त कमल में अपने को पूर्ण पाया।

शिवानन्द अब बहुत प्रसन्न था। वह हृदय से यशोदा को सुखी देखना चाहता था। कमल के द्वारा उसके हाथ पकड़ लेने पर वह एक तरह निश्चिन्त हो गया। यही अब तक उसके भीतर एक कचोटन थी, एक बेचैनी। बीमारी के दिनों में जब-तब उसके पास जाने पर पहले वह यह सोचता कि वह अकारण उसके अन्तःसूत्र से बँधा है। लहर के भीतर से जैसे लहर पैदा होती है इसी तरह यशोदा का सात्विक आकांक्षा में उसके भले के लिये उसने उसका अंत मरण में चीता। वह समझने लगा अब बीमारी और मृत्यु ही उसके सम्पूर्ण दुखों की एक-मात्र औषधि है। यशोदा के कारण समाधि में उसका मन न लगता। वैराग्य में भी वह यशोदा के कारण चंचल हो उठता। कल्पना में कितना बल होता है यह उसने अब जाना। स्वामी हरिशरणानन्द ने एक बार जब तेज आँखों और पर्वत-सी भारी गम्भीर वाणी में यशोदा को बहन के रूप में मानने का उसके लालसा भरे मन में एक विश्वास जमा दिया तब उसका प्रमादी मन साँप के फन

पर निरन्तर चोट पड़ने पर मृत्यु की तरह शान्त हो गया। अब दूसरी कल्पना करने पर स्वामीजी की अग्नि-मूर्ति जैसे उसके सामने आ खड़ी होती। इसके बाद स्वामी हरिहरानन्द के द्वारा निरन्तर उपवास, मनःशुद्धि से उसे लगा कि उसका उन्माद अपने आप छटपटाकर मरते प्राणी की तरह निःशेष हो गया है। अब वेगों के सताने पर वह उनसे लड़ता, अपने को धिक्कारता। इतने पर भी जब वह बेचैन होता तो चाकू से जाँघ, हाथ में घाव कर लेता। यह सब किया उसने बाहर मारे फिरते रहने के बाद आश्रम में आकर संन्यास लेने पर।

एक बार जाँघ में घाव करने पर वह भाग पक गया। बहुत दिनों तक कष्ट से कराहता रहा। निकट ही था कि पानी पड़ने और लापरवाही से उसकी जाँघ के घाव में कीड़े पड़ जाते, तभी आश्रम के महन्तजी ने देखा। और मूल कारण जानने पर शिवानन्द की सब तरह से देख-भाल की। समझाया। इलाज किया।

आज वह शान्त था। सबेरे ही गंगा नहाने के बाद वह अकेली कौपीन पहने अर्गनी पर कपड़े सुखा रहा था कि इतने में कमल आ गया। उसने देखा शिवानन्द की जाँघों के दोनों ओर सूखे, गीले हरे घाव हैं। वह हैरान हो गया, और भी पास से, और भी गहराई से उसने देखा।

"शिवानन्द ?"

"हाँ,।"

"ये घाव कैसे हैं ?"

"ऐसे ही, सुना यशोदा तो ठीक है।"

"नहीं, बता क्या है यह ?"

शिवानन्द पास ही तख्त पर कपड़े से जाँघ ढककर बैठ गया। उसके मुख पर शान्ति थी। आँखों में दृढ़ता के साथ करुणा की लहरें। निःस्पन्द दीप की तरह निश्चल निर्बल देह। कमल उसे देखता रहा। उसे लगा क्या सचमुच यह वही शिवानन्द है, आश्रम का शिवानन्द। यशोदा के, और उसके पास आने-वाला शिवानन्द !

"मैं हठयोगी हूँ।"

"शरीर को कष्ट देकर ?"

"हा, मन का द्वार शरीर है न। जब मन नहीं मानता तो शरीर को पीड़ा देता हूँ। अभी पूरी सफलता नहीं मिली है। साधना-पथ पर हूँ।"

उसी समय महन्तजी आ गये तो बोले, "देख रहे हो इस शिवानन्द को ? पिछले एक मास से केवल पानी और नीम की पत्तियों पर रहता है।"

"अच्छा, मुझे नहीं मालूम था।"

शिवानन्द ने उत्तर दिया, "और कोई इलाज नहीं है कमल। चौबीस घण्टे लड़ना पड़ता है। मन के घोड़े की लगाम ढीली कर दूँ तो मार न दे कहीं ले जाकर ? आज एक वर्ष से बराबर लड़ाई हो रही है। कह नहीं सकता अब भी कि जीत ही गया हूँ।"

'वास्तविक वैराग्य है।"

शिवानन्द कुछ भी न बोला। वह आत्मलीन हो गया। सूर्य की किरणें उसके मुख पर पड़ रही थीं। सिर की जटाओं से पानी की बूँदें चू रही थीं। वह बैठा रहा। कमल कुछ देर बैठकर लौटा तो अपने भतीर ही भीतर न जाने क्या सोचकर सिहर उठा। इसी समय चिदम्बरं की छाया-मूर्ति जैसे उसकी आँखों में भर गई। वह पाठशाला से पढ़ाकर लौटा तब भी उसे चैन न मिला। मौन, निस्तब्ध, चिन्तातुर-सा साँझ को वह सीधा गंगा तट पर एकान्त में जा बैठा। चारों ओर धूप बिखरकर लौट गई थी। गंगा की चिंघाड़ती धार पत्थरों से लड़ती बह रही थी जैसे बहुत बच्चों वाली माँ चिल्लाती, चीखती, प्यार करती, बेतहाशा घर के काम में जुटी हो, इधर से उधर दौड़ रही हो। काफी देर तक वह अपने में खोया बैठा रहा। वह अपने से प्रश्न कर रहा था। "यह क्या हुआ ? क्या हुआ यह ? क्या करे वह ? चिदम्बरं को दिया वचन.........।" यह वाक्य उसके कानों में गूँजने लगे। एक धिक्कार की भावना से उसका अन्तर भर गया। उसके जी में आया भाग जाय। कहीं चला जाय। इसी समय उसके मन में एक और विचार का उदय हुआ। जैसे उस अँधेरे में चाँद निकल आया हो, पूर्ण चन्द्रमा। वह भीतर की खुशी से भर गया। उसका उद्देश्य अब स्पष्ट था। घर पहुँचते ही देखा यशोदा उसकी प्रतीक्षा में बैठी है।

"बहुत देर करदी।"

"हाँ, देर हो गई ।"

"शिवानन्द के पास गये थे ?"

"शिवानन्द महात्मा हो गया है। पिछले एक मास से उसने अन्न छोड़ दिया है । नीम की पत्तियाँ और गंगाजल ले रहा है ।"

"क्यों ?"

"साधना के रास्ते पर है न ?"

"मैं भी एक बार एक सप्ताह तक निराहार रही । स्वामीजी ने कहा था । बहुत दिन तक ठीक रही । ओः वे दिन······"

"अब ।" हँसकर कमल ने पूछा ।

"अब सब भूल चुकी हूँ । हाथ की थाप से नदी में पड़ा हुआ पानी का गढ़ा फिर भर गया है कमल ।"

"अब कैसा लगता है ?"

"जैसे तुम्हारी सत्ता की फुहारों ने मुझे ढक दिया है । कहीं भी कुछ नहीं है। केवल तुम हो । मैं भी नहीं हूँ । कोई भी नहीं है ।"

कमल ने सुना तो यशोदा का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाता बोला, "बिलकुल न खो देना यशोदा ।"

"भूख ही तुमने इतनी पैदा करदी तो मैं क्या करूँ ?"

"मैंने ?"

"अतिरिक्त भाव नहीं रहा कमल ।" यशोदा कमल की जाँघ पर सिर रख कर लेट गई । आवेग में आने पर वह यही करती थी ।

आँगन में खिले मोतिया, जूही, चमेली और गुलाब के फूलों की मदान्ध खुशबू से कमरा भर रहा था । दोनों खुशबू से खिले काफी रात तक बैठे बातें करते रहे ।

कमल से अयाचित दुलार पाकर यशोदा का प्यासा मन और भी अतृप्त हो उठा । वह वास्तविकता के बजाय स्वप्न में गर्क रहती । हृदय के मंद-मंद आवेगों को उभारनेवाली कमल की छवि में अब उसे वैसा लगता जैसा इससे पहले कभी नहीं लगा था । जैसे वही एक मात्र प्रेम की अधिकारिणी है, वही जानती

है प्रेम क्या है, कैसे किया जाता है ? मात्रा के अनुपात जैसे कहीं भी उसके सामने नहीं आये। दोनों के विश्वास जैसे एक बनकर एक-दूसरे में लय हो गये, दोनों की अनुभूति एक हो गई, दोनों के ज्ञान एक मार्ग से प्रसूत होते। एक दिन कमल ने नींद की गोदी से उतरने पर आकण्ठ रस विभोर यशोदा की आँखों में झाँकते हुए कहा,

"मेरा देय अब समाप्त है यशोदा।"

"जानती हूँ।"

"तुम यही तो चाहती थीं ?"

"अब उसका निर्माण मैं कर रही हूँ।"

"यहीं पुरुष की इति है।"

"हाँ, फिर 'प्रारम्भ' फिर 'अन्त'।"

"नारी को इसके अलावा और क्या चाहिए ?"

"न जाने क्या चाहिए। मैं कुछ भी नहीं जान पाती।" मुसकराकर मुँह ढक लिया।

"तो सुनो ?"

यशोदा ने आँखें मलीं, लेटे-ही-लेटे कमल की ओर देखा जैसे आँखों से प्रश्न कर रही हो।

"मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। अब···मैं···।"

यशोदा के ऊपर जैसे किसी ने घन गिरा दिया। वह उठकर बैठ गई।

"क्या कहना चाहते हो तुम ?"

"यही कि मैं अब निश्चिन्त हूँ।"

"मैं नहीं समझी। पहेली मत बुझाओ साफ कहो।"

"मैं जाना चाहता हूँ।"

"कहाँ···?"

यशोदा के मुँह से यह शब्द इतने जोर से निकला कि आँगन में बैठा हुआ कौवा उड़ गया। फिर बोली—

"और मैं ?"

"घबराओ मत। जो कहता हूँ, सुनो।"

"तुम जानती हो मैंने चिदम्बरं से प्रतिज्ञा की है।"

"क्या अभी तक तुम्हें वह याद है, मैं तो भूल गई थी। हाँ, फिर, देखो कमल, ऐसी बात मत सोचो।"

"मैं तुम्हें धोखा देना नहीं चाहता। मेरा मन सदा उत्तप्त रहता है। जब तुम बीमार थीं तब मैंने बिना कामना के तुम्हारी सेवा की। वह तो बूढ़े बाबा ने उस दिन अनायास ऐसे प्रसंग में लाकर मुझे बाँध दिया कि···।"

"तो क्या मेरे आत्मदान में तुम्हें कोई कमी लगी ?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

"मैं अयोग्य हूँ ?"

"वैसा भी नहीं है।"

"फिर तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"यही कि नारी के प्रेम की परिणति सन्तान है। मेरा विश्वास है तुम्हें तृप्ति मिलेगी।"

"मेरे सामने ऐसी बात मत करो। जैसे और रहते हैं वैसे रहो। तुम कहीं भी नहीं जा सकते। जाने से पहले मेरी हत्या कर दो, मुझे मार दो कमल, फिर जाओ।"

कमल चुप हो गया। यशोदा चौकन्नी हो उठी। उसने कमल को हर तरह अपने प्रणयपाश में बाँधने का उद्योग किया। वह हर समय उसका ध्यान रखती, उसको प्रसन्न करने वाली बातें कहती, अपने प्राणों की उत्तप्त ऊष्मा से उसे स्फूर्ति प्रदान करती। दूसरे-तीसरे दिन सोचते-सोचते उसने कहा,

"पाठशाला में मन न लगता हो तो नौकरी छोड़ दो। मैं सिलाई करके इतना कमा लूँगी।"

"मैं फिर क्या करूँ ?"

"कुछ नहीं।" इसके साथ ही उसने कमल को मदालस नेत्रों से देखा।

अब कमल के दो रूप, दो मन थे। एक रूप से वह यशोदा को हर तरह सुखी रखने की चेष्टा करता, दूसरे से वह निरन्तर चिदम्बरं, स्वामी हरिशरणानन्द

के सामने की गई प्रतिज्ञा से अपने को कर्त्तव्य के प्रति मजबूत बना रहा था। दोनों के चरम और अदम्य वेगों में अपना संतुलन बनाये रखने पर भी वह कभी एकदम विरक्त और कभी अनुरक्त हो उठता। दोनों प्रकार के विश्वास एक-दूसरे के विरोधी होते हुए भी उसके मन में पल रहे थे। यह भी एक साधना थी। कमल को कभी लगता वह केवल वास्तविकता का द्रष्टा है। मूल ध्येय उसका और ही है। उसके मन में अनुराग एक कर्त्तव्य था जिसमें बिना भीगे, बिना अपने को डुबोये वह चल रहा था। यशोदा को उसका अनुरागी रूप ही अब देखने को मिलने लगा। पाठशाला में पढ़ाने के बाद वह अब घर पर ही रहने लगा। उसे सुख पहुँचाने में ही जैसे उसका मन एक तृप्ति पाता। यशोदा अब पूरी तरह कमल पर निर्भर हो गई थी। उसने सर्वांग से सम्पूर्ण चेतन से कमल को स्वीकार कर लिया जैसे और कोई दृष्टि उसमें न रह गई हो। कमल को यदि थोड़ी देर भी न देखती तो बेचैन हो जाती। उसके आराम, उसकी खुशी, उसके रूप, उसकी मुस्कान के लिए छटपटाने लगती। इतना मोह-व्यामोह उसे कभी नहीं हुआ था। कभी-कभी उसे अपने पर आश्चर्य होता वह कैसी हो गई है, उसे क्या हो गया है। फिर भी उसका विहग मन उड़-उड़कर कमल में आश्रय पाता।

"जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवे।"

यशोदा अब भी कभी-कभी कमल के अतिरेक-अनुराग से शंकाकुल हो जाती।

और एक साँझ बाहर से आकर देखा, यशोदा दर्द से छटपटा रही है। वह कुछ भी नहीं समझ पाया। जैसे ही दौड़कर वैद्य को बुलाने के लिए चला तो यशोदा ने रोककर पड़ौसिन को बुलाने भेजा। पड़ौसिन आई। एक और औरत आई। वह समझ नहीं पा रहा था वैद्य की बजाय औरतें क्या इलाज करेंगी?

उस रात वह सो न सका अपने कमरे में बैठा रहा। सबेरे चार बजे के लगभग बच्चे के रोने की आवाज आई। साथ ही दाई ने आकर खबर दी, "लड़का हुआ है।" तो उसने माना जैसे वह थोड़ी देर में ही बहुत बड़ा हो गया है। उसके जीवन को एक नई जँजीर से बाँध दिया गया है। मन के फूलते

श्वासों से उसने यह समाचार सुना। यह एक नई अनुभूति थी। वह यशोदा के कमरे तक गया और औरतों को देखकर लौट आया। एक अजीब तरह का उद्वेग उसके भीतर उठ रहा था। इसी प्रकार के उतार-चढ़ाव में उसका वह दिन बीता। उस दिन वह पाठशाला भी नहीं गया। दिन-भर बाहर-भीतर का काम मशीन की तरह करता रहा। रात हुई तो एकान्त पाकर यशोदा के कमरे में गया। बच्चा सो रहा था। यशोदा दिये की रोशनी में आँखें फाड़े जाग रही थी। कमल को देखकर धीमी आवाज़ में बोली—

"आओ।" इसके साथ ही मुसकराकर उसने बच्चे की ओर इशारा किया। जैसे अपने से खुद शरमा गई हो।

"अब कैसी तबियत है ?" कमल ने पूछा।

"अब ठीक है। तुमने मेरी देख-भाल में काफी कष्ट उठाया। रात को सो भी क्या सके होंगे ?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।" उसने बच्चे, यशोदा को देखा और दूर बैठ गया। इसी समय दाई फिर आ गई तो वह चला गया।

"कोई काम हो तो बताना यशोदा, मैं बाहर ही हूँ।"

हँसती हुई अधेड़ दाई भीतर से चिल्लाकर बोली—

"तुम्हारा काम तो नौ महीने पहले ही खतम हो गया बाबू ? अब तो इन (यशोदा) का काम है।"

"बड़ी मुँहफट है री !" यशोदा ने मुसकराते हुए धीरे से कहा।

"झूठ है क्या ? कहे हैं आदमी से दुनियाँ है। भगवान दे है औरत ले है। आदमी को बरह्म ने भगवान बना दिया है। चल, खुश रहे। और हाँ।" कह कर वह काम में लग गई।

एक दिन कमल ने देखा तो बोला,

"बिलकुल माँ पर गया है। कैसी बड़ी-बड़ी आँखें हैं।"

यशोदा ने उत्तर दिया—"दिमाग तुम्हारा है अभी खुश, अभी रुआँसा।"

थोड़ी देर के लिए कमल बच्चे में लीन हो गया। वह उसे हर समय उठाये फिरता। खिलाता, थपथपाता, यशोदा काम करती। इसी बीच उसने अपना

सिलाई का काम शुरू कर दिया।

कमल हर्ष, प्रेम की चेतना की गठरी उस बच्चे में रम जाता और माँ को देने के बाद फिर अपने में खो जाता। बच्चे के आँख खोलकर कमल को देखने पर वह पाता जैसे बालक की पारदर्शी आँखों में कई स्वर्ग, कई वैभव के समुद्र लहरा रहे हैं। पानी से अलग-थलग कमल के फूल की तरह न उसे माँ का ज्ञान है न बाप का। कमल बच्चे को देखता रहता। वह पाता यह भी एक अद्भुत संसार है। जैसे बच्चे का सब कुछ अपने में सिमटा हुआ, अपने भीतर है। अपनी भूख, अपनी इच्छा, आत्ममय। कछुए के अंग की तरह बच्चे की कामना के पंख धीरे-धीरे उग रहे हैं। शाख की तरह फूट रहे हैं, इन्हीं में फूल काँटे उगेंगे, पेड़ के बीज में स्थित अनन्त प्रपंच की तरह वह बालक उसे लगा।

अपने भीतर से फट पड़ने की तरह कमल अब इन पिछले दिनों रात में फुर्सत पाकर कुछ लिख रहा था। एक दिन लिखा हुआ यशोदा को दिखाकर बोला—

"इसे छपवाना है ?"

"क्या है यह ?"

"स्वामीजी का उपदेश।"

यशोदा ने पढ़ा तो पढ़ती रही।

"खूब लिखा है, पढ़ते-पढ़ते जी में उमंग के ज्वार उठने लगते हैं। स्वामीजी वाला तो ऐसा जोरदार नहीं था। मैं सब पढ़ूँगी।" वह फिर पढ़ने लगी।

कभी-कभी पढ़ते हुए क्रोध से उछल पड़ती। कभी आँखों में आँसू आ जाते। मन भारी हो उठता। सब पढ़ने के बाद चुप होकर कमल को देखने लगी।

"आग बुझी नहीं है। तो क्या मैं भूल में थी ? मुझे नहीं मालूम तुम में इतनी ज्वाला भरी है।"

इसी समय बच्चा खाट पर पड़ा रो पड़ा तो कमल उठाकर हिलाने लगा। यशोदा मौन हो रही। वह देख रही थी कैसा विचित्र है यह (कमल)। वह फिर बीच में से कोई अंश पढ़ने लगीं। कमल से बच्चा शान्त न हुआ तो यशोदा ने ले लिया और दूध पिलाने लगी। उसे अपने पति पर गर्व हुआ। उसकी

आँखों के सामने स्वामीजी के आश्रम का दृश्य घूमने लगा। काफी देर तक वह अपने में खोई रही।

"इसके छपने की समस्या है। कौन छापेगा इसे ?"

"क्यों ?"

"भला ऐसी किताब छापकर कौन प्रेसवाला जिन्दा रह सकता है ? तुम तो जानती हो। इसीलिए हम लोग अपने प्रेस में इसे छापते थे। मैंने इसमें दो अध्याय और जोड़ दिये हैं। एक तो चिदम्बर का ही है। कुछ दिनों के लिये बाहर जाऊँगा देखूँ क्या हो सकता है ?"

यशोदा देख रही थी कमल को एक नशा सवार है। वह कुछ करना चाहता है। एक बार आगत के डर से वह काँप उठी। जैसे प्रलय के बादल क्षितिज की तहों से निकल रहे हैं।

हिचकियाँ लेकर धीरे-धीरे शरीर छोड़ते प्राणी की तरह कमल की यशोदा और बालक के प्रति आसक्ति क्षीण हो रही थी और दबी हुई पुरानी चेतना उभर रही थी। कभी वह अपने में इतना खो जाता कि भूल जाता वह कहाँ है, क्या कर रहा है ? यशोदा देखती तो देखती ही रहती। कमल उस लेख के बाद जैसे आपे में नहीं रहा है। वह चुप रहता खोया हुआ-सा। अन्त में एक दिन उसने कमल से कहा—"कब छपा रहे हो इसे ?"

"हाँ, क्या कहा ?" जैसे नींद से जागा हो।

"कब छपा रहे हो यह किताब मैं पूछती हूँ।"

"हाँ, छपवानी तो है।" उत्सुक होकर पूछा, "छपवा लूँ ?"

"हाँ, देखती हूँ इसके बिना कोई चारा नहीं है।" वह चुप हो गई। उसके भीतर विवशता का स्रोत फूट रहा था।

कमल अपनी किताब छपवाने के लिए काफी दूर-दूर तक गया। देहरादून में उसने देखा कि एक परिचित साधु ने प्रेस खोल रखा है, वहाँ गीता तथा इसी प्रकार की किताबें छापकर बेचता है। यह वही साधु था जो स्वामीजी के आश्रम के प्रेस में कम्पोज करता था। स्वरूपानन्द के सामने कमल ने अपनी बात रखी तो वह पहचान गया। उसके हृदय में पुराने भाव जागे। उसने वचन दिया।

दोनों रात को कम्पोज़ करते और फार्म छापते। दस दिन के निरन्तर परिश्रम से वह किताब तैयार हुई। न उसमें प्रेस का नाम था न जगह का नाम। स्वरूपानन्द प्रेस का काम दूसरे को सौंपकर कमल के साथ पुस्तक बाँटने निकल पड़ा। उन्होंने सभी जगह पुस्तकें बाँटी। जो भी पुस्तक पढ़ता उसमें स्वतन्त्रता के लिए मर-मिटने की हिलोरें उठने लगतीं। पढ़ते-पढ़ते लोग देश के गौरव पर झूमने लगते। आग बरसाती उस किताब को पढ़कर पाठक एक प्रकार के नशे में पागल हो जाते। उन्हें लगता सब छोड़कर युद्ध के लिए निकल पड़ें। विदेशियों को मार कर भगादें। चिदम्बरं की फाँसी का समाचार पढ़कर तो लोगों की आँखों में खून उतर आता। किताब की हर बात पाठक के मन में कील की तरह चुभ जाती।

किताब एक के हाथ से दूसरे के और दूसरे से तीसरे हाथ में पहुँचती सैंकड़ों की संख्या में लोगों के पास पहुँचने लगी। यही उसका मूल्य था। कुछ लोग पढ़कर डरे, कुछ ने सहमते हुए किताब दूसरे को दे दी।

पुस्तक के मुखपृष्ठ पर लिखा था—

"मूल्य स्वतन्त्रता प्राप्ति और अधिक से अधिक लोगों के हाथों में पहुँचाना। केवल अपने पास रखने या फाड़ देने पर गौहत्या के बराबर पाप।"

संगठन के सम्बन्ध में उसमें सूक्तियाँ थीं, "अपना संगठन आप करो। तुम स्वयं एक शक्ति हो। तुम में से प्रत्येक में अग्नि जल रही है। उसे जलाये रखो। जो कुछ कर सकते हो करो। मृत्यु अभय है। देश को मृत्यु का अभय-दान दो। मृत्यु से जीवन फूटेगा। दासता कलंक है। कलंक सिर पर रखकर मरने वाला देशद्रोही है, पापी है।" इसी प्रकार की बातें पढ़कर लोगों में अपने भीतर विश्वास पैदा होता। उनकी आँखें खुलतीं।

कमल और स्वरूपानन्द बादलों में बिजली की तरह चमकते और लीन हो जाते। जब तक लोग बाँटने वालों का पता लगावें तब तक वे दूसरे शहर में होते। रातों-रात, तीसरे-चौथे नगर में। दोनों का काम रात को शुरू होता। एक मुहल्ले में एक कापी रख जाते। अखबार के दफ्तरों, कचहरियों, रेल के मुसाफिरखानों, धर्मशालाओं, स्कूलों, कालिजों, पुस्तकालयों और इसी तरह के प्रसिद्ध

सार्वजनिक स्थानों पर किताबें चुपके से रख दी जातीं। लगभग दो मास में उन्होंने आधे से अधिक भारतवर्ष छान मारा। देश में एक प्रकार का भूचाल आ गया; सभी सार्वजनिक स्थानों, क्लबों, पुस्तकालयों, स्कूलों, कालिजों, कचहरियों में इस पैम्फलेट की तेजी से चर्चा होने लगी। लड़के जब-तब गिरोह बाँधकर सरकार के विरुद्ध चिल्ला उठते। मजदूर उसमें लिखे गीत गाने लगे। सर्वसाधारण तेजी से चर्चा करते। कुछ पुस्तकें पुलिस के हाथ लगीं तो उसने पता लगाने के लिए जमीन-आसमान एक कर दिया। जब किताबें खतम हो जातीं तो वे कुछ दिन रुककर और साहित्य तैयार करते, फिर दूर-दूर बाँटना शुरू कर देते। दूसरे प्रान्तों में बाँटने के लिए उस भाषा के जानने वाले उनके पास नहीं थे। जो दो-एक संन्यासी साधु मिले वे तैयार नहीं हुए। जो तैयार हुए वे ठीक से अनुवाद नहीं कर सके। इसी उधेड़-बुन में एक रात बैठे वे सोच रहे थे कि दरवाजा खटखटाने की आवाज़ आई। खिड़की से झाँककर देखा तो एक आकृति दिखाई पड़ी।

"कौन होगा?"

"न जाने।"

दरवाजे पर दूसरी बार थाप पड़ी। कमल सब सामान के साथ दूसरे कमरे में चला गया। स्वरूपानन्द ने किवाड़ खोले।

"कहिये?"

वह बिना बोले बैठ गया। चारों ओर तीव्र दृष्टि से देखता बोला—"मैंने गीता पर भाष्य लिखा है छपवाना चाहता हूँ।"

"तो क्या छपवाने के लिए आने का यह समय है?" स्वरूपानन्द का सन्देह बढ़ा।

"मैं दूर से आ रहा हूँ।"

"कहाँ से?"

"बताता हूँ।" कहकर वह उठा तो बीस-पच्चीस आदमी दरवाजे पर थे। मकान चारों ओर से घेर लिया गया। वह व्यक्ति बोला—"तलाशी लेनी है।"

"यही गीता है क्या?" कहकर स्वरूपानन्द हँसा। फिर बोला—

"कैसी तलाशी ?" स्वरूपानन्द ने जोर से कहा ताकि दूसरे कमरे में बैठा कमल सुन ले। कमल के पास कुछ प्रतियाँ थीं। उसने कपड़े में बाँधकर कमर में लपेट लीं और फुर्ती से दीवार पर चढ़ा तो दूसरी ओर भी कुछ लोग खड़े थे। वह छत पर गया तो दूसरे मकान में लोग दालान में बैठे बातें कर रहे थे। वहीं से मुड़ेर पर होकर चला तो गिरते-गिरते बचा। दूर जाकर वह गली में कूदा तो उधर से आते कुछ लोग चिल्लाये। अब कमल सिर पर पैर रखकर भाग रहा था। प्रेस के मकान से आगे पक्की सड़क, आगे कुछ बँगले, फिर जंगल शुरू होता था। कमल अब भी भाग रहा था। इसी समय एक पेड़ के नीचे खड़े होकर उसने लोगों को भागते, खोजते पाया। कमल जंगल-जंगल भागता रहा।

प्रेस में कुछ न मिला फिर भी पुलिस स्वरूपानन्द को पकड़ ले गई। उसे हवालात में बन्द कर दिया। उसे काफी कष्ट दिये गये। खूब मारा। भूखा रखा। तब भी स्वरूपानन्द ने कुछ नहीं बताया। वह दिन भर गीता पाठ करता या भजन करता। मन को दृढ़ रखने की प्रार्थना करता थानेदार ब्राह्मण था, साधु पर उसे दया आती। लेकिन पुलिस का सुपरिण्टेण्डेण्ट अंग्रेज था वह अपने सामने स्वरूपानन्द को कड़े से कड़ा दण्ड दिलवाता। कई दिन बीतने पर भी जब स्वरूपानन्द ने कुछ न कहा, कोई भेद न दिया तो उसे अँधेरी कोठरी में डालकर घोर यातना दी गई।

पुलिस कमल की तलाश में आस-पास के गाँवों और शहरों में फिर रही थी। रेल के स्टेशनों, ताँगों के अड्डों पर गोल के गोल गुप्तचर फिरते। साधुओं के आश्रमों, धर्मशालाओं, बाजारों में पुलिस के सिपाही घूमते। कमल छिपा-छिपा भाग रहा था। वह अब भी बची सामग्री बाँटता। इसी समय एक दिन वह भी पकड़ा गया। उसे प्रसन्नता थी। वीतराग की तरह निर्द्वन्द्व था। पुलिस में जाकर उसने अपना अपराध कबूल कर लिया। वह अपने काम को अपराध ही नहीं मानता था। उसने कहा—

"यह देश हमारा है। देशवासियों को जगाना, विदेशी सरकार के विरुद्ध प्रचार करना कोई अपराध नहीं है। छोड़ने पर भी वह यही काम करेगा। वह साधु है। साधु का काम देश की सेवा है। धर्म की सेवा है।"

अब पुलिस का काम हल्का हो गया। उस पर मुकदमा चला।

उधर यशोदा हर रोज़ कमल के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। एक दिन शिवानन्द के पास जाकर उससे कहा। महन्तजी भी वहीं थे। उन्होंने सुना तो बोले—

"सुना है साधुओं का एक दल राजद्रोह में पकड़ा गया है। हो सकता है कमल भी उसमें हो। ठीक नहीं मालूम।"

यशोदा ने सुना तो सन्न रह गई। थोड़ी देर तक वह समझ नहीं सकी क्या करे। इसी समय उसने निश्चय किया, बोली, "महन्तजी, मेरी एक प्रार्थना है।"

महन्त ने पूछा—"क्या ?"

"आप मेरे बच्चे के पालने का प्रबन्ध करें तो दया होगी।"

'इतना छोटा बालक हम कैसे रख सकेंगे ?"

"किसी को दे दीजिए।"

महन्त सोचते रहे।

"मैं भी उनके पीछे जाऊँगी।"

"तू कहाँ जायेगी ?"

"जहाँ कमल है वहीं।"

"पागल हुई है क्या, मैं कनखल में लड़कियों की एक पाठशाला खोले देता हूँ उसमें तू पढ़ा, अपना गुजारा कर।"

"नहीं, इसे कहीं रखवा दीजिए।"

यशोदा का मन मोह छोड़कर कमल की ओर दौड़ रहा था। इसी समय उसे लगा यह बालक उसके मार्ग में कितना बाधक है। पैम्फ्लेट की बातें उसे याद थीं, किन्तु विवश थी। वह जैसे कल्पना में कमल की आग बरसती बातें सुन रही थी। उसकी कार्य-कुशल दृढ़ आँखें जैसे उसके भीतर झाँक रही थीं।

उसने शिवानन्द से कहा तो वह भी कुछ न कर सका।

अन्त में हारकर घर लौटी। पड़ोसिन को देखा तो बोली—"बहन, क्या तू मेरे इस बच्चे को कुछ दिनों के लिये अपने पास रख सकेगी ?"

"इतने छोटे को, मालिक कहाँ है ?"

"उन्हें ही ढूंढ़ने जा रही हूँ।"

"कहाँ गये ?"

"न जाने, मैं उन्हें ढूँढ़ूँगी।"

"तो रख जा, मेरे एक लड़की है एक यह भी सही। आकर ले लेना।"

इसके बदले में उसने पड़ौसिन को अपनी सिलाई की मशीन सौंपने की बात कही।

"इसे बेचकर इसे पालना। लौटकर आई तो'''" बच्चा टुकर-टुकर माँ को देख रहा था। कभी हँसता, कभी मचलता, ऐंडकर माँ की तरफ हाथ बढ़ाता। यशोदा ने देखा तो देखती रह गई। उसने गोद में उठाकर प्यार किया। मुँह चूमा। बच्चा दूध के लिये कुलबुलाया। उसने आँचल खोलकर दूध पिलाया। वह मुँह भरकर दूध पीने लगा। यशोदा को लगा यह उससे न होगा। कैसे छोड़ेगी वह इसे ? उसके प्राण जैसे उबल-उबल उठे। छोड़ने की बात सोचते ही उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई। निर्बलता ने आकर उसे दबोच लिया। वह बच्चे के सिर पर हाथ फेरने लगी। वह दूध पी रहा था। निर्भय, निर्द्वन्द्व। यशोदा जैसे दूध के बहाने अपने हृदय का रस उस पर उँड़ेल रही थी। निरन्तर, अजस्र प्रवाही जीवन-रस।

पड़ौसिन ने देखा—

"अरी, क्या तू इसे छोड़ सकेगी ? देख तो कितना भोला है। कैसे छोड़ा जायेगा, तुझसे ?" बच्चा अब दूध पीकर प्रसन्न-चित्त माँ को देख रहा था। यशोदा ने भी उसे देखा। वह भूल गई वह क्या करने जा रही है। उसने उठा कर जोर से छाती से चिपका लिया। मातृत्व जैसे पुलक-पुलक उठा। वह आत्म-विभोर हो उठी। उसने निश्चय किया—नहीं, वह नहीं जायेगी। वह इसे नहीं छोड़ सकती।' अपने मन को समाधान देने के लिये उसने मन में कहा, न जाने कौन लोग पकड़े गये ? कमल उनमें है भी या नहीं। सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास कर लेना ठीक नहीं है। कमल निश्चय आवेगा। उसने कोई बुराई नहीं की है। उसने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा है। वह चुपचाप उठी और मकान में पहुँच गई। उसने निश्चय किया वह पाठशाला में लड़कियों को पढ़ावेगी। कमल लौट-

कर देखेगा कि कितना बड़ा काम उसने सँभाल लिया है तब वह खुश होगा। वैसे भी इस लायक वह है कि पाठशाला में लड़कियों को पढ़ा सके। इसके साथ ही कमल का ध्यान आया। न जाने वह कहाँ होगा, क्या कर रहा होगा? सच-मुच पकड़ा गया हो तो……।

उसका मन फिर बेचैन हो उठा। बच्चे को खाट पर लिटाकर वह खड़ी-खड़ी खिड़की से झाँकने लगी। नीचे एक बैलगाड़ी सामान भरे जा रही थी। गाड़ीवाला बैलों को सिसकारकर गा रहा था। गली उसके गाने से भर उठी। उसके पीछे एक लड़का उसको चिढ़ाने के लिये वैसा ही मुँह बनाकर गाने लगा तो गाड़ीवाले ने गाना बन्द करके एक गाली दी। अब वह फिर गाने लगा। लड़का फिर भी चिढ़ा रहा था।

दो औरतें पानी का घड़ा सिर पर रखे बातें करती जा रही थीं। नीचे एक बूढ़ा चबूतरे पर बैठा—खाँसता हुक्का पी रहा था। उसकी बूढ़ी औरत बुहारी लगाती उसके हुक्के को गाली दे रही थी। बूढ़ा बिना बोले खाँस रहा था। उसने थूका तो दूर मुंडेर पर बैठा कौआ वहाँ आकर चोंच मारकर खाने लगा। इसी समय दाल, सेब, समोसे लिये तेज फटी आवाज लगाता खोमचेवाला आ निकला। बूढ़े ने हुक्का पीना बन्द करके बुढ़िया से पूछा, "मन कर रहा है दाल-सेब ले लें क्या?" बुढ़िया खों-खों करके गुर्रा उठी, "कमाने का न धमाने का दाल-सेब खायेगा। हुक्का पी के जा जल्दी। देर हो गई है।" बूढ़े के इशारे पर रुका खोमचेवाला बोला—

"खा के तो देख माई, बहुत बढ़िया हैं।"

"जा-जा भाई, जा। हमें नहीं लेना।" वह बुहारी हाथ में लिये अभी तक खड़ी थी। चीमटा बजाता एक अपढ़ बूढ़ा साधु दबी हुई आवाज में अपने में मस्त गाता निकला—

राधे श्याम भई सीता राम,
गोपी गोविन्द जय सीता राम,
गोपी गुपाल भज सीता राम।

उसकी आवाज में एक अजीब मादकता थी, मिठास थी। यशोदा देर तक

सुनती रही। इसके बाद मृदंग बजाते कुछ बंगाली साधु बाल बढ़ाये गाते हुए निकले। वे बीच-बीच में गोल बनाकर नाचने लगते। वे गाते—

भज गोविन्द भज गोविन्द।

भज निमाई भज गोविन्द।

भज गोपाल भज गोविन्द।

वह मण्डली भी चली गई। यशोदा दूर तक गूँजती उस ध्वनि में खोई खड़ी रही। इसी समय शिवानन्द एक आदमी के साथ आता दिखाई दिया। दूसरा भी देखने पर साधु ही लगता था। नीचे से शिवानन्द ने आवाज लगाई—"यशोदा ! यशोदा बहन !"

बिना उत्सुकता के यशोदा ने उत्तर दिया,

"आ जाओ। ऊपर आ जाओ।"

दोनों ऊपर चले गये तो शिवानन्द ने यशोदा को गम्भीर पाया।

"क्या फैसला किया यशोदा ?"

"बैठो।" उसने पास पड़ी चटाई बिछा दी।

"यह साधु देहरादून से आये हैं। स्वामी स्वरूपानन्द के पास रहते हैं।"

यशोदा ने कुछ न कहा, आँखों से ही प्रश्न किया। "आत्मानन्द पकड़ लिये गये हैं। उन पर राजद्रोह का मुकदमा चल रहा है। स्वरूपानन्द भी पकड़े गये हैं। कोई कहते हैं मामला संगीन है। कोई कहते हैं शायद छूट जायँ। कोई वकील पैरवी करने को तैयार नहीं होता।"

यशोदा और भी गम्भीर हो गई।

शिवानन्द बोला—'गलती की कमल ने। भला सरकार से कोई लड़ सकता है ? मुझ से भी उसने कहा, मैंने कहा भाई, यह अपना काम नहीं है। अपना काम तो भजन करना है।"

"तो फिर ?" यशोदा ने पूछा।

"मैं तो तेरा दुख देखकर इन्हें लाया हूँ। पहले समझता था, कमल अब ठीक हो गया होगा पर किसे मालूम था कि वह अब भी वैसा ही है। अब तू उसका खयाल छोड़कर पाठशाला में पढ़ाना शुरू कर दे। महन्तजी ने कहा था न, वे

तैयार हैं। कनखल में एक हवेली खाली पड़ी है। कहे तो कहूँ। कमल के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कर सकते। बोल, क्या कहती है ?" शिवानन्द ने पूछा।

वह गेरुए वस्त्र से सिर ढके था। गले में मोटी रुद्राक्ष-माला झूल रही थी। माथे पर गंगा-रज का त्रिपुण्ड, हाथ में भी रज, दाढ़ी-मूँछों से भरा मुँह, आँखें चमकतीं। दूसरा आदमी सादा वेश में, एक गेरुआ कुर्ता और लुँगी पहने सिर पर छोटे-छोटे बाल। माथा चौड़ा। गेहुँआ रंग। साधारण व्यक्तित्व। हाथ-पैरों से मोटी नसें चमक रही थीं। यशोदा दूर जमीन पर नीचे निगाह किये बैठी रही।

"हम लोगों के पास पैसा भी नहीं है। वकील भी नहीं मिलता। क्या करें। सुना है स्वामी आत्मानन्द जेल में सुखी हैं। हमारे स्वामी दुखी है। शायद वे माफी माँग लें। हमने कहा है माफी माँग लो। लेकिन स्वामी आत्मानन्द माफी नहीं माँगेंगे। उन्होंने अपना दोष मान लिया है। वैसे जेल में मार-पिटाई बहुत होती है। हमारे स्वामीजी को पुलिस ने बहुत मारा है। आत्मानन्द की बाबत कुछ नहीं मालूम। अरे स्वामीजी, उनसे मिल भी तो नहीं सकते। बड़ी मुश्किल से एक बार भेंट हुई।" दूसरे साधु ने कहा।

"फिर मुझ से क्या कहते हो ?" यशोदा ने पूछा।

"इन स्वामीजी ने चाहा आपको खबर दे दें सो आये हैं।" साधु बोला।

शिवानन्द ने कपड़ों से हाथ निकालकर उपदेश देने के ढँग से कहा—"तू भी क्या कर सकती है, आग में हाथ देने पर क्या विना जले बच सकता है ? कमल को मैंने बहुत बार समझाया। मैंने कहा—गृहस्थ किया है तो उसे पाल। पर वह नहीं माना। भाग्य ही खोटा है। क्या किया जाय। वह तो जन्म का विद्रोही है। नारायण।"

"तो चलें।"

"हाँ, महन्तजी से कहकर पाठशाला खोले देता हूँ। बीस रुपया माहवार मिलेगा। काफी है। गुजारा करना। कभी-कभी महन्तजी और भी मदद करेंगे।

उन्होंने मुझसे कहा है।" वे दोनों उठे तो यशोदा ने कहा—

"कृपा करके उनके सम्बन्ध में मुझे खबर देना। कहाँ हैं वे?"

"सहारनपुर जेल में।" साधु बोला।

"क्या मैं मिल सकती हूँ?"

"कोशिश कर देखो शायद मिल सको। मैं तो देहरादून जा रहा हूँ। दोनों चले गये। शिवानन्द फिर लौटा तो बोला—

"तू मेरी बहन है यशोदा, अब उसका विचार छोड़ पाठशाला में काम कर। महन्तजी बड़े भले हैं। वे तेरी सहायता करते रहेंगे। ले, ये रुपये रख ले।" कह कर उसने रुपये दिये। यशोदा ने ले लिये। शिवानन्द चला गया।

यशोदा रुपये मुट्ठी में दबाये अपने में खोई बैठी रही। वर्षा से पहले घुटन की तरह की ऐंठन उसके मन में हो रही थी। कमल का समाचार सुन कर कुछ भी एकाएक निश्चय न कर सकी। उसे सब ओर सूना दिखाई दे रहा था। कहीं भी कोई प्रकाश की किरण नहीं थी।

अतिरिक्त घुटन से उसका मन बैठा जा रहा था। उसे पहले कमल पर गुस्सा आया, क्यों उसने ऐसा किया? उसे ध्यान आया इन पिछले दिनों रातों वह बैठा लिखता रहा। जब नहीं लिखता था तो चुप बैठा रहता था। न जाने क्या हो गया था उसे। आवाज लगाने पर मुसकराता आकर खड़ा हो जाता। जैसे मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करता रहता हो और हृदय का सारा रस मेरे ऊपर उँड़ल देता। एक तरफ इतना स्नेह, दूसरी तरफ यह लगन। लगता है जैसे वह चिदम्बरं को दिये वचन को एक क्षण भी नहीं भूला। और मेरे प्रति भी उतना ही अनुरक्त। यशोदा जितना कमल के सम्बन्ध में सोचती उतनी ही तेज़ी से कमल की चिन्ता में डूब जाती। जैसे कोई बालक माँ की याद में विह्वल हो रहा हो। उसके हृदय की विह्वलता बढ़ती जा रही थी। वह सोचती न जाने क्या हालत होगी। कैसा होगा कमल, क्या सोचता होगा? पुलिस वाले न जाने कितना कष्ट देते होंगे उसे, हाय, वह क्या करे, कैसे उससे मिले? साधु ने कहा था, कोशिश कर देखो। कोशिश, कोशिश, यह शब्द उसके मस्तिष्क में गूँजने लगा। वह खड़ी हुई तो बरामदे के खम्भे का सहारा लेकर उससे चिपट गई। आँखों

में आँसू भर आये। कमल से मिलने की उत्कण्ठा उसके भीतर धीरे-धीरे जाग रही थी जैसे धौंकनी से कोई आग को फूँक रहा हो।

साँझ हुई। रात हुई। वह बेचैनी से इधर-उधर घूमती रही। घर में दिया भी नहीं जलाया। खाना भी नहीं बनाया। बच्चा अब भी सो रहा था। उसने सोता हुआ देखकर उसे उठा लिया और प्यार से मुँह चूमकर दूध पिलाने लगी। सबेरे से कुछ भी नहीं खाया था इससे दूध भी नहीं उतर रहा था। बच्चा भूख में माँ के स्तन चींथने लगा। फिर भी वह कमल की चिन्ता में लीन थी। कभी टहलती, कभी खड़ी हो जाती। कभी थककर बैठ जाती। वह सोच रही थी, सोचती ही जा रही थी। रोते, चिन्ता करते, जागते उसकी आँखें लाल हो गईं। पीला चेहरा और मुर्झा गया। एक ही दिन में लगता वह पहले वाली यशोदा नहीं है। रात भर में बूढ़ी हो गई है। फिर भी किसी दृढ़ निश्चय पर आ रही थी। अचानक उसने निश्चय किया वह सहारनपुर जाकर कमल को देखेगी। सबेरा होने में देर थी। उसने कपड़े पहने, बच्चे को गोद में लिया और शिवानन्द के दिये रुपये लेकर घर में ताला लगाकर वह निकल पड़ी। न वह पीछे फिरी न ताला ही खींचकर देखा। पैदल ही चल दी और स्टेशन पर आ गई।

सहारनपुर छोटी जगह नहीं है, शहर है। पूछती-पूछती वह जेल के फाटक पर पहुँची। उसने सन्तरियों से पूछा तो झिड़की मिली, वह पीछे हटी। सड़क पर खड़ी हो गई। जो कोई आता-जाता मिलता उससे कमल की बाबत पूछती। दोपहर से शाम हुई वह अब भी पूछ रही थी। जैसे पागल हो गई हो। एक आदमी ने दया करके उसे जेलर से मिलाया तो सुनकर उसने कहा—

"कमल नाम का तो कोई आदमी नहीं है एक साधु है आत्मानन्द, लेकिन वह तो साधु है। तू उसकी कौन है ?"

"पत्नी।"

"पत्नी, साधु की पत्नी, गलत बात है तू नहीं मिल सकती। जा भाग।"

वह लौट आई, सिपाहियों ने निकाल दिया। अँधेरा हो गया था। दिन भर की थकी, भूखी-प्यासी, धूल से भरी लटें। मुर्झाया हुआ चेहरा, रह-रहकर बच्चा रो उठता। वह झल्लाकर उसे पीटती।

रात भर वह एक पेड़ के नीचे ठिठुरती पड़ी रही। जैसे कमल से मिलने का एक नशा उसमें छा गया हो। सबेरा हुआ, दोपहर आया अब जेल में मिलने वालों की चहल-पहल शुरू हुई। लोग आने लगे। कोई फल ला रहा था, कोई कुछ। वह भी उस झुण्ड में जाकर खड़ी हो गई। पर उसे किसी ने घुसने ही नहीं दिया। अचानक उसने कल वाले आदमी को देखा तो घिघियाते हुए उसने प्रार्थना की। उसके पैरों पर गिर पड़ी।

"तो मैं क्या करूँ बोल, कल जेलर ने मना तो कर दिया, अब क्या हो सकता है?"

"तुम चाहो तो सब कुछ कर सकते हो। तुम मेरे माँ-बाप हो, मेरे भगवान हो।"

उस व्यक्ति को दया आई तो वह प्रयत्न करके जेलर से मिला। जेलर ने कहा—"वह राजनैतिक कैदी है उसके ऊपर भयंकर जुर्म है। वह अंग्रेजी राज को उलट देने के अपराध में बन्दी है। उसने मजिस्ट्रेट के सामने अंग्रेजों को कोसा है। फिर यह उसकी कोई नहीं है। साधु के औरत, न जाने क्या मामला है? कोई भी विश्वास नहीं करेगा। उससे मिलाना अब मेरे हाथ में नहीं है। और आज तो वह जा रहा है।" यशोदा साँस साधे सब सुन रही थी। उस व्यक्ति ने उसकी तरफ से पूछा—

"कहाँ जा रहा है, क्या उसका फैसला हो गया?"

"हाँ।" जेलर ने दया भरी नजर से यशोदा को देखा और बोला, "उसे काला पानी हो रहा है। इतने दिनों कोई नहीं आया।"

यशोदा ने सुना था काला पानी बहुत दूर है। उसने सुना तो धम्म से जमीन पर बैठ गई। चिल्लाकर पूछा,

"कब? कब?" इतना ही कह पाई।

जेलर ने इशारा किया और एक गिलास पानी पिलाकर उसे पास ही बैठाया। बोला—

"बहन, मुझे दुख है मैं कुछ भी नहीं कर सकता। मैजिस्ट्रेट ने उसे चौदह साल की सख्त सजा दी है। रात की गाड़ी से वह जायेगा इतना कर सकता हूँ

तू उसे उस समय दूर से देख ले।"

यशोदा को होश नहीं रहा। बच्चा छूटकर उसकी गोदी से गिरकर रोने लगा। एक ने उसे उठा लिया। जेलर इसी समय चला गया। एक ने पूछा, "कौन है?"

यशोदा के साथी ने कहा, "न जाने दुखिया है बिचारी। मैं भी क्या करूं। मन न माना ले आया। जेलर भी लाचार है।" इसी समय वह फिर आ गया। उसने यशोदा से कहा—

"स्टेशन पर चली जा, वहीं पुलिस की गाड़ी से उतरते देख लेना। मैं दिखा दूँगा। जा।"

साथी ने उसे ताँगे पर बैठा दिया और अपने काम से चला गया। यशोदा अर्द्धचेतना अवस्था में भूताविष्ट-सी ताँगे से उतरकर पुलिस के दफ्तर के पास आकर खड़ी हो गई। वहाँ उस समय सुनसान था। पुलिस के दो कर्मचारी बाहर खड़े बातें कर रहे थे। वह निश्चल जड़ की तरह खड़ी थी अपने में खोई-सी। कब तक वह खड़ी रही इसका उसे कोई खयाल न रहा। उसे लगता जैसे वह सपना देख रही है, एक अज्ञात सपना। उसकी पलकें स्थिर थीं। अंग-अंग जैसे जड़ हो गये हैं। बाहर का उसे कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। उसके भीतर के श्वास-प्रश्वासों में उठते जाग्रत चेतन तन्तुओं की लहरों में पुराने जीवन के चित्र उठ रहे थे। पति, ननद, ऋषिकेश की घटना, साधु दैत्य का विकृत चित्र, कमल, स्वामी हरिशरणानन्द, विज्ञानानन्द, चिदम्बरं सभी उसके मन की लहरों में आते और विलीन हो जाते। फिर बीमारी और कमल की सेवा। बूढ़े का दिया वरदान। कमल का आश्रय, प्रेम की अदम्य नदी का बहाव सब जैसे मूर्तिमान हो रहे थे। स्टेशन की चहल-पहल से उसकी चेतना धक्का खाकर कुछ देर के लिये जागती और फिर उसी समय वह अपने पूर्वरूप में विलीन हो जाती। कभी उसका मन अज्ञात, अनदेखे भविष्य से डरकर चौंक उठता, कभी वर्तमान के उस अनभीष्ट दृश्य से सिहर उठता। एक अजब बेचैनी, ऊब, निराशा उसे घेरने लगी। उसे कभी लगता उसका हृदय फट जायगा। सारा जीवन रस का घट अतिरिक्त अदम्य वेग को न सहकर फूट जायगा। वह अपने को सँभालती किन्तु सँभाल नहीं पा रही थी

वह खड़ी थी जैसे जमीन ने उसे पकड़ लिया हो। बगल में बच्चा दबा था। इसका भी उसे ज्ञान न था। एक अनागत भय, अनागत आशंका से वह काँप रही थी। उसे लग रहा था आज वह अकेली है बिना सहारे के, बिना आश्रय के। पृथ्वी ने सारा आधार उसका छीन लिया है। वह अधर में लटक रही है। पहाड़ की चोटी से जैसे उसे किसी ने नीचे गिरा दिया है। उसमें प्राण नहीं है, रस नहीं है, दिशा-ज्ञान नहीं है, वह कौन है यह भी नहीं जानती। वह कहाँ है यह भी नहीं मालूम। न जाने कब तक वह अर्द्ध-तन्द्रा में विक्षिप्त-सी, पागल-सी, अचेतन-सी खड़ी रही फिर बैठ गयी। रोना उसे नहीं आ रहा था जैसे सारे आँसू सूख गये हों। इसी समय पुलिस कर्मचारियों के बूटों की टापें पड़ीं। लोगों का आना-जाना शुरू हुआ। जेलर ने उसे देखा तो पीछे ले जाकर खड़ा कर दिया। वह बिना बोले चुपचाप जाकर खड़ी हो गई।

उसने देखा पुलिस ने एक कमरे में दो बन्दियों को दस सिपाहियों के पहरे में ले जाकर बैठा दिया। जेलर फिर आया। उसने यशोदा से कहा—

"आ गया है देखना हो तो देख ले।"

यशोदा ने रेलवे पुलिस के कठघरे में बन्द बाहर किवाड़ के शीशे से देखा। एक घुटन्ना, कुरता और टोपी पहने हाथों में हथकड़ी, पैरों में बेड़ी से बँधा कमल खड़ा था।

यशोदा चिल्लाई—"कमल!"

कमल चिल्ला रहा था, "जय भारत माता की! जय-जय स्वतन्त्रता की!" उसने कुछ भी नहीं सुना। फिर अचानक उसने यशोदा को देखा तो वह बढ़ा।

शीशा दोनों की आवाज को रोक रहा था। यशोदा सिसक रही थी। कमल की आँखों में आँसू ढुलककर उसकी घनी मूँछ और दाढ़ी पर आ रहे। दोनों एक-दूसरे को देखते रहे, देखते रहे। कमल ने हाथ फैलाये तो सिपाहियों ने रोक दिया। यशोदा शीशे से चिपट गई। वह रो रही थी, चिल्ला रही थी। पुलिस ने उसको हटा दिया। इसी समय पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा अन्य कर्मचारी आ गये। प्लेटफार्म पर दूर खड़े एक डिब्बे में कमल और उसके साथी ले जाये गये। यशोदा ने जाते देखा तो वहीं एक कोने में खड़ी मूर्छित होकर गिर पड़ी।

कमल 'स्वतन्त्रता की जय !' चिल्लाता जा रहा था। उसे बोलने से रोकने के लिए पीठ पर डंडे पड़ रहे थे। तब भी वह बोल रहा था जैसे स्वतन्त्रता देवी की जय में वह अपने को भूल गया हो, नशे में भर गया हो।

यशोदा मूर्छित पड़ी थी। उसके सिर से खून बह रहा था। बच्चा उसकी छाती पर पड़ा था, वह दूध पी रहा था या उसका अशेष रक्त, कौन जाने।

राज-विद्रोही कमल की खबर पुलिस के दबाने पर भी सारे शहर में फैल गई। उसकी आकाश गुँजाती स्वतन्त्रता की आवाज़ को कोई न रोक सका। गाड़ी में भी वह नारे लगाता रहा। कम्पार्टमेण्ट का खिड़कियाँ बन्द कर दी गईं, किन्तु उसके शुद्ध हृदय की गरजती आवाज़ से प्लेटफार्म और आस-पास के कुली, यात्री चौकन्ने हो उठे। जैसे हर दर्शक का हृदय मिसमिसाकर उस आवाज़ का साथ दे रहा हो। धीरे-धीरे वह स्वर दबकर फूट उठा। और देखते-देखते प्लेटफार्म और इधर-उधर के लोग पुकार उठे—"स्वतन्त्रता देवी की जय ! भारत माता की जय!" हवा की लहरों ने अदम्य वेग से फैलकर कमल की आत्मा से फूटते उस स्वर को सारे वातावरण में फैला दिया। पुलिस के अधिकारियों की सतर्कता पर भी निगाह दौड़ाकर सिपाहियों ने देखा कि जमीन पर मूर्छित पड़ी यशोदा अब वहाँ नहीं है। इतना बड़ा शरीर कहाँ और कैसे गायब हो गया यह पुलिस न जान सकी।

यशोदा का एक मकान में इलाज हो रहा था। शरीर से स्वस्थ होने पर भी जैसे उसकी संज्ञा खो गई थी। वह न बोलती, न देखती, न हँसती, न रोती। स्वप्न में अभिभूत प्राणी की तरह वह निश्चेष्ट थी। कई दिनों तक उसकी यही हालत रही। जैसे अचेतन के पर्तों में उसका ज्ञान दबा-दबा घुट रहा हो। आँखें देखने पर भी कुछ न देख पाती हों, बोलना चाहने पर वाणी कुछ न बोल पाती हो, ज्ञान की लहरें इन्द्रियों की पकड़ से बाहर हो गई हों। उस मकान में एक पुरुष था और एक स्त्री। दोनों प्रौढ़। वे ही उसकी देख-भाल करते। स्त्री बच्चे को सँभालती और उसके पास बैठी रहती। पुरुष बाहर

का काम, दवा-दारू का प्रबन्ध करता। रात को कुछ और लोग भी आकर चुपचाप यशोदा को देख जाते। वह करवट लिये आँखें खोले देखती रहती। क्या देखती थी यह स्वयं नहीं जान पाती थी। बच्चे से भी उसे मोह नहीं था। वह रोता तो रोता ही रहता। प्रौढ़ा स्त्री के बहुत प्रयत्न करने पर भी बच्चा बीमार हो गया। उसकी साँस चलने लगी। वह उसे देखती तो भी कुछ न कहती जैसे वह उसका कोई न हो।

पुरुष देखकर कहता—"गहरा धक्का लगा है।"

"हाँ, बच्चे को भी प्यार नहीं करती।"

"होश में नहीं है।"

"डाक्टर कहता है, पन्द्रह दिन तक ठीक होगी। मानसिक बीमारी है।"

बच्चा सूखता जा रहा था। उसकी आवाज़ रोते-रोते बैठ गई थी। दूध उसने छोड़ दिया था। अभिभावक चाहते थे कुछ पता लगे। कौन है यह! इसी प्रतीक्षा में वे इलाज कर रहे थे। कुछ उद्देश्य के प्रति हमदर्दी, कुछ मानवीय भावना दोनों ने दम्पति को यशोदा और बच्चे की सेवा करने को बाध्य कर दिया था। उधर पुलिस यशोदा को खोज रही थी।

शिवानन्द ने दूसरे दिन सबेरे ही जाकर देखा तो पाया, यशोदा के मकान में ताला लगा है। पड़ौसिन से पूछने पर भी कुछ पता न चला। वह लौट आया। पहले उसमें उदासीनता भरी विरक्ति जागी। वह सोचने लगा, उसे किसी स्त्री से क्या लेना है। गई है तो जाए। वह उसका कौन है? क्यों उसके पीछे हैरान हो? संसार में अनेक ऐसे हैं, अनेक दुःखी हैं; यह तो कर्म-चक्र है; भाग्य की विडम्बना है; दुःख-सुख दोनों ही जीवन के भोग्य हैं, यशोदा भी भोगे, वह कुछ नहीं करेगा। कमल का भी उसने क्या कर लिया? प्रेरणा और संस्कार की प्रबलता से ही मनुष्य अपना निर्माण करता है। परन्तु वह रोज के मुताबिक ध्यान करने बैठा तो ध्यान न जम सका। भजन भी उससे न हुआ। गीता पढ़ने लगा तो उसमें भी यशोदा की मूर्ति आकर बीच में खड़ी हो जाती। उसने गीता उठाकर रख दी। वह कमरे में ही टहलने लगा। एक बेचैनी-सी उसे होती। उसके

मन ने पुकार-पुकारकर कहा, "वह साधु है। साधु का काम दीन-दुखी का उद्धार है। उसे यशोदा का उद्धार करना चाहिये। वह उसका उद्धार करेगा। कमल से हटाकर उसका मन आध्यात्मिक-शान्ति की ओर लगायगा। यही जीवन का लक्ष्य है। वह उस पापिन को, व्यभिचारिणी को, जीवन का वास्तविक लक्ष्य बतायगा। वही उसका उद्धार कर सकता है। वही।"

थोड़ी देर में उसे लगा—जैसे यशोदा उसके पैरों पर पड़ी फूट-फूटकर रो रही है। वह बीच-बीच में उसकी तरफ देखकर पुकार उठती है—"शिवानन्द मेरा उद्धार करो। मैं पापिन हूँ, व्यभिचारिणी हूँ। मेरा उद्धार करो! शिवानन्द! शिवानन्द! शिवानन्द! शिवानन्द!"

उसे लगा चारों तरफ यशोदा की मूर्तियाँ उसे घेरे हैं। वह कान बन्द करके आँखें मींचकर खड़ा है। बहुत देर बाद जैसे उसकी चेतना लौटी। वह कहाँ गई होगी, सहारनपुर? सहारनपुर ही तो उस साधु ने बताया था। एक अदम्य वेग उसके भीतर जागा। वह उसे खोजेगा। उसका उद्धार करेगा। उद्धार, उद्धार!

एक अज्ञात प्रेरणा से बँधा वह सहारनपुर के लिए चल पड़ा। जिस साधु-मण्डल में वह पहुँचा वहाँ भी आत्मानन्द के काले पानी जाने की चर्चा हो रही थी। कोई कह रहा था—"वह साधु कुल का कलंक है, पतित है, उसने साधु-धर्म पर बट्टा लगाया है।"

दूसरा कह रहा था—"वह महान् है। उसने वास्तविक साधु-धर्म का पालन किया है। यही साधु का धर्म है।"

दोनों में वाद-विवाद हो रहा था। दो दल हो गए थे। दोनों अपने पक्ष की घोषणा बड़े ऊँचे तीखे स्वरों में कर रहे थे। बातों-बातों में जो गाली-गलौज हुआ तो उससे बढ़कर हाथापाई की नौबत आ पहुँची। इसी बीच बड़े महन्त ने आकर दोनों को डाँटा और हटा दिया। शिवानन्द को मालूम हुआ कि आत्मानन्द को काले पानी की सजा हो गई है। यशोदा के बारे में पता चला कि जब उसे ले जाया जा रहा था, तभी एक औरत प्लेटफार्म पर बेहोश हो गई थी। उसके साथ बच्चा भी था। शायद वह यशोदा ही हो! उसने एक

आदमी से पूछा—"कहाँ गई वह ?"

"न जाने। हम क्या औरतों के पीछे फिरते हैं।" वह शिवानन्द को घूरने लगा। शिवानन्द चुपचाप उठकर महन्त के पास जा बैठा।

"कहो, कनखलवाले महन्तजी प्रसन्न तो हैं ?"

"हाँ, कृपा है। आत्मानन्द के सजा मिलने पर एक औरत जो प्लेटफार्म पर बेहोश हो गई थी उसका पता लगाना है।"

"वह तुम्हारी कौन है ?" महन्तजी ने टेढ़ी निगाह करके संशय भरी दृष्टि से पूछा।

"बहन है, महन्तजी।"

"तुम तो साधु हो। साधु के तो कोई नहीं होता। न माँ, न बाप, न भाई, न बहन ! साधु तो अजन्मा है।"

शिवानन्द चुप हो गया। क्या जवाब देता। वह बैठा रहा। उसके भीतर उत्सुकता बढ़ रही थी। महन्तजी उठकर किसी काम से चले तो शिवानन्द बाहर निकलकर घूमता रहा। सभी अस्पताल, औषधालय, सार्वजनिक स्थान उसने ढूंढ़ डाले। जहाँ भीड़ देखता, खड़ा हो जाता। बात-चीत सुनता। लोग अपने कामों में व्यस्त थे। किसी को भी फुर्सत नहीं थी। शिवानन्द बाजारों-गलियों में चक्कर काटता रहा। जितना ही वह निराश होता उतनी ही उत्सुकता उसमें बढ़ रही थी, उतनी ही तेजी से वह उसे पाने को बेचैन हो उठता। हर चलती-फिरती स्त्री की पीठ उसे यशोदा की पीठ दिखाई देती। उसके मन में यशोदा के उद्धार की भावना और गहरी हो उठती। कभी वह कोठियों की तरफ निकल जाता, कभी बाग में जा बैठता। कभी स्टेशन का चक्कर लगा आता। यशोदा उसे कहीं भी नहीं मिल रही थी।

अचानक एक शाम के झुटपुटे में उसने देखा एक आदमी मरे हुए बच्चे को गोद में उठाए लिये जा रहा है। साथी आदमी के हाथ में लालटेन है। दो औरतें उसके पीछे हैं। औरत सुबक रही है दूसरी उसे पकड़कर चुप करा रही है। शिवानन्द शक में आगे बढ़ा। वह यशोदा थी। "यशोदा ! तो क्या यह उसी का बच्चा है ? मर गया ?" उसे एक धक्का-सा लगा। वह बिना कुछ कहे पीछे

चलने लगा। श्मशान के पास पहुँचकर ठहरा। उस समय रात हो गई थी। जब वे एक घंटे के बाद लौटे तो वह भी साथ हो लिया। पास पहुँचकर उसने बुलाया, "यशोदा !"

यशोदा ने जैसे कुछ भी न सुना। उसने देखा तक नहीं। दूसरे साथी ने पूछा—"कहो, क्या बात है ? तुम कौन हो ?"

"यशोदा मुझे जानती है।"

"यशोदा, क्या इसका नाम यशोदा है ?"

अचानक यशोदा जो रुकी तो उसने शिवानन्द को देखा। "शिवानन्द !" थोड़ी देर बाद जैसे एक वेग उसके भीतर भर गया। वह अपने को न रोक सकी। चिल्लाकर बोली—"कमल का निशान भी आज मिट गया !" वह बीच सड़क में बैठ गई। शिवानन्द देखता खड़ा रहा। उसके मुँह से कोई शब्द न निकला। प्रौढ़ा ने उसे सँभाला और ले चली।

सब चुप थे। आदमी ने कहा, "घर तक चलो।"

यशोदा का सब कुछ चला गया था। स्नेह का बन्धन एक बच्चा, वह भी उसके हाथ से छिन गया। सारे तार एक-एक करके टूट गये। निरालम्ब, बिना सहारे के यशोदा का हृदय बाँध तोड़कर बहने वाली बाढ़ की नदी की तरह रो पड़ा। उसका वह रुदन रोम-रोम का रुदन था, आत्मा की विशृंखल कड़ियों का झीने और निर्बल सहारे का रुदन था। जैसे उसके सारे सम्बन्ध अज्ञात के प्रबल हाथों ने एक-एक करके धो डाले। जिनके यहाँ वह आश्रय पा रही थी उनमें मानवता की भावना थी, किन्तु गाढ़ ममत्व का अभाव था। दया थी, मांसल स्नेह नहीं था। करुणा थी, किन्तु अपनत्व के स्तनों का दूध नहीं था। जीवन था, किन्तु आबद्ध प्राणों से शून्य। शिवानन्द को देखते ही उसकी आत्मा सहस्र धार होकर फूट पड़ी। रोते-रोते उसका गला बैठ गया। शिवानन्द बैठा देखता रहा। देखता ही रहा। करुण अनुभूति से जागता हुआ भी वह उसे देखता रहा। अन्त में उठते हुए वह बोला—"यशोदा, यह सारा संसार दुखमय है। भाग्य को हँसकर भोगना ही परम पुरुषार्थ है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अब भी समय है, अपने को पहचान। अपने भीतर की पुकार सुन। जितना

जिसका सम्बन्ध था, वह रहा। अब तेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य इतना कमजोर नहीं है, केवल उसका संस्कार-ज्ञान कमजोर है। स्वामी हरिशरणानन्द की शिष्या होकर रोती है। उठ, आज समय है। तू अपने पापों का प्रायश्चित्त कर। उसी में तेरा कल्याण है। मैं कल सवेरे आऊँगा। उठ जाग, समय को पहचान, अपने को पहचान। उस ईश्वर को पहचान जिसने तुझे यह ज्ञान दिया है। रात भर सोच। खूब सोच ले।"

शिवानन्द कहकर चुपचाप बिना पीछे की ओर देखे चला गया। यशोदा रोना बन्द करके शिवानन्द को जाते देखती रही। कोई सहानुभूति का शब्द शिवानन्द के मुँह से न सुनकर भी उसे एक प्रकार की सान्त्वना मिली। वह चुप हो गई। पुराने संस्कार जाग उठे। बीच-बीच में उसे लगता स्वामी हरिशरणानन्द जैसे उसके सामने खड़े हैं। वह उसे देखकर मुस्करा रहे हैं। कहते वह कुछ भी नहीं हैं और फिर अदृश्य हो गये। फिर प्रकट हुए। फिर गायब, फिर प्रकट। बीच-बीच में बच्चा आता। कमल आता। फिर स्वामी, फिर कमल, फिर बालक। वह रात भर इसी तरह के स्वप्न-जाल में पड़ी रही।

दूसरे दिन शिवानन्द आया। गेरुए वस्त्रों से ढका शरीर। शान्त गम्भीर चेहरा। बड़ी फैली आँखों में तैरती निस्पृहता वीतराग भावना। तेजस्वी मुख। वह आकर चुपचाप बैठ गया। मकान मालिक ने देखा तो यशोदा के सम्बन्ध में पूछने लगा। शिवानन्द ने सब सुनाया तो उसने पूछा—"आप इसे कहाँ ले जायेंगे?"

"कहीं नहीं, मैं ले जाने वाला कौन हूँ?"

"आप तो लेने आए हैं न?"

यशोदा भी आ गई। लगता था रात भर सोई नहीं हैं। जागने से आँखें लाल हो रही थीं।

मुरझाया चेहरा, म्लान-कान्ति।

"क्या सोचा?"

"न हो इस बहन को यहीं रहने दीजिये स्वामीजी। अभी यह स्वस्थ नहीं है।" मकान मालिक बोला तो उसकी स्त्री ने कहा, "ऐसे किसी अजानी औरत को

रखोगे तो लोग क्या कहेंगे। जाने दो। ले जाओ, स्वामीजी।"

स्वामी चुप रहा। वह यशोदा की ओर प्रखर दृष्टि से देख रहा था। यशोदा चुप थी, कुछ भी नहीं बोल रही थी।

"क्या निश्चय किया? मनुष्य का उद्धार उसके ही हाथ में है। चाहने पर इस बहन के यहाँ भी रह सकती है। कोई काम कर लेना। लेकिन··?" शिवानन्द यशोदा को तीखी नजर से देखने लगा। वे दोनों भी यशोदा को देख रहे थे। स्त्री नहीं चाहती थी यशोदा इस घर में रहे। वह अपने मालिक को जानती थी। वह जानती थी देश-भक्त, समाज-सेवक होते हुए भी उसका पति स्त्रियों के मामले में कच्चा है। उसके ऐसे कई रूप उसने देखे थे। वह नई बीमारी मोल नहीं लेना चाहती थी। बोली—"इसका यहाँ रहना ठीक नहीं है। पुलिस खोज रही होगी। पता लग जायगा तो हम लोग भी कहीं के नहीं रहेंगे।"

"तो इसने क्या बुराई की है, जो पुलिस तंग करेगी।" पति ने बात काटते हुए कहा। "वैसे इसकी इच्छा है। यहाँ कोई कमी नहीं है।"

शिवानन्द उसे बीच-बीच में जीवन का परम उद्देश्य बता रहा था। इसके साथ अपना अधिकार भी। जैसे उसके उद्धार का एकमात्र उपाय उसके ही हाथ में हो। यशोदा चुप थी। जब बहुत देर बैठे रहने पर भी यशोदा ने कोई उत्तर न दिया तो अन्त में शिवानन्द ने कहा—"जीवन सुख-दुख का उतार-चढ़ाव है, यशोदा! जैसे सुख में डूब जाना बुद्धिमानी नहीं है वैसे ही दुख में अपने को भूल जाना भी कमजोरी की चरम सीमा है। मनुष्य के सामने एक ध्येय होना चाहिए। उसको पाने के मार्ग में जो भी दुख-सुख आयें उनका तिरस्कार करते चलना ही समझदारी है। आँधी में कमजोर पेड़ टूट जाते हैं मजबूत चट्टान की तरह स्थिर रहते हैं। तेरी साधना अधूरी है। उसको पूरा कर। निश्चय की शिला का आधार पाकर ही जीवन में दृढ़ता आती है। बोल क्या कहती है?"

"क्या कहूँ।" यशोदा ने सिर झुकाकर उत्तर दिया।

"आत्मा के भीतर ही उसका उद्धार मार्ग है। वह बाहर नहीं है। जीवन के भीतर ही जीवन का प्रकाश फूटता है। भूल जा जो कुछ अब तक हुआ। अब भी क्या बिगड़ा है?"

"आप इसे कहाँ ले जायेंगे, स्वामीजी !" स्त्री पूछ बैठी।

"कहीं नहीं, मैं कौन होता हूँ किसी को कहीं ले जाने वाला। इसे तो अपने आप जाना है। चलना कहीं नहीं है पाना है, जो भीतर है उसे खोज निकालना है। 'उद्धरेत् आत्मनात्मानम्' गीता में भगवान ने कहा है।"

"सोचती हूँ कलकत्ते चली जाऊँ।" यशोदा एकदम कह बैठी।

"तो कलकत्ते जा, कहीं भी जा। पर वह क्या तेरे अधिकार में है ? जो कुछ पीछे छोड़ आई है वहाँ का सूत्र क्या फिर जुड़ सकेगा ? सूत्र के टूट जाने पर गाँठ बाँधने से क्या वह दिखाई नहीं देगी ? हमारे बहुत से जीवन-सम्बन्ध गाँठ की तरह उभरे दिखाई देते हैं। वे सही नहीं होते।"

शिवानन्द बेचैन हो उठा—"तो मैं जाऊँ ?"

वह उठा। उसके हृदय में न जाने कैसे भाव उठ रहे थे। उसे लग रहा था यशोदा के संस्कार पतित हैं। उसका उद्धार नहीं हो सकता। एक घृणा का भाव उसमें पैदा हुआ। क्रोध भी झलका। आत्म-दम्भ में वह बिना कुछ कहे चल दिया। यशोदा उसको देख रही थी। देख रही थी कि चीरे हुए कपड़े की तरह दो टूक होकर वह जा रहा है। तो क्या यह वही शिवानन्द है, वही शिवानन्द !

शिवानन्द चला गया।

मुक्त होने पर भी कबूतर जैसे दरबे के आस-पास चक्कर काटता रहता है उसी में जा बैठता है, इसी तरह एक दिन यशोदा अपने घर लौट आई। मेहमान के यहाँ कुछ दिन में ही उसे मालूम हो गया कि उसका स्वतन्त्र रह सकना कठिन है। मालिक की निगाहों में प्रेम की नदी लहराने लगी है। और मालकिन बिल्ली की तरह यशोदा पर जब-तब झपटने लगी। फिर पति-पत्नी में जो वाणी-विलास शुरू हुआ तो सरगम के सारे स्वर एक साथ बज उठे। पति की लापरवाह निर्द्वन्द्व क्रियाओं ने, जो यशोदा को रिझाने के लिए होतीं और पत्नी के चीमटे, झाड़ू और ऊपर से बातों के पैने तीरों ने एक दूसरे को छेद डाला। एक दिन पति के मित्र ने सलाह दी—"घर में तो मुश्किल है। चाहे तो यशोदा शहर के बाहर की उसकी कोठी में रह सकती हैं। नौकर-चाकर है। बाग है, बावड़ी भी है। रसोई बनानेवाले का इन्तजाम हो जायगा। कोई कष्ट न होगा। देश-भक्त की

पत्नी है तो यह हमारा फर्ज है कि उसे सुख दिया जाय। वहाँ बाजे भी हैं। चाहने पर हारमोनियम, दिलरुबा, सितार, तबला, किसी से भी मन बहलाया जा सकता है। घर से ग्रामोफोन की पेटी भिजवा दूंगा।"

"फिर तो मुझे नाचना भी सीखना पड़ेगा।"

सेठ ने सुना तो बिना समझे मुस्कराकर जबाब दिया—"ज़हे-किस्मत।"

"ठीक है फिर तो। साफ क्यों नहीं कहते वहाँ हर रात तुम्हारा मनोरंजन करूँ। तुम्हारी शराब से भीगी आँखों में अपना रूप भरकर तुम्हारी प्यास बुझाऊँ। सभ्य भाषा में विकृत मन की सड़ाँध से मेरे प्राण हर लेना चाहते हैं आप! यही मेरे पति की देश-भक्ति का पुरस्कार दे रहे हैं? मुझे बहुत बड़ा भ्रम हुआ।" यशोदा क्रोध से पागल हो उठी। सेठ सकपकाकर हीं-हीं करने लगा। मेजबान बोला—"तो अब आप क्या करेंगी, इतनी पढ़ी भी नहीं हैं कि स्कूल में नौकरी कर सकें?"

"आपने मुझे इतने दिन आश्रय दिया उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। पर इसका...।"

"नहीं, जो आप कहें वह किया जाय। घर में मैं आपको नहीं रख सकता। देखती ही हैं क्या हाल है। वह डायन रहने ही नहीं देगी।"

"मैं जानती हूँ। शायद वह आपके मन की उड़ान से डरती हैं।"

"जी, जी, क्या कहा आपने मैं समझा नहीं। देखिये मेरे भीतर देश-सेवा का भाव है। मैं जानता हूँ वह आज के जमाने में कितनी खतरनाक है। वे दो आदमी जो आपको मेरे घर ले आए इसलिए कि उन्हें विश्वास था आप मेरे घर पुलिस की नजर से बची रह सकेंगी। मैंने आपकी सेवा की। क्या उसी का पुरस्कार है यह?" वह व्यक्ति भड़क उठा।

"मालूम होता है अपनी उस सेवा का पुरस्कार मुझसे दिलरुबा-तबला बजवाकर लेना चाहते हैं। तभी तो इन सेठजी को लेकर आये हैं। जाने दीजिये। मैं वहाँ जा रही हूँ जहाँ से आई थी।"

इन पिछले दिनों कई तरह के लोग उसे मिले। सहानुभूति के स्वर में भी उसने पाया है कि हर व्यक्ति उसके प्रेम-पुष्प का भौंरा है। हर एक के हृदय में उसे देखकर प्रेम का पौधा उग आया है। उसमें कलियाँ फूल बनने के लिए

छटपटा रही हैं। एक बार उसे अपने रूप पर बेहद ग्लानि हुई। चाहने लगी जैसे वह अपना मुँह नोंच डाले। चाकू से सारा मुँह चीरकर घाव करले। मकान मालकिन कहती—"इतना रूप लेकर बाजार में मत फिर। आकाश से तारे टूट पड़ेंगे, यशोदा ! और आदमी तो आदमी ही है। भला तेरी जैसी बेरोक औरत को देखकर कौन है जो माला जपता रहेगा। बिना मालिक के औरत बिना हलवाई के मिठाई का थाल है। कौन रोकेगा उसे बता ?"

यशोदा सुनती और चुप हो जाती। उसे ध्यान आता क्या वह इतनी निर्जीव है, निर्बल है कि हर कोई उसे लीलने को तैयार हो जायगा। उसने मालिक, सेठ और सभी को डाँट दिया। पिछले दिनों अपने से संघर्ष करते वह कमल को भी भूल गई। बच्चे की मृत्यु का शोक भी न हुआ। यह उसने नई दुनियाँ देखी जहाँ सफेद कपड़ों में खूँख्वार डाकू घूम रहे थे। थोड़े ही दिनों में लोग भूल गए कि यह उस त्यागी देशभक्त की औरत है जिसे काला पानी हुआ है। जिसका एक बच्चा भी इसी शोक में जाता रहा है। अन्त में यह मालूम होने पर कि पुलिस को उसके रहने का पता लग चुका है, वह चल दी।

लेकिन घर में भी क्या करे। दो-एक दिन अपने में खोई रही। भविष्य को ढूंढ़ लेना चाहने लगी। पर वह तो जैसे अँधेरी रात में सूरज के प्रकाश को देखने जैसा उसे लगा। अत्यन्त निराश और उच्छिन्न अवस्था से ऊबकर उसने चाहा आत्महत्या करले। वर्तमान का दंश उससे सहा नहीं जा रहा था। एकान्त जैसे काटता, वह अपने से ही डरने लगी। उसे कभी-कभी लगता जैसे वह स्त्री न होकर एक भूत है। विकराल भूत ! बिखरे हुए बाल गुलझटों से भरे। अचेतन फटी आँखें, अपने से उपरत उसका मुँह ऐसे हो उठा जैसे सचमुच वह यशोदा न होकर कोई और है। दो-एक दिन तक वह वैसे ही पड़ी रही। न खाना बनाया, न खाया। घर की हर चीज अस्त-व्यस्त थी। विश्वास टूटने पर अस्थिर प्रकृति की तरह कभी वह अपने आप हँसती, कभी एक-एक दीवार को देखती रहती। अपने आप बोलती, अपने आप प्रश्न करती, उत्तर देती। एक बार किसी धुन में उसने बर्तन तोड़ डाले। परात आँगन में फेंक मारी तो जैसे एक पटाका जोर से फूट उठा। कमरे में मेज के ऊपर दीवाल में कमल की तस्वीर टँगी थी, जिसमें

वह और बच्चा थे। अचानक घूमते-घूमते वहाँ पहुँची तो बड़े गौर से घंटों तस्वीर देखती रही। फिर बोली, फिर हँसी, फिर उसे छुआ, चूमा, हृदय से लगाया। और एक आवेग जो उसके भीतर उठा तो उठाकर नीचे सड़क पर फेंक दिया। मन का हर आवेग उसे झिंझोड़ रहा था।

उन दिनों सावन का महीना था। हर सोमवार को दक्षेश्वर प्रजापति के मन्दिर में मेला लगता। लोग दूर-दूर से भगवान् को जल चढ़ाने आते। काफी भीड़ रहती। यशोदा का मानसिक उद्वेग कम हो गया तो पड़ौस की औरत के कहने पर वह भी मन्दिर गई। जल चढ़ाया, पूजन किया, वहीं बड़ के पेड़ की छाया में बैठी थी कि इधर से दर्शन करके लौटते शिवानन्द की नजर पड़ गई।

"यशोदा, तू?"

"हाँ।"

"बीमार है बिचारी। पागल हो गई थी।" साथ की औरत ने कहा।

"हूँ, अब कैसी है, अब भी ठीक नहीं है।" शिवानन्द गया तो दोनों स्त्रियों के लिए प्रसाद ले आया। "लो, खालो। आज व्रत है न?"

शाम को महन्तजी के साथ शिवानन्द आया। साथ में खाने का सामान था। यशोदा उस समय चटाई पर छत की तरफ ताक रही थी। दोनों आकर बहुत देर तक खड़े रहे। वह अपने में खोई थी। सामने सब अस्त-व्यस्त देखकर मालूम होता था घर में कुछ भी नहीं है। आदमी से सामान रखवाकर दोनों एक आसन पर बैठ गये। यशोदा अब भी बैठी थी। उसने एक बार उन दोनों को देखा। फिर भी उसमें कोई क्रिया न हुई।

"मालूम होता है फिर दौरा हुआ है?"

"क्या बात है?"

"पड़ोसिन बता रही थी। बीच में पूरी तरह पागल हो गई थी।"

शिवानन्द पड़ौसिन को बुला लाया। बातचीत में उसने बताया—"अकसर चुपचाप ऐसे ही पड़ी रहती है। न खाती है, न पीती है। न सोती ही है।" उसने उठकर यशोदा के कपड़े ठीक कराये और पुकारकर होश में लाई।

"गहरा मानसिक उद्वेग है।" महन्तजी बोले। "जरा वैद्य को तो बुलाओ।"

शिवानन्द वैद्य को बुला लाया। नाड़ी और आँखें देखने के बाद वैद्य ने पूछा —

"इसका पति कहाँ है ?"

"नहीं है।"

"कोई बच्चा ?"

"मर गया।"

सब इतिहास सुनने के बाद बोला, "अत्यन्त शोक से मनःस्थिति बिगड़ गई है। शरीर की निर्बलता के कारण वह बीमारी और भी उग्र हो उठी। मन बहलाने की जरूरत है। ठीक हो जायगी।"

महन्तजी बोल उठे, "अभागी है बिचारी। **औषधं जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणो हरिः।**" इसकी दवा गंगाजल है और वैद्य श्री नारायण। फिर भी आप इलाज करें। खर्च की परवाह न करें।"

महन्तजी अपने यहाँ की एक बुढ़िया साधुनी को ले आए। वह दिन भर यशोदा को डाँटती। दूध पीने के समय कहती—

"दूध पीकर क्या एक और खसम करेगी।" इसके साथ उसे थोड़ा सा दूध देकर स्वयं सब पी जाती।

"कितना बुरा समय आ गया है औरत होकर दूध पीती है। बीमारी-ईमारी नहीं है। खाने-दूध पीने के बहाने हैं। दाल में घी के समय अपनी दाल में डाल लेती। मैं बूढ़ी हूँ, कमजोर, मुझे घी चाहिए कि इस मोटी-ताजी को। जिनके न कोई आगे है न पीछे। नारायण, नारायण।"

एक रोज देखा गया कि उसने यशोदा की नई चादर गेरुए रंग में रंग डाली है। कम्बल उसने अपने बिस्तर में लपेट लिया है। दाँतों से अक्षरों को पीसकर वह बोलती। आँखें फाड़कर गुस्से से यशोदा को देखती। एक दिन मौज में यशोदा की दवा पी गई। पूछने पर बताया मेरा भी दिमाग ठीक हो जायगा। है कि नहीं ? मैं मरी बूढ़ी भगवान का भजन करूँ कि दुख उठाऊँ। बच्चे का चाँदी का खिलौना देखते ही बोली, "तू क्या करेगी अब भला ? ला बेच आऊँ ?"

यशोदा ने मना किया तो चुराकर बेच आई। पता लगने पर कहने लगीं, "भगवान का भजन करती हूँ। चढ़ तो जाय पाप, कच्चा न चबा जाऊँ। बेच के

खिलौना भगवान के ही अर्पण तो किया है। आदमी चाहे भगवान का नाम लेता रहे फिर चाहे जो कुछ करे। विश्वास न हो पूछ लो महन्तजी से। आज मैं बूढ़ी हूँ कल तो नहीं थी। और ऐसी बूढ़ी भी क्या हूँ। क्यों री, तुझे मेरी सकल खराब लगे है?" इतना कहकर वह मुँह पर हाथ फेरने लगती। "रामायण में लिखा है, मनसा पाप नहीं होवे है। यहाँ गीता भी पढ़ी है। भागवत भी पढ़ी है। हनूमान चालीसा भी याद है। जनार्दन पच्चीसी, वरमानन्द भजनमाला भजन सब याद हैं।"

ठीक होते-होते एक दिन यशोदा ने पूछा,

"कब से साधु हो बाई?"

"कब से, मुझे क्या याद है? बीस-पाँच-तीन कितने हुए भला?"

"अट्ठाईस।"

"हाँ तो, इतने ही दिन हुए होंगे। तू पूछेगी कैसे याद रही। मैं कहती हूँ याद क्या ऐसे ही रही। रखा है याद। तभी तो एक बाबाजी ने चिमटा मारा तब पच्चीस याद आया। तिरसूल में तीन नोंक होवे हैं न। बस वही तीन। अब मेरी याद कुछ कम हो गई है। गीता मैं उल्टी बाँच जाऊँगी।" हाथ नचाकर भौंहें मटकाकर उसने जवाब दिया।

झुर्रियों से भरा मुँह होने पर भी जब तक शीशा (बट्टा) देखकर वह रह-कर हाथ फेरती। यशोदा देखती तो कहती, "अरी, अब क्या है? बीसियों मरे थे।"

फिर गाने लगती।

"मन न रँगाए रँगाए जोगी कपड़ा। भगवान की माया देखो, लखपति की लड़की फकीर हो गई।" यशोदा ने पूछ दिया, "कैसे? कैसे?"

तो जरा हिचकिचाई। "ऐसे ही अब तुझे क्या बताऊँ। नारदजी को मोह भया तो क्या उन्हें रमा मिली! मारे-मारे फिरते रहे। मेरा मालिक भूत था भूत। जो चाहा वह तो मिला नहीं। मिला एक बेजतन का बेसऊर, काला, चेचक के दाग, गंजा, बूढ़ा पति, फिर क्या करती, मन लग गया एक बाबाजी में। बस, फ़कीरीपन ले लीना। मजा का मजा भजन का भजन। नारायण, नारायण।"

"हरे राम हरे राम हरे किश्ना हरे हरे ! उठो मना । उठो ।"

यशोदा इस बुढ़िया से काफी परेशान थी फिर भी उसका नाटकीय रूप, मिर्च की-सी तीखी बेतुकी बातें, उसे अच्छी लगती थीं । एक दिन शिवानन्द के साथ महन्तजी आए तो देखा, यशोदा चटाई पर बैठी है और बुढ़िया साधुनी दूध का कटोरा भरे पी रही है ।

"क्या हो रहा है बाई ?" महन्त ने पूछा ।

वह अचकचाई । घबराकर बोली, "महाराज, इससे तो अच्छा है मुझे गंगा में बहा दो । खुद तो दूध पीवे नहीं है । कहे है तू पीले, तो क्या करूँ, पी रही हूँ । खराब जाता न ! आपने तो उपदेश दिया कोई चीज खराब नहीं करनी चाहिए ।"

"हाँ, हाँ, पी" कहकर महन्तजी हँसे । फिर पूछा, "यह कम्बल कहाँ से आया बाई ?"

"कम्बल, कम्बल ।" कहकर वह चुप हो गई । और उठाकर यशोदा की तरफ सरका दिया । "इसी का था महाराज ! इसने कहा रख ले तो रख लिया ।"

महन्तजी ने देखा यशोदा पहले से स्वस्थ है । उसकी आँखों में चेतना का प्रकाश है । वह चटाई पर बैठी तिनके तोड़ रही है । शान्त प्रकृति ।

शिवानन्द से पूछा—"वैद्यजी आते हैं ? तुम मिले थे क्या कहते हैं ?"

"दो दिन पहले गंगा पर भेंट हो गई थी । कह रहे थे राधा बाई यशोदा को दवा देने के बजाय सब कुछ आप ही खा जाती है, नहीं तो जो दवा दी है उससे अब तक पूरी तरह स्वस्थ हो जाती ।"

"क्यों राधा बाई, शिवानन्द क्या कह रहा है ?"

"महाराज, महाराज ! मुझे मार दो । गंगा में फेंक दो जो झूठ बोलूँ । भला तुम्हीं बताओ मैं बूढ़ी नहीं हूँ । कमजोर नहीं हूँ । तुम्हीं ने उपदेश दिया है खा-पी और भगवान का भजन कर । सोई करूँ हूँ महाराज ।"

"पर बीमार तो यशोदा बाई है उसे दवा के साथ वैद्यजी ने घी-दूध, फल बताया है तो उसे देगी कि तू खायगी ?" महन्त कठोर हो उठे ।

"यशोदा बाई ! तू खा, खबरदार जो इसे दिया । एक बार ठीक हो ले ।"

"स्वस्थ शरीर से ही तप होता है भला ?"

"हाँ, महन्तजी ठीक कह रहे हैं यशोदा तुझे तप करना है।"

यशोदा चुप रही। वह कुछ भी समझ नहीं पा रही थी। दोनों थोड़ी देर में सारी व्यवस्था करके चले गए।

अब वह पूरी तरह नीरोग हो रही थी। शिवानन्द दूसरे-तीसरे दिन आता और थोड़ी देर बैठकर चला जाता। कभी-कभी उसे उपदेश देता, जीवन का परम लक्ष्य समझाता। देह की नश्वरता पर व्याख्यान देता। यशोदा चुपचाप सुनती और शिवानन्द का मुँह देखती। वह देखती उसके चेहरे पर अब काफी गम्भीरता है। वह जो कुछ कह रहा है उसमें कोई छल नहीं है। अन्तःकरण से प्रेरित उसके शब्दों में वास्तविकता की ध्वनि है। नीची निगाह किए वह बात करता। किसी प्रकार का उद्वेग और चंचलता उसमें नहीं थी। घुटे हुए सिर पर गंगा-रज फैल रही थी। माथा चमकता, शान्त गम्भीर आँखों से बिना इधर-उधर देखे वह बोलता। यशोदा जब-तब सोचती, क्या यह वही शिवानन्द है जो कभी उसकी कृपा का भिखारी बनना चाहता था, तो उसे लगता शिवानन्द में वह सब अब कहीं भी नहीं है। उसने बताया कि वह यशोदा का उद्धार करना चाहता है। उसे भीतर से प्रेरणा मिली है नहीं तो उसकी और कोई इच्छा नहीं है कि वह यशोदा से मिलना भी पसन्द करे।

यशोदा ने सुना तो चुप हो गई। उसे हैरानी भी कम नहीं थी। "मेरा उद्धार, क्या होगा वह उद्धार ! कैसे होगा ?" पुराने संस्कार उसके भीतर जागे। उसने माना जैसे अब उसके सामने और कोई मार्ग नहीं है। वह पापिन है। व्यभिचारिणी है। सोचते-सोचते वह ग्लानि से भर गई। सामने बैठे शिवानन्द से बोली, "क्या मेरा उद्धार हो सकता है ?" शिवानन्द ने उसी गम्भीरता से थोड़ी देर बाद उत्तर दिया, "हो सकता है, अपने को पहचान, यही उद्धार है।"

"कैसे ?"

"विश्व-प्रकृति में व्याप्त चेतना का तू एक अंश है ! 'तत्त्वमसि' वह तू है। तेरे अलावा और कोई नहीं है। यही तुझे पहचानना है।" इसके साथ शिवानन्द ने बहुत उपनिषदों के मन्त्रों का अर्थ करके ब्रह्म के सम्बन्ध में यशोदा

को समझाया। यशोदा चुपचाप सुनती रही।

शिवानन्द अब जल्दी-जल्दी आने लगा। आते ही दो-एक बात इधर-उधर की पूछकर वेदान्त की बातें और ब्रह्म का रूप समझाता। यशोदा ने उस ढंग से अब तक कभी नहीं सुना था। उसका मन रमने लगा। एक दिन उसने पूछा, "क्या सुनते-सुनते ब्रह्म के दर्शन होंगे ?"

"नहीं, उसके लिए अष्टांग योग सिद्ध करना पड़ेगा।" उसने यशोदा को विस्तार से सुनकर मनन करना, फिर उसको मन-आत्मा में एकाकार करने की प्रक्रिया बताई।

शिवानन्द स्वयं सवेरे चार बजे से दिन के बारह-एक तक समाधि में बैठता। वही क्रिया उसने यशोदा को सिखाई। कभी-कभी वह यशोदा को डाँटता तो यशोदा सिर झुकाकर सुन लेती।

इसी अवस्था में महन्तजी और शिवानन्द की आज्ञा से यशोदा को साधु-मण्डल के ही एक कमरे में आकर रहना पड़ा। जैसे उसने अपने को शिवानन्द की आज्ञा में अर्पित कर दिया। वह जैसे कहता, वैसा ही वह करती। अभ्यास के समय उसी ने पहले दिन से एक बार खाना शुरू कर दिया।

फिर खाना भी छोड़ा। कुछ दिनों गंगा जल और दूध पीकर रही। बहुत दिनों तक यही तौर चलता रहा। एक दिन महन्तजी ने दीक्षा देकर उसे संन्यासिनी बना लिया। जिस स्थान पर उसे रखा गया था, वह महन्तजी के विशाल स्थान के चबूतरे के नीचे की कोठरी थी। सामने गंगा बहती थी। वह दिन भर कोठरी में बैठी ब्रह्म-चिंतन करती या समाधि लगाती। न बाहर जाती, न किसी से मिलती। सबेरे चार बजे उठती। गंगा नहाकर समाधि में बैठ जाती। बारह-एक के लगभग महन्तजी का रसोइया दूध और भात दे जाता, वही खाकर फिर ध्यान में लग जाती। शाम के समय कोठरी के सामने वाले घाट पर शिवानन्द आकर उपदेश देता और उसकी शंका का समाधान करता।

वह रात का समय था। चाँदनी रात। आकाश में पूरा चन्द्रमा अपनी सोलह कलाओं से पूर्ण उग रहा था। चारों ओर जैसे दूध बिखर रहा हो। यशोदा चन्द्रमा की तरफ मुँह किये गंगा की ओर धारा को देख रही थी। चारों

ओर आनन्द का समुद्र लहरा रहा था। गंगा की तेज घर्घर ध्वनि में फूट उठने वाली सुख की लहरें हवा के झोंकों के साथ यशोदा को आपुलक निहला रही थीं। सामने शिवानन्द चुपचाप बैठा था। वह काफी देर से चुप था। एकाएक उसने यशोदा की ओर देखा तो देखता रह गया। गेरुई चादर सिर से ढके वह बैठी थी। उसका मुख चाँदनी में नहाया हुआ क्षीर फेन की तरह लग रहा था। सफेद संगमर्मर की मूर्ति की तरह। वह और दिन से ज्यादा भव्य हो उठी। शिवानन्द की आँखें झप नहीं रही थीं।

यशोदा ने अचानक अपनी ओर देखते शिवानन्द से पूछा, "कितनी सुन्दर चाँदनी है, कितनी शान्त ?"

"हाँ।"

"क्या देख रहे हो ?"

"यह कि तुम कितनी भव्य हो।"

"प्रयत्न करके भी मैं जगत् को मिथ्या नहीं मान पाती।"

"यही बड़ी कठिनाई है।"

"तुमने तो मान लिया होगा कि संसार मिथ्या है ?"

"मान लेने पर भी अभ्यास का विषय नहीं बना है यशोदा।"

"क्यों ?"

"आजकल मेरा मन बड़ा अस्थिर रहता है।"

"स्थिर करो। हाँ, मेरा उद्धार कब तक हो रहा है ?"

"उद्धार।"

"हाँ। तुम ने कहा था न कि तुम्हें मेरा उद्धार करना है।"

"व्यंग्य कर रही हो।"

"पूछ रही हूँ।"

"मन से पूछो, तुम्हें कैसा लगता है ? क्या उस नरक से यहाँ शान्ति नहीं मिल रही ?"

"कौनसा नरक ?"

"विज्ञानानन्द का नरक, कमल का नरक।"

"क्या कमल के साथ रहने को भी तुम नरक कहते हो? वह तो वैधानिक विवाह था।"

"संसार ही नरक है।" कहते हुए शिवानन्द का स्वर काँपा।

फिर बोला, "समझ नहीं पाता हूँ क्या वस्तुतः संसार मिथ्या है।" शिवानन्द पास सरक आया।"

"सत्य न हो पर मिथ्या तो निश्चय ही नहीं है।"

"कैसे ?"

"तुम काँप रहे हो।"

"नहीं तो।"

"लगता है जैसे गला भर रहा है। अँगड़ाई आ रही है, बुखार के लक्षण हैं।"

इसी समय देखा खड़ाऊँ पहने महन्तजी उतर रहे हैं।

"महन्तजी आ रहे हैं ?"

"हाँ।"

"तो मैं चलूँ।"

"डरते हो ?"

"न जाने वे क्या कहें ?"

"ऐसा मत सोचो वे वही कहेंगे जो तुम्हारे मन में है।"

"क्या भला ?"

"क्या है तुम्हारे मन में, भय ही न ? भय पाप से होता है, दूसरे से होता है। जब ब्रह्म ही सब जगह है और सब तुम ही तुम हो। तब दूसरा कहाँ रहा ?"

"बहुत बड़ी बात कह दी तुम ने !"

"तुम्हारी ही तो बताई बात है।"

महन्तजी आकर एक तरफ खड़े हो गए।

"क्या प्रसंग है ?"

"आपके आने पर शिवानन्द भय मान रहे थे। कह रहे थे न जाने हमें यहाँ देखकर महन्तजी क्या कहें ?"

"नहीं, नहीं, तुम भूल करती हो यशोदा। ऐसा नहीं था।"

"तब तो मानती हूँ सत्य भी मिथ्या हो जाता है।"

"तुम्हें भ्रम हुआ है।"

"मैं इस संसार में हूँ न इसीलिए।"

शिवानन्द तिलमिला गया। महन्तजी कुछ देर चुप रहकर प्रकृति-सौन्दर्य और ब्रह्म पर बोलने लगे। फिर एक और कमरा तथा घाट को चौड़ा करने की बात करके दोनों चले गए। सर्दी बढ़ रही थी यह अनुभव करके यशोदा कुटिया में चली गई।

शिवानन्द कभी-कभी ज़ोर से गीता पढ़ करके अपने को व्यस्त रखने की कोशिश करता। जब इतने पर भी उसकी मानसिक अशान्ति दूर न होती तो जाँघ में चाकू मारने की पीड़ा में मन के वेगों को दबाता। यह अवस्था उसकी कभी-कभी होती। उस समय दौड़कर वह गंगा में कूद पड़ता। एक रात इसी तरह वह नहाकर निकल रहा था कि यशोदा आवाज सुनकर बाहर निकल आई। बाहर हवा में काफी सर्दी थी। नींद उसे आ नहीं रही थी। नहाकर निकलते ही उसने शिवानन्द को पहचाना।

"इस समय नहा रहे थे?"

शिवानन्द उत्तर न देकर आगे बढ़ता हुआ रुक गया।

"तुम्हें इस समय नींद नहीं आई?"

"यह प्रश्न मुझे करना चाहिए था।"

"स्नान करके लौटा हूँ। अब सोऊँगा।"

"हूँ, मैंने समझा न जाने कौन है?"

"बहुत संघर्ष करना पड़ता है कभी-कभी यशोदा देवी।"

"जाओ, सर्दी बढ़ रही है।"

शिवानन्द कुछ कहना चाहता था कि यशोदा भीतर चली गई। उसने किवाड़ बन्द कर लिये।

अब उपदेश के बहाने शिवानन्द जब-तब फिर आने लगा। एक दिन उसने पूछा—

"यशोदा, क्या तुम्हें अब भी कमल की याद आती है ?"

"कमल, निर्विकार था शिवानन्दजी ।"

"उसने जीवन का ध्येय नहीं समझा । व्यर्थ अपने को जोखिम में डाल दिया । महन्तजी की उस पर बड़ी कृपा थी ।"

"क्या वे उसे चेला बनाने की सोच रहे थे ? अब तो तुम्हारा स्थान निश्चित है इतनी सम्पत्ति, विशाल स्थान । यही ब्रह्मज्ञान है शिवानन्दजी ।"

"मैं पतित हूँ यशोदा ।"

"ऐसा क्या हो गया !"

शिवानन्द चुप रह गया । बोला वह कुछ भी नहीं । आज मेरी एक सहेली प्रभा अचानक मिल गई ।

"कौन प्रभा ?"

"तुम नहीं जानते ? स्वामीजी के आश्रम में कुछ दिन रही थी । अरूपानन्द की बहन ।"

"क्या वह भी संन्यासिनी है ?"

"नहीं । उसका भाई तप करने उत्तराखण्ड चला गया । वह क्रान्तिकारी दल में है ।"

"यह क्या चीज है ?"

"देश-सेवकों का एक दल जो अंग्रेजों को देश से भगाना चाहता है ।"

शिवानन्द की कुछ भी समझ में न आया । वह महन्तजी के कहे मुताबिक मन ही मन घाट बढ़ाने का नक्शा बना रहा था । थोड़ी देर बाद बोला, "पागल-पन न करना, हाँ !"

"कैसा पागलपन !"

"क्रान्ति आंति दल की बात मत सोचना । एक का नतीजा तो देख लिया ।"

"कमल की बात कह रहे हो, वह······ ।"

"वह क्या ?"

"जाने दीजिए, वह मुझ अकेली से सम्बन्ध रखता है ।"

"मैं समझता हूँ जो चीज तुम से सम्बन्ध रखती है, उस पर मेरा भी हक है। मैंने तुम्हें सत्य मार्ग का दर्शन कराया है, शान्ति दी है। शास्त्रों में लिखा है बिना पूर्ण समर्पण के आत्म-ज्ञान नहीं मिलता।"

शिवानन्द यह बात दृढ़ता से कहकर यशोदा को देखने लगा।

इधर कुछ दिनों से मन को शान्त करने के सब उपाय अपनाने पर भी कभी-कभी वह बेचैन हो उठती। एक प्रकार की अशान्ति के फिट्स अब भी उसे आ रहे थे। कभी-कभी सोचती, क्या है यह सब! मन को रोकने पर भी कमल उसे याद आ जाता। घण्टों ध्यान में बैठी वह कमल की मूर्ति को देखती रहती। उसकी चेष्टा, उसका निःस्पृह-प्रेम, उसकी हँसी, कर्तव्य-निष्ठा, उसकी लगन, पागलपन यशोदा के ध्यान से छूटते ही न थे। उसका मन कहता, यह सब व्यर्थ है। उसे कभी भी ब्रह्म के दर्शन नहीं होंगे। वह चाहती भी नहीं है। यह एक परिस्थिति है, एक मजबूरी है जिसमें वह आ फँसी है। उसे यह नहीं चाहिए। पर उसे क्या चाहिए, यह उसे सोचने पर भी मालूम नहीं होता था। एक अजीब उधेड़-बुन में पड़ी रहती। इसी समय राधाबाई और महन्तजी में खटक गई। बातों ही बातों में उसे मालूम हुआ महन्तजी का चरित्र भी बहुत साफ नहीं है। शिवानन्द का रूप वह देख ही रही थी। कभी यह बिलकुल सच्चा साधु लगता, कभी देखती शिवानन्द उसे भीतर ही भीतर चाहता है। इन्हीं परिस्थितियों में वह पड़ी थी। प्रभा के अचानक मिल जाने पर उसमें उसके काम के प्रति उत्सुकता जागी।

शिवानन्द के चले जाने पर वह प्रभा से मिलने निकल पड़ी। जहाँ वह ठहरी थी। वह जगह हरिद्वार से भी आगे खड़खड़ी के पास थी। जब वह पहुँची तो वहाँ कोई भी न मिला। बाहर एक आदमी से पूछने पर मालूम हुआ दो स्त्रियाँ और एक आदमी अभी बाहर गए हैं। यशोदा कुछ देर इधर-उधर घूमती रही। फिर हरिद्वार के प्लेटफार्म पर जा बैठी। ब्रह्मकुण्ड से लगा प्लेटफार्म ऐसी जगह है जहाँ प्रायः सभी लोग शाम को आते हैं। यात्रियों की काफी भीड़ थी। शाम होने पर भी लोग नहा रहे थे। जगह-जगह कथा हो रही थी। कुछ लोग गंगा-किनारे दरी या आसन बिछाये बैठे थे। कुछ घूम रहे थे। माँगने वाले

साधुओं का गिरोह जगह-जगह फिर रहा था। सभी तरह के लोग अपनी-अपनी वेश-भूषा में इधर-उधर बैठे थे, कुछ घूम रहे थे। एक विचित्र दृश्य था। ज़रा दूर हटकर घाट के दूसरी तरफ खोमचे वाले कतारों में बैठे कई तरह की चीज़ें बेच रहे थे। लोग उन पर टूटे पड़ रहे थे।

यशोदा घूमती हुई उधर जा निकली तो देखा प्रभा एक और स्त्री के साथ बैठी कुछ खा रही है। यशोदा को देखते ही प्रभा ने उसे भी बैठा लिया। जोर देने पर वह भी खाने लगी। इसी समय वह आदमी भी आ गया।

प्रभा ने यशोदा का परिचय कराया। दूसरी स्त्री का नाम सौदामिनी था। सौदामिनी काफी लम्बी गोरी और कद्दावर औरत थी। सुन्दर न होते हुए भी एक दृढ़ता, एक जोश, एक मजबूती उसमें दिखाई दे रही थी। जैसे बात बढ़ने पर किसी को भी पीट देना उसके बाएँ हाथ का खेल हो। प्रभा पहले से मजबूत हो गई थी। प्रौढ़ आदमी, साधारण कद, गेहुँआ रंग और दुहरे बदन का था। नाक सीधी, आँखों में रस, मधुदृष्टि का था वह व्यक्ति। दाढ़ी-मूँछ साफ, बाल कटे हुए। एक कुरता, धोती। सौदामिनी के भाई ने यशोदा को देखा। प्रभा ने परिचय कराया तो उसे तीखी नजर से जब-तब देखने लगा।

जब यशोदा दो-तीन दिन महन्तजी के आश्रम से गायब रही तो एक दिन शिवानन्द पूछ बैठा, "आजकल क्या चिन्तन में मन नहीं लगता यशोदा देवी ?"

यशोदा ने कोई जवाब न दिया और कुटी में चली गई। शिवानन्द बहुत देर बाहर प्रतीक्षा करके चला गया।

यशोदा अब दिन-दिन भर गायब रहती। उसे मालूम हुआ सौदामिनी का भाई इससे पहले कोई बड़ा अफसर था और नौकरी छोड़कर इस काम में शामिल हुआ है। विवाह भी उसने नहीं किया। प्रभा उसी के परिवार की है। तीनों ने एक व्रत लिया है। देश-सेवा का व्रत। कलकत्ते से वे भागकर आए हैं। सब के नाम बदले हुए हैं। पिछले दिनों ही वे उत्तरा खण्ड से नीचे उतरे हैं। वे क्या करने आए हैं, यह वह न जान सकी। प्रभा ने बताया हरिद्वार में वे एक आदमी की प्रतीक्षा में हैं।"

एक दिन प्रभा ने एकान्त में बैठकर यशोदा को मोटे तौर पर अपना काम

बताया तो यशोदा का मन उत्सुक हो उठा। उसका मन बहुत दिनों से बेचैन था। उसने पाया जैसे उसे अपने शरीर से कोई मोह नहीं है। यही एक मार्ग है। जिस पर चलकर वह कमल का साथ दे सकती है। कमल जैसे उसका ध्येय था, एक लक्ष्य! वह चाहने लगी। इस निकम्मे जीवन को उसके बताए हुए रास्ते पर ले जाकर अपने को समाप्त कर दे। और कोई भी रास्ता नहीं है। प्रभा की बात सुनकर वह उसके लक्ष्य को जानने के लिए और भी बेचैन हो उठी। अन्त में किसी तरह फणीन्द्र ने आज्ञा दी कि उसकी परीक्षा ली जायगी। लगभग पन्द्रह दिन बाद अचानक उसे आज्ञा हुई कि वह चलने को तैयार हो जाय। रात को ही सब को चले जाना है।

शिवानन्द और महन्तजी यशोदा को दिन-दिन और कभी रात को स्थान से गायब पाने लगे। वे कुछ भी जान न पाए कि यह क्या है? कहाँ जाती है यशोदा? उस का नाम बदल दिया गया था।

एक दिन 'ऊपर आश्रम से महन्त और शिवानन्द ने देखा यशोदा ने गेरुए कपड़े उतार दिये हैं। वह सफेद साड़ी पहने थोड़ा सा सामान लिये कुटिया के बाहर खड़ी है। एक स्त्री घाट के किनारे बैठी ओक से पानी पी रही है।

दोनों को आश्चर्य हुआ। वे लोग नीचे उतर आए।

"यशोदा!" महन्त ने कड़ी आवाज में पुकारा।

"जी।"

"यह सब क्या हो रहा है, कहाँ जा रही है?"

"हाँ, आपके यहाँ इतने दिन रही इसके लिए धन्यवाद!" उसी कड़कती आवाज में उसने जवाब दिया। दोनों हैरान थे। शिवानन्द ने आगे बढ़कर पूछा,

"कहाँ जा रही हो?"

"जहाँ जाना चाहिए स्वामीजी।"

"यहाँ मन नहीं लगा?"

"मैं अभी इतनी बेकार नहीं हूँ। मेरे जीवन का लक्ष्य मुझे मिल गया है। मैं जा रही हूँ।"

"हम भी तो सुनें तेरे जीवन का कौनसा लक्ष्य तुझे मिल गया है ?" महन्त ने पूछा।

"यह रास्ता मेरे लिए नहीं है। मैं ईश्वर को पाने से पहले अपने को, अपने देश को पा लेना चाहती हूँ। मेरा देश मुझे पुकार रहा है। देश का बच्चा-बच्चा जीवन पाने के लिए, स्वतन्त्रता पाने के लिए, सुख-शान्ति पाने के लिए छटपटा रहा है। आज मुझे मालूम हुआ कमल ने जो रास्ता पकड़ा वही सही रास्ता है, बलिदान के द्वारा देश को जगाने का रास्ता है। घुटती हुई साँसों में उन्मुक्त आकाश की लहराती जीवन-पवन भरने जा रही हूँ स्वामीजी। तुम्हारा मार्ग क्षय से पीड़ित रोगी के सामने मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाला मार्ग है। मैं यहाँ नहीं रह सकती। मेरा दम घुट रहा है। मेरी आत्मा मर रही है। मैं यह सहन नहीं कर सकती। मैं जा रही हूँ। मैं क्रान्तिकारी दल में जा रही हूँ।"

"क्रान्तिकारी दल।" महन्त ने हकलाते स्वर से गला साफ करके पूछा। "वह क्या है ?"

"वह आप नहीं समझ सकते। वह मृत्यु को वरण करके जीवन देने का रास्ता है। वह आज की आवश्यकता है स्वामीजी, मैं आपसे भी उस मार्ग पर चलने के लिए आग्रह करना चाहती थी। किन्तु मैं जानती हूँ आपके लिए यह रास्ता मुश्किल है। आसानी से बिना महनत के, बिना मशक्कत के मौज उड़ाने वाले उस रास्ते पर नहीं चल सकते। आपकी चेतना मर गई है। आपका दायित्व सो गया है। आपके विश्वास जड़ हो गए हैं। प्रभा ने मेरा मार्ग खोल दिया है। मैं उसी रास्ते पर जा रही हूँ।"

महन्तजी को गुस्सा आ गया। अब उनकी समझ में आया यह अंग्रेजों से लड़ने वाली कोई बात होगी। वे चुप हो गए। यद्यपि उनका मुँह गुस्से से लाल हो रहा था। शिवानन्द बोला, "जो अपने आप मरना चाहता है उसे कौन बचा सकता है। जाओ नेकी का समय नहीं है।"

स्वामीजी हिले-जुले नहीं। उन्हें ध्यान आ रहा था उनकी एक चेली हाथ से निकल गई। बोले, "क्या अकेला चना भाड़ फोड़ सकता है ? विनाश काले विपरीत बुद्धि।" कहकर वह फीकी पराजय की हँसी हँसे।

"मैं भाड फोड़ने नहीं, टूटे हुए भाड़ को जोड़ने,मजबूत बनाने जा रही हूँ, जिसमें देश के शत्रुओं का दहन हो सके। एक-एक करके ग्यारह होते हैं। स्वामी हरिशरणानन्द ने जो आग जलाई, चिदम्बरं ने जिसमें अपनी आहुति दी, कमल ने जिसके लिए काले पानी की सजा पाई, उसी आग को जलाने जा रही हूँ, उसी ज्योति को प्रज्ज्वलित करने जा रही हूँ। वह आग उस समय तक नहीं बुझेगी जब तक हमारा लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता।"

महन्तजी आगे बढ़े। क्रोध भरी आवाज में बोले, "तुझे मालूम है संन्यास के बाद तेरा अब तेरे शरीर पर अधिकार नहीं है। तू मेरी चेली है।"

"हाँ।"

"अब तेरा कोई अधिकार नहीं है। तूने हमारा इतना खाया है वह देगी ?"

यशोदा सकपकाई। फिर दृढ़ होकर बोलने जा रही थी कि महन्त ने कहा, "नहीं, खाने-पीने की कोई बात नहीं है। पर गुरु की आज्ञा बिना क्या जा सकेगी ?"

"मैंने संन्यास छोड़ दिया है। मैं उसके अयोग्य हूँ।"

"तो लिया ही क्यों था, उसी समय कहती।"

"मैं भटक रही थी। आज मुझे मालूम हुआ है वह मेरा मार्ग नहीं है।"

"यह मार्ग ठीक है ?"

"जी।" दृढ़ता से उसने कहा।

"मैं फिर कहता हूँ ईश्वर को पाने का अवसर हाथ से मत जाने दे।" महन्त जी बोले।

"आपको मिल गया है ईश्वर ! क्या आप गृहस्थ के समान नहीं हैं, क्या भेद है आप में और एक गृहस्थ में ? आप भी आश्रम को बढ़ाने की चिन्ता में हैं। घाट को चौड़ा करने, कमरे और बनवाने, और जमीन मोल लेने, साधुओं-सेठों में अपना वैभव बढ़ाने के सिवा क्या कर रहे हैं और आप ? मैं नहीं रह सकती। मुझे क्षमा कीजिये ! मैंने गेरुए वस्त्र उतार दिये हैं। अब मैं संन्यासिनी नहीं हूँ।"

यशोदा ने अपना सामान बगल में दबाया और बोली—"चलो प्रभा। प्रणाम।"

"उसने दोनों को प्रणाम किया और प्रभा के साथ उत्साह के कदम बढ़ाती हुई चल दी। दोनों देख रहे थे। उस समय तक देखते रहे। जब तक वे दोनों सीढ़ियाँ पार करके आँखों से ओझल न हो गईं। शिवानन्द ने एक गहरी साँस ली। महन्तजी कोठी के किवाड़ बन्द करके घाट की तरफ देखने लगे। गंगा उसी वेग से बह रही थी, जैसे लहरों में उड़ते कणों से वह दोनों नारियों को आशीर्वाद दे रही हो। शिवानन्द कह रहा था, "स्वामी हरिशरणानन्द की आग न जानें किस-किसकी बलि लेगी?" फिर यशोदा के सूने रास्ते की तरफ थूककर उसने कहा, "भाग्य-हीना!"